जैनधर्मदर्शन में तनाव प्रबंधन

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं

जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन विभाग

में

पी-एच.डी.

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

2011-12

(R/) 285/2009

शोध-निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

संस्थापक निदेशक

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)

शोधार्थी

सुश्री तृप्ति जैन

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय

लाडनूं (राजस्थान) ३४१ ३०६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मदर्शन में तनाव प्रबंधन

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं

जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन विभाग

में

पी-एच.डी.

उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

2011-12

(R/J. 285/2009)

शोध-निर्देशक

डॉ. सागरमल जैन

संस्थापक, निदेशक

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)

शोधार्थी

सुश्री तृप्ति जैन

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय

लाडनं (राजस्थान) ३४९ ३०६

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रो. (डॉ.) सागरमल जैन

संस्थापक निदेशक

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)

दिनांक : 10–07–2011

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि सुश्री तृप्ति जैन द्वारा प्रस्तुत **"जैनधर्मदर्शन में तनाव प्रबन्धन"** नामक शोध–प्रबन्ध मेरे निर्देशन में तैयार किया गया है। उन्होंने यह कार्य लगभग 2 वर्ष तक मेरे सानिध्य में रहकर पूर्ण किया है। मेरी दृष्टि में यह शोधकार्य मौलिक है और इसे किसी अन्य विश्वविद्यालय में पी–एच.डी. की उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

मैं इस शोध–प्रबन्ध को जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय, लाडनूं की पी–एच.डी. की उपाधि हेतु समीक्षार्थ अग्रसारित करता हूँ।

प्रो. (डॉ.) सागरमल जैन

संस्थापक निदेशक

प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

विश्व की प्रमुख समस्याओं में एक समस्या मानव समाज की तनावग्रस्तता है। आज विश्व में न केवल अभावग्रस्त देश तनावग्रस्त है, अपितु जो विकसित देश हैं, वे भी उनसे अधिक तनावग्रस्त हैं। आज विश्व में संयुक्त राज्य अमेरिका को सबसे विकसित देशों में माना जाता है, किन्तु वहाँ की जनसंख्या में भी तनावग्रस्त लोगों का प्रतिशत सबसे अधिक है। विश्व में आज नींद की गोलियों की सबसे अधिक खपत संयुक्त राज्य अमेरिका में है। तनावग्रस्त व्यक्ति और समाज आज वैश्विक शांति के लिए सबसे बड़ा खतरा है। यदि विश्व में शांति की स्थापना करना है, तो मानव को तनावमुक्त करना होगा, क्योंकि तनावग्रस्त मानव विश्वशांति के लिए सबसे बड़ी समस्या है। आज विश्व को तनावमुक्त मानव–समाज की अपेक्षा है।

सर्वप्रथम इस बात पर गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है कि तनाव क्यों उत्पन्न होते हैं ? क्या भौतिक सुख–सुविधाओं के संसाधनों का अभाव ही तनावग्रस्तता का एकमात्र कारण है ? वस्तुतः व्यक्ति के तनावग्रस्त होने का मूलभूत कारण बाह्य सुख–सुविधा या भौतिक संसाधनों की कमी नहीं है, अपितु इच्छाओं एवं अपेक्षाओं का बढ़ता हुआ स्तर तथा दूसरे के विकास को देखकर मन में ईर्ष्या की भावना तथा उसे नीचे गिराने की वृत्ति ही आज तनावों की उत्पत्ति के मूलभूत कारण प्रतीत होते हैं। यदि भौतिक सुख–सुविधाएँ और उनके संसाधनों की उपलब्धि ही तनावमुक्ति का मूलभूत आधार होता तो आज विश्व के विकसित देशों का मानव–समाज तनावमुक्त होना चाहिए था। यदि हम देखें तो भारत, अमेरिका की अपेक्षा भौतिक सुख–सुविधा और भौतिक संसाधनों की दृष्टि से एक गरीब देश कहा जाएगा, किन्तु तनावग्रस्तता का प्रतिशत भारत की अपेक्षा अमेरिका में अधिक होना इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि तनाव का जन्म केवल अभाव के कारण नहीं होता है, उसमें दूसरों के प्रति ईर्ष्या की भावना और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इच्छाओं एवं आकांक्षाओं के उच्च स्तर ही इसमें प्रमुख रूप से कार्य करते हैं। वस्तुतः मेरी दृष्टि में तनाव के ये कारण, भौतिक की अपेक्षा मानसिक ही अधिक हैं। यदि मानव को तनावमुक्त बनाना है तो हमें उन मानसिक कारणों की खोज कर उनका निराकरण करना होगा, जो सम्भवतः आध्यात्मिक दृष्टि के विकास से ही सम्भव है। वस्तुतः आज तनावों के निराकरण का प्रयत्न तो किया जाता है, किन्तु तनावों के जन्म लेने के मूलभूत कारणों के निराकरण का प्रयत्न प्रायः नहीं होता है। यह वैसा ही है, जैसे वृक्ष के तने को काटकर उसकी जड़ों को सींचते रहें। हम तनावों के निराकरण का प्रयत्न तो करते हैं, किन्तु तनाव के मूलभूत कारणों का निराकरण नहीं कर पाते, क्योंकि हमारे तनावों के निराकरण के प्रयत्न बाह्य एवं भौतिक स्तर पर ही होते हैं, जबकि उनकी जड़े हमारे मानस में हैं।

तनाव न केवल हमारे व्यक्तित्व के विकास को अवरूद्ध करते हैं, अपितु हमारे स्वास्थ्य पर भी उनका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। आज चिकित्सक इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके हैं, कि मानव–समाज में बीमारियों के कारणों में 50 प्रतिशत से अधिक कारण तो मानसिक ही होते हैं। मन यदि तनावमुक्त हो तो शरीर स्वस्थ रहता है। पुनः तनाव के जन्म का एक कारण भय और अविश्वास भी है। आज विश्व में पारस्परिक विश्वास की बहुत कमी है। हम सब भीतर से एक–दूसरे से भयभीत हैं। हम अभय की अपेक्षा तो रखते हैं, किन्तु भीतर से भयभीत बने हुए हैं। इस भय का मूलभूत कारण हमारे भीतर कहीं–न–कहीं दूसरों के प्रति अविश्वास की भावना है। अविश्वास से भय का जन्म होता है। भय के आते ही व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है और अपनी सुरक्षा के साधनों के रूप में अस्त्र–शस्त्रों पर अधिक विश्वास करने लगता है। आज के मनुष्य का विश्वास दूसरे मनुष्यों की अपेक्षा सुरक्षा के भौतिक साधनों पर अधिक है। यही कारण है कि आज का मनुष्य तनावग्रस्त बनता जा रहा है। अतः तनावग्रस्तता के कारणों की खोजकर हमें कही–न–कहीं उन कारणों के निराकरण का प्रयत्न करना होगा। चूंकि तनावग्रस्तता के मूलभूत कारण मूलतः आन्तरिक हैं, उनका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जन्म मानव के मन में होता है, अतः उनके निराकरण के लिए कहीं–न–कहीं मानव–मन के परिशोधन का प्रयत्न करना होगा। मन के परिशोधन का यह कार्य आध्यात्मिक जीवन–दृष्टि के विकास से सम्भव है और इस हेतु हमें धर्म–दर्शन की शरण में जाना होगा।

मानव–मन के परिशोधन के लिए प्राचीनकाल से ही आध्यात्मिक जीवन–दृष्टि का विकास आवश्यक माना गया है। यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि भारतीय–चिन्तन में तनावों से मुक्त होने के लिए आध्यात्मिक जीवन–दृष्टि के विकास के प्रयत्न प्राचीनकाल से ही होते रहे हैं। इन्हीं प्रयत्नों के फलस्वरूप विभिन्न धर्मों व दर्शनों का प्रादुर्भाव हुआ है। इन धर्मों एवं दर्शनों में भारतीय श्रमणधारा एवं योग–साधना की परम्परा का एक प्रमुख स्थान है। जैनधर्म उसी श्रमणधारा और योग–साधना की परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। जैनधर्म में तनावों की उत्पत्ति के कारणों और उनके निराकरण के उपायों पर गहराई से विचार किया है। आचारांगसूत्र में भगवान् महावीर ने यह बताने का प्रयास किया है कि ममत्व की मिथ्यावृत्ति राग–द्वेष को जन्म देती है और अन्त में इनके कारण तनावों का जन्म होता है। अतः तनावों से मुक्त रहने के लिए क्षमा, निर–अभिमानता, सरलता और निर्लोभता के सद्गुणों का विकास करना होगा। जिस व्यक्ति में इन गुणों का विकास हो जाता है, वह व्यक्ति तनावमुक्त हो जाता है। जैन धर्म की दृष्टि में ममता तनावों की उर्वर जन्मभूमि है और समता या वीतरागता की साधना ही तनावों के निराकरण का मूलभूत उपाय है। यही कारण है कि भगवान् महावीर ने समता को धर्म कहा है। जैनधर्म में आचार्य कुन्दकुन्द ने तो यहाँ तक कहा है कि मोह और क्षोभ से रहित चेतना ही मुक्ति है। जैनधर्म की साधना वस्तुतः मोह और क्षोभ के निराकरण की साधना है। इसके लिए राग–द्वेष और कषायों से ऊपर उठना आवश्यक माना गया है। जहाँ राग–द्वेष का अभाव होगा, वहाँ कषायों का भी अभाव होगा और ऐसी स्थिति में तनावों का जन्म कभी नहीं होगा। वस्तुतः तनावमुक्ति ही मुक्ति है। तनावो का जन्म कषायों से होता है, अतः तनावों से मुक्त रहने के लिए कषायों से मुक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहना आवश्यक है। यही कारण है कि जैनधर्म में आचार्य हरिभद्र ने कहा था कि –"कषायों से मुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है।"

यहाँ ज्ञातव्य है कि पश्चिम में तनाव प्रबंधन को लेकर मनोवैज्ञानिकों ने काफी कुछ प्रयत्न किया है, फिर भी उनकी सोच का मुख्य आधार भौतिकवादी जीवन–दृष्टि ही रही है। इसके विपरीत भारतीय आध्यात्मिक चिन्तकों ने तनाव के कारण और तनाव से मुक्ति के उपायों पर आध्यात्मिक जीवन–दृष्टि के आधार पर चिन्तन किया है। यह सत्य है कि भौतिक जीवनदृष्टि के आधार पर तनाव के कारणों और उनसे मुक्ति के उपायों पर पर्याप्त रूप में शोध–कार्य या गवेषणा हुई है और हो रही है, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि के आधार पर इस सम्बन्ध में कुछ प्रयत्नों को छोड़कर प्रायः विशेष कार्य नहीं हुआ है। यद्यपि बौद्ध मनोविज्ञान को लेकर इस सम्बन्ध में कुछ छुट–पुट प्रयत्न देखे जाते हैं, किन्तु जैन धर्मदर्शन के आधार पर मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इस समस्या पर विचार प्रायः कम ही हुआ है। आचार्य महाप्रज्ञजी और मुनि चंद्रप्रभसागर के प्रवचन साहित्य में इस समस्या को छूने का प्रयत्न तो हुआ है, किन्तु शोध की अपेक्षा से इस दिशा में कोई कार्य हुआ हो, ऐसा मेरी जानकारी में नहीं है। यही कारण है कि मैंने **'जैन धर्म दर्शन में तनाव–प्रबंधन'** नामक विषय को अपनी शोध परियोजना का विषय बनाया और जैन धर्म दर्शन के उन्हीं ग्रन्थों के आधार पर इस शोध प्रबन्ध का प्रणयन किया है। यद्यपि इस शोध–कार्य में पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के मन्तव्यों को भी आधार बनाया है और जहाँ तुलनात्मक विवेचन की आवश्यकता प्रतीत हुई हैं, वहाँ तुलनात्मक और समीक्षात्मक दृष्टि से भी विचार किया गया है। यहाँ इस कार्य में मुझे जिनका सहयोग मिला है, उनके प्रति आभार व्यक्त करना भी मेरा कर्त्तव्य है –

कृतज्ञता–ज्ञापन –

सर्वप्रथम मैं हृदय की असीम आस्था के साथ नतमस्तक हूँ धर्मतीर्थ की स्थापना करने वाले परमतारक सिद्ध बुद्ध निरंजन निराकार परमात्मा एवं उनके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शासन के प्रति, जिन्होनें अपने साधना के मांध्यम से तनावमुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया।

इस शोध–कार्य की सम्पन्नता महान आत्म–साधिका, श्री विनीतप्रज्ञाजी म. सा. की दिव्य कृपा के बिना संभव नहीं थी। सर्वप्रथम उन्होंने ही मेरे अंदर रहे धर्मबीज को सींचने का प्रयत्न किया था और मुझे जैनधर्म में शोध–कार्य करने के लिए प्रेरित किया था। कालचक्र के क्रूरप्रहार ने आज उन्हें हमसे अलग कर दिया, किन्तु उनकी अदृश्य प्रेरणा की गूंज ही मेरे आत्मविश्वास का अटल आधार बनी हुई है। उनका मंगलमय आशीर्वाद मेरे जीवन पथ को सदा आलोकित करता रहे, इन्हीं आकांक्षाओं के साथ उन आराध्य चरणों में अनन्तशः वंदना समर्पित ....।

जिनके आशीर्वाद एवं स्नेह की मुझे सदा अपेक्षा है; मेरी दादीजी श्रीमती कमलाबाई जैन। मेरे इस शोधकार्य को पूर्ण करने का श्रेय उन्हीं की दी गई प्रेरणा व प्रोत्साहन को जाता है।

मेरे पिता श्रीमान नरेन्द्रकुमार जी जैन एवं माता श्रीमती सरला जैन का आशीर्वाद एवं प्रेम भी मुझे संबल देता रहा। इनकी पुत्री होना मेरे लिए गौरव का विषय है।

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय के कुलसचिव एवं जीवन विज्ञान के विद्वान प्रो. जे.पी.एन मिश्राजी, जिन्होंने मुझे शुरूआत में ही शोधकार्य की सही पद्धति से अवगत कराया, वह प्रतिपल स्मरणीय है। उनका सहयोग व शिक्षा ही मेरे शोधकार्य का प्राण है। आपका स्नेह, सहयोग एवं मार्गदर्शन सदैव मिलता रहे, यही शुभाकांक्षा।

इसके अतिरिक्त मैं जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय की पूर्व कुलपति समणी मंगलप्रज्ञाजी, वर्तमान कुलपति समणी चारित्रप्रज्ञाजी, पू. समणी कुसुमप्रज्ञाजी, समणी चैतन्यप्रज्ञाजी, समणी ऋतुप्रज्ञाजी ..... आदि के प्रति भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभार व्यक्त करती हूँ, जिन्होंने समय–समय पर उचित मार्गदर्शन और सहयोग देकर मुझे प्रोत्साहित किया है।

जिनके सान्निध्य में रहकर जीवन के अनेक क्षेत्रों में मार्गदर्शन मिलता रहा है, हिन्दी व अंग्रेजी भाषा के ज्ञान में वृद्धि हो रही है, ऐसी मेरी धर्मबहिनें आदरणीय मुमुक्षु डॉ. शांता जैन एवं सुश्री वीणा जैन का स्नेहिल सहयोग व प्रेरणा सदैव मिलती रही है। वे मेरी अपनी हैं, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर परायेपन की प्रतीति कराने का अक्षम्य अपराध मैं नहीं करूंगी। आप दोनों का सहयोग, स्नेह एवं मार्गदर्शन सदैव मुझे मिलता रहे।

शोधकार्य को पूरी लगन के साथ करने के लिए प्रेरित व प्रमाद को दूर करने में मेरे भाई निखिल जैन, अखिल जैन, राहुल कांकरिया, शीतल जैन एवं अन्य परिजन जो भी सहयोगी रहे, उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित कर उनकी आत्मीयता का अवमूल्यन नहीं करूंगी।

इस कार्य का श्रेय जैन धर्मदर्शन के मूर्धन्य विद्वान, आगम मर्मज्ञ, भारतीय संस्कृति के पुरोधा **डॉ. सागरमलजी जैन** को है। जिन्होंने इस शोधप्रबन्ध के मेरे सपने को साकार करने में पूर्ण रूपेण सहयोग दिया और विषयवस्तु को अधिकाधिक प्रासंगिक, उपादेय बनाने हेतु सूक्ष्मता से देखा, परखा और आवश्यक संशोधनों के साथ मार्गदर्शन प्रदान किया। यद्यपि वे नाम–स्पृहा से पूर्णतः विरत हैं तथापि इस कृति के प्रणयन के मूल आधार होने से इसके साथ उनका नाम सदा– सदा के लिए स्वतः जुड़ गया है। वे मेरे शोध–प्रबन्ध के दिशा–निर्देशक ही नहीं है वरन् मेरे आत्मविश्वास के प्रतिष्ठाता भी है। उनका वात्सल्यभाव एवं असीम आत्मीयता मेरे जीवन का गौरव है जो आजीवन बना रहे, यही प्रभु से प्रार्थना है ...

'मध्यप्रदेश की काशी' के नाम से प्रसिद्ध, प्राकृतिक सौंदर्य के मध्य स्थित सुरम्य **'प्राच्य विद्यापीठ'** का विशाल पुस्तकालय एवं सुविधाएँ युक्त शान्त वातावरण, इस लक्ष्य की प्राप्ति में सर्वाधिक सहायक सिद्ध हुआ है। इसी प्रकार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन विश्वभारती विश्वविद्यालय के स्टाफ और विशेष रूप से उसके ग्रन्थालय का भी इस शोधकार्य में सहयोग रहा है, अतः उनके प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ।

इस शोध–सामग्री को कम्प्यूटराइज्ड करने में **राजा'जी'** ग्राफिक्स, शाजापुर के श्री शिरीष सोनी का विशिष्ट सहयोग रहा है। उनके प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ।

इसके अतिरिक्त प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस शोध प्रबंध के प्रणयन् में जो भी सहयोगी बने, उन सबके प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं।

इस सम्पूर्ण शोध प्रबंध में अज्ञान एवं प्रमादवश त्रुटियाँ रहना स्वाभाविक है। अतः प्रबुद्धजन अपने सुझाव एवं मंतव्य प्रस्तुत करने हेतु सादर आमंत्रित हैं।

– तृप्ति जैन

———————000———————

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन में तनाव प्रबंधन

विषय सूची

पृष्ठ

अध्याय – 1 विषय परिचय 1–43

1. वर्त्तमान वैश्विक परिदृश्य और तनाव
2. तनावों का स्वरूप और उनके प्रभाव
3. तनाव प्रबंधन का मनोवैज्ञानिक अर्थ
4. तनाव प्रबंधन का आध्यात्मिक अर्थ

(क) जैनदर्शन में तनाव का आधार राग–द्वेष और कषाय

(ख) आचारांग और उत्तराध्ययन में राग–द्वेष और कषाय

(ग) तत्त्वार्थसूत्र और उसकी टीकाओं में कषायों का स्वरूप और उनका तनावों से सह–सम्बन्ध

(घ) परवर्ती जैन दार्शनिक ग्रन्थों में राग–द्वेष और कषाय का सह–सम्बन्ध

अध्याय – 2 तनावों का कारण : जैन दृष्टिकोण 44–91

1. आर्थिक विपन्नता (अभाव होना) और तनाव
    - उत्तराध्ययनसूत्र में "वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते"
2. शोषण की प्रवृत्ति और तनाव
    - हरिभद्र के पंचाशक प्रकरण में शोषण नहीं करने के निर्देश
3. पारिवारिक असंतुलन और तनाव
4. सामाजिक विषमताएँ और तनाव
    - उत्तराध्ययन व आचारांग निर्युक्ति आदि में वर्ण व्यवस्था
5. तनावों के मनावैज्ञानिक कारण
    - जैनदर्शन में मन, वचन और काया प्रवृत्तियाँ आस्रव का हेतु हैं।
6. तनावों के धार्मिक कारण
7. अतीत और भविष्य की कल्पनाएँ और तनाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय – 3 चैत्तसिक मनोभूमि और तनाव 75–98

1. आत्मा, चित्त और मन
   - जैन आगमों एवं दार्शनिक ग्रन्थों के आधार पर इनका स्वरूप
2. आत्मा की अवधारणा और तनाव
3. चित्तवृत्तियाँ और तनाव का सह–सम्बन्ध
4. मन और तनाव का सह–सम्बन्ध
5. आधुनिक मनोविज्ञान में मन के तीन स्तर –
   A. अचेतन
   B. अवचेतन
   C. चेतन
6. जैन, बौद्ध एवं योगदर्शन में मन की अवस्थाएँ और उनका तनावों से सह–सम्बन्ध

अध्याय–4 जैनधर्म दर्शन की विविध अवधारणाएँ और तनाव 99–165

1. जैनदर्शन में आत्मा की अवस्थाएँ और तनाव से उनका सह–सम्बन्ध
2. त्रिविध आत्मा की अवधारणा और तनावों से उनका सह–सम्बन्ध
3. त्रिविध चेतना और तनाव (ज्ञानचेतना, कर्मचेतना और कर्मफल चेतना)
4. जैनदर्शन में मन की विविध अवस्थाएँ और तनावों से उनका सह–सम्बन्ध
5. राग व द्वेष तनाव के मूलभूत हेतु
6. इच्छा एवं आकांक्षाओं का तनाव से सह–सम्बन्ध
7. कषायचतुष्क और तनाव
8. षट् लेश्याएँ और तनाव
9. उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार लेश्याओं का स्वरूप और तद्जन्य तनावों का स्वरूप
10. भगवती एवं कर्मग्रन्थों के आधार पर कषायों की चर्चा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय – 5 तनाव प्रबंधन की विधियाँ 166–270

(अ) तनाव प्रबंधन की सामान्य विधियाँ

1. शारीरिक विधियाँ
2. भोजन सम्बन्धी विधियाँ
3. मानसिक विधियाँ
   A. एकाग्रता
   B. भूलने की क्षमता
   C. योजनाबद्ध चिन्तन
   D. सकारात्मक सोच
   E. सम्यक् जीवन–दृष्टि
   F. आत्म विश्वास
   G. कठिन परिश्रम
4. मानसिक विधियाँ

(ब) जैनधर्म दर्शन में तनाव प्रबंधन की विधियाँ

1. आत्म–परिशोधन – विभाव दशा का परित्याग
2. ध्यान और योगसाधना और उससे तनावमुक्ति
3. आर्त्त और रौद्रध्यान तनाव के हेतु तथा धर्म और शुक्लध्यान से तनावमुक्ति
4. आचारांग से ममत्व का स्वरूप और ममत्व त्याग एवं तृष्णा पर प्रहार
5. स्थानांगसूत्र और ध्यानशतक के ध्यान के लक्षण, साधन आदि का विचार
6. इच्छा निर्मूलन और तनावमुक्ति

अध्याय – 6 जैनदर्शन में तनावों के निराकरण के उपाय 271–341

1. सम्यक्–दर्शन, ज्ञान और चारित्र एवं तनाव निराकरण
2. अपरिग्रह का सिद्धांत और तनावमुक्ति
3. अहिंसा का सिद्धांत और तनावमुक्ति
4. अनेकांत का सिद्धांत और तनावमुक्ति
5. इन्द्रिय विजय और तनावमुक्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

6. कषाय विजय और तनावमुक्ति
7. लेश्या परिवर्तन और तनावमुक्ति
8. विपश्यना / प्रेक्षाध्यान से तनावमुक्ति
9. धर्म और तनावमुक्ति

अध्याय –7 उपसंहार 342–358

सन्दर्भ ग्रंथ सूची –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मदर्शन में तनाव प्रबंधन

अध्याय - 1 विषय परिचय

1. वर्त्तमान वैश्विक परिदृश्य और तनाव
2. तनावों का स्वरूप और उनके प्रभाव
3. तनाव प्रबंधन का मनोवैज्ञानिक अर्थ
4. तनाव प्रबंधन का आध्यात्मिक अर्थ

(क) जैनदर्शन में तनाव का आधार राग-द्वेष और कषाय

(ख) आचारांग और उत्तराध्ययन में राग-द्वेष और कषाय

(ग) तत्त्वार्थसूत्र और उसकी टीकाओं में कषायों का स्वरूप और उनका तनावों से सह-सम्बन्ध

(घ) परवर्ती जैन दार्शनिक ग्रन्थों में राग-द्वेष और कषाय का सह-सम्बन्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–1

विषय परिचय

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य और तनाव

वर्तमान युग की वैश्विक समस्याओं में सबसे मुख्य समस्या मानव मन के तनावग्रस्त होने की है। जैन ग्रंथ आचारांगसूत्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति स्वयं तनावग्रस्त होता है वह दूसरों को भी तनावग्रस्त बना देता है। इस प्रकार वैश्विक परिदृश्य आज तनावग्रस्त बना हुआ है। सरल शब्दों में कहा जाए तो, आज संसार का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं तनावग्रस्त है और जो स्वयं तनावग्रस्त होता है, वह दूसरों को भी तनावग्रस्त बनाता है। **'आतुरा परितावेंति'**[1] अतः आज वैश्विक समस्याओं में तनावग्रस्तता एक मुख्य समस्या है। वर्तमान युग को हम वैज्ञानिक युग कहते है किन्तु सत्य यह है कि यह युग वैज्ञानिक युग कम, तनाव युग ज्यादा है। विश्व का हर व्यक्ति चाहे बालक हो या वृद्ध, बड़ा हो या छोटा, सभी एक ही रोग से घिरे हुए हैं और यह रोग है तनाव। आज हर इंसान तनावग्रस्त है। फलतः व्यक्ति जीता तो है, परन्तु जीवन में आनंद, सुख एवं शांति नहीं पा पाता है। आज के इस दौर में मानव विविध प्रकार के तनावों से ग्रस्त है। जैनधर्म के अनुसार तनाव के मुख्य कारण हैं –व्यक्ति की अतृप्त इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, कामनाएँ आदि। ये इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं[2] और उनकी पूर्ति नहीं होने पर व्यक्ति दुःखी होता है। व्यक्ति हमेशा अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने का येन–केन–प्रकारेण प्रयास करता रहता है, अर्थात् हमेशा अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है और उनकी पूर्ति होने पर सुख का अनुभव करता है तथा पूर्ति न होने पर दुःखी होता है और यही दुःख हमारे मन को तनावग्रस्त बना देता है। इस तनावग्रस्तता को समाप्त करने के लिए हमें कहीं–न–कहीं व्यक्ति के अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना होगा।

---

[1] आचारांग, 1/1/6

[2] उत्तराध्ययनसूत्र, 9/48

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः यदि मानव को तनावमुक्त बनाना है तो हमें तनावो के कारणों का विशलेषण कर उन्हें समाप्त करना होगा, अर्थात् उन कारणों की खोज कर उनका निराकरण करना होगा, जो संसार के व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न करती है। विश्व की सबसे प्राथमिक समस्या तनाव की ही है और इन तनावों को दूर करने के लिए विश्व की अन्य सभी समस्याओं के मूल कारणों को समझना होगा। डॉ. सागरमल जैन के अनुसार विश्व की दूसरी प्रमुख समस्या मानव जाति के अस्तित्व की है। वे लिखते हैं कि –"Due to the tremendous advancement in war technology and nuclear weapons, The whole human race is standing on the verge of annihilation"[3]

सूत्रकृतांग में यह स्पष्ट लिखा है कि व्यक्ति की सुरक्षा ही सर्वोपरि है और यह सुरक्षा उसे अभय प्रदान करके ही दी जा सकती है।[4] आज विश्व इसी समस्या का सामना कर रहा है कि वह खुद के अस्तित्व को कैसे सुरक्षित रखे? इसका कारण है, वैज्ञानिक युग की उभरती युद्ध की नई तकनीक और आण्विक शस्त्र। विश्व का प्रत्येक प्राणी आज अपनी सुरक्षा के लिए शस्त्रों पर अधिक विश्वास करता है। आज व्यक्ति का व्यक्ति पर भरोसा नहीं रहा है। प्रत्येक राष्ट्र या प्रत्येक व्यक्ति में जब एक दूसरे के प्रति विश्वास, सहयोग की भावना खत्म हो जाती है, तो वहाँ द्वन्द्व अपना स्थान बना लेता है। ये द्वन्द्व ही वे कारण हैं जो व्यक्ति में डर या भय उत्पन्न करते हैं और जहाँ डर या भय होता है वहाँ तनाव होता ही है। डॉ. सुरेन्द्र वर्मा ने अपने लेख में लिखा है[5] कि भय भी तनाव की अनुभूति का एक कारण है। व्यक्ति अपने भय को समाप्त करने के लिए शस्त्रों पर विश्वास करता है और वर्तमान युग की शस्त्रीकरण की यह भावना पूरे

---

[3] Peace, religious Harmony and solution of world problem from Jain Perspective. Sagarmalji Jain, Page 25

[4] सुत्रकृतांग – मधुकर मुनि, 1/6/23

[5] श्रमण – जुलाई – सितम्बर 1996 पृ. 43

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विश्व को तनावग्रस्त बना रही है। जैन धर्म के अनुसार तनाव–मुक्ति के लिए उत्तराध्ययन सूत्र में लिखा है – "यदि अभय चाहते हो तो अभय प्रदान करो।"[6]

विश्व की अगली समस्या है युद्ध और हिंसा।[7] आज प्रत्येक व्यक्ति के मन में असंतोष की भावना है। हर कोई दूसरों पर अपना अधिकार जमाना चाहता है। इतना संग्रह करना चाहता है कि स्वयं को राज्याधिकार मिल सके। इसी आकांक्षा के कारण युद्ध का जन्म होता है, जिसके परिणाम स्वरूप पूरे विश्व में तनाव व हिंसा फैल जाती है। सूत्रकृतांगसूत्र में लिखा है –हिंसा या युद्ध का मुख्य कारण संग्रह की वृत्ति है।[8] जैनधर्म के अनुसार वर्तमान परिवेश में युद्ध व हिंसा भी तनाव का हेतु है। इस युद्ध व हिंसा का हेतु व्यक्ति की संग्रह करने व अधिकार पाने की इच्छा या वृति है।[9]

वर्तमान में समाज में अलगाव की वृत्ति भी विश्व में तनाव उत्पन्न कर रही है। मानव जाति एक है, किन्तु उसे राज्य, रंग, जाति, सम्प्रदाय आदि के आधार पर भागों में बाँट दिया गया है। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हम एक हैं, किन्तु हमीं ने मानव जाति को भिन्न–भिन्न जातियों, सम्प्रदायों आदि में विभक्त कर दिया है, जिसके परिणाम स्वरूप लोगों में आपसी समझ, प्रेम, सद्भावना आदि के स्थान पर नफरत और वैरभाव ने जगह बना ली है। मानव, मानव का ही रक्त बहा रहा हैं। जैनधर्म की भी यही मान्यता है कि सभी मानव एक हैं और जाति, सम्प्रदाय आदि के आधार पर उन्हें विभाजित करना उचित नहीं है। भगवान् महावीर स्वामी ने यह घोषित किया था कि सम्पूर्ण मानवजाति एक है।[10]

कोई भी व्यक्ति छोटा या बड़ा नहीं होता है। सबकी अपनी–अपनी योग्यताऐं हैं और उसी योग्यता के आधार पर, आत्मशुद्धि के द्वारा महान बना जा

---

[6] उत्तराध्ययन सूत्र – 6/6

[7] Peace, religious harmony and solution of world problem from Jain persepective, Sagarmaligi Jain, page 26

[8] सूत्रकृतांग – 1/1/1/1

[9] Peace Religious harmony and solution of world problem from Jain Prepective. Sagarmal Jain, page-26

[10] "एका मनुसा जाई"– आचारांग निर्युक्ति – श्री विजयजिनेश्वर– गाथा 19

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सकता है।[11] जो व्यक्ति आत्मशुद्धि से महान बनता है, वही पूर्णतः तनावमुक्त होता है।

आर्थिक असमानता भी वर्तमान विश्व की एक मुख्य समस्या है, जो पूरे विश्व में तनाव उत्पन्न कर रही है। आर्थिक असमानता के कारण लोगों में संग्रह करने की वृत्ति बढ़ती जा रही है। जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति भौतिक संसाधनों में ही शांति को खोजता है और उसी से ही आनंद प्राप्त करता है। डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं कि –"The vast differences in material possession as well as in the modes of consumption have divided the human race into two categories of Haves and have not's."[12] इसी कारण व्यक्तियों में ईर्ष्या और द्वेष की भावना उत्पन्न हो गई हैं और ये भावनाएँ उन्हें सदैव तनावग्रस्त रखती हैं। आर्थिक विषमता कैसे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती है, इसका विस्तार से विवेचन आगे किया गया है।

Dr. Sagarmal Jain says that "the basic problems of present society are mental tensions, violence and conflicts of ideologies and faiths."[13]

आज सिर्फ विश्व के मुख्य राज्यों में ही नहीं अपितु राज्यों के छोटे से छोटे गाँव और शहर के समाज में या परिवारों में भी तनावजन्य स्थिति बढ़ती जा रही है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सोच के अनुसार सत्य को सत्य मानता है और दूसरे की बात का विरोध करता है। उदाहरण के लिए किसी परिवार का एक व्यक्ति किसी का पिता है तो किसी का पति, किसी का बेटा है तो किसी का भाई। व्यक्ति एक ही है किन्तु सभी का अपना–अपना दृष्टिकोण है, कोई भी गलत नहीं है। कहने का तात्पर्य यही है कि वर्तमान में व्यक्ति स्वयं की बात को सही मानता है और दूसरे की बात का विरोध करता है। यह विरोध का भाव प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राज्य में तनाव उत्पन्न कर रहा है। सभी स्वयं को

---

[11] आचारांग – 1/2/3/75

[12] Peace, Religious Harmony and solution of world problems from Jain persepctive.
– Prof. Sagarmal Jain, Page 29

[13] I bid ---------- page 31

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सही व दूसरे को गलत साबित करने में लगे हुए है। तनाव की इस स्थिति को समाप्त करने के लिए जैनदर्शन ने अनेकान्तवाद का सिद्धांत दिया है।

सूत्रकृतांग में वर्णित है कि जो व्यक्ति सिर्फ अपने बारे में सोचता है, स्वयं को ही सत्य और दूसरों को असत्य बताकर उनकी निन्दा करता है, वह जन्म–मरण के चक्र से कभी मुक्त नहीं हो पाता।[14]

प्रो. टी.जी. कलर कहते है आज के युग में जहाँ लोग अपने–अपने मत से स्वयं को महान मानते हुए दूसरो की निन्दा कर अशांति या तनावयुक्त माहौल उत्पन्न करते हैं वहाँ अनेकांत दृष्टिकोण तनावमुक्ति के लिए रामबाण सा काम करता है।[15]

वर्तमान में विश्व कई समस्याओं का सामना कर रहा है, उन्हीं समस्याओं में अगली समस्या है, पर्यावरण असंतुलन की। पर्यावरण असंतुलन सिर्फ मानव जीवन और उसके आसपास के वातावरण को ही नहीं, अपितु जानवरों एवं पेड़–पौधों की जिन्दगी पर भी असर डालता है। आज के वैज्ञानिक युग में नई तकनीकों के आविष्कार से जितना भौतिक सुख मिलता, उससे कहीं ज्यादा शारीरिक व मानसिक तनाव मिलता है। वैज्ञानिक यन्त्रों से जो दूषित गैस निकलती है, वह प्राकृतिक वातावरण को दूषित कर देती है जिसका प्रभाव पानी, पेड़–पौधों, हवा आदि पर पड़ता है। जैनधर्म में इन्हे एकेन्द्रिय जीव माना है।[16] आचारांग के पहले अध्ययन में इन व्यवहारों का विस्तार से विवेचन मिलता है। ये हवा, पानी मानव के जीवन जीने का आधार है और इनके दूषित होने पर मानव मन व शरीर भी तनावयुक्त हो जाता है।

आज विश्व को एक नहीं कई समस्याओं ने घेर रखा है। जहाँ एक ओर पूरे विश्व में इन समस्याओं के कारण तनाव बना हुआ है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तिगत समस्याएं भी व्यक्ति को तनावग्रस्त कर रही है। बेरोजगारी की

---

[14] सूत्रकृतांग – 1/1/2/23

[15] Vaishali Institute research bulletin, No.4, P.31

[16] आचारांग (सम्पूर्ण पहला अध्ययन), 1/1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समस्या, अशिक्षा की समस्या, समय प्रबंधन न होने की समस्या, मंहगाई की समस्या, पानी की कमी की समस्या, बिजली की समस्या आदि। ये समस्याएं प्रत्येक के जीवन में घटित होती हैं। कहा भी गया है 'संघर्ष ही जीवन है।' कठिनाईयों का सामना तो राम और कृष्ण जैसे अवतारों को भी करना पड़ा। भगवान् महावीर ने भी अपने साढ़े बारह वर्ष के साधनाकाल में अनेक समस्याओं का सामना किया, किन्तु जैन सिद्धांतो का प्रतिपादन करते हुए और उनका पालन करते हुए पूर्णतः तनावमुक्त हुए अर्थात मोक्ष प्राप्त किया।

1. तनाव का स्वरूप एवं उसके प्रभाव

तनाव शब्द को अंग्रेजी में स्ट्रेस (Stress) कहते है, जो (Latin) लेटीन शब्द (String) स्ट्रींग से बना है, जिसका अर्थ होता है, जोर से कसना या बांधना (to be drown tight).

वस्तुतः जो व्यक्ति की चेतना को चाह या चिन्ता से ग्रस्त बना देता है उसे तनाव कहते है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चित्त या मन का अशान्त होना ही तनाव है। दैहिक दृष्टि से जो हमारी दैहिक क्रियाओं का संतुलन (Hormony) भंग कर देता है, वह तनाव है। आध्यात्मिक दृष्टि से आत्मा या चित्तवृत्ति के समत्व या शान्ति का भंग हो जाना ही तनाव है।

जीवन जीना बहुत ही आसान हो सकता है, अगर हमारी सारी जैविक आवश्यकताएँ सहज रूप से पूरी हो जाऐं। ठीक उसी तरह जिस तरह जैनदर्शन के अनुसार अकर्मभूमि में कल्पवृक्ष व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं को पूरी कर देते हैं। जब व्यक्ति की प्रत्येक आवश्यकता पूरी हो जाती है, तब उसे न तो किसी तरह का विषाद होता है, न ही कोई दुःख होता है। उसकी ऐसी कोई समस्या भी नहीं होती है, जो उसे तनावग्रस्त बनाए। इसीलिए उस युग को सुखद (सुषमा) कहते हैं। किन्तु वर्तमान में मनुष्य के सामने अनगिनत समस्याएँ हैं, क्योंकि उसकी इच्छाएं या आकांक्षाएं अनन्त हैं। व्यक्ति स्वप्न में तो चैत्तसिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्तर पर अपनी हर इच्छा, चाहे वह जायज हो या नाजायज पूरी कर लेता है, किन्तु जब आँखें खोलता है तो हकीकत में उसे अपने सपने को पूरा करने की इच्छा (ख्वाहिश) पैदा हो जाती है। जब इच्छाएँ (ख्वाहिश) पूरी नहीं होती या उनकी पूर्ति में कोई बाधा उत्पन्न होती है, तब व्यक्ति की मानसिक एवं शारीरिक स्थिति में कुछ असामान्य परिवर्तन घटित होता है, यह असामान्य परिवर्तन ही तनाव कहलाता है।

विभिन्न विद्वानों ने इस तनाव की विभिन्न परिभाषाएँ दी है। इनमें तनाव को एक दैहिक स्थिति मानने वाली परिभाषाऐं निम्न हैं –

क्रिसटी के अनुसार –

"शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक आवश्यकताओं के कारण प्रतिक्रिया स्वरूप आदमी में जो बदलाव आता है उसे तनाव कहते हैं। यह तनाव किसी भी स्थिति में उत्पन्न हो सकता है। वह व्यक्ति को कुण्ठित, निराश, क्रोधी और चिन्ताग्रस्त बना देता है।"[17]

रिचर्ड एस. के अनुसार –

"व्यक्ति की व्यक्तिगत एवं सामाजिक आवश्यकताएँ जितनी अधिक होती हैं, उसकी चाह उससे कहीं अधिक होती हैं। इस चाह की अपूर्णता के कारण व्यक्ति के शरीर एवं मन में जो घटित होता है, उसे ही तनाव कहते हैं।"[18]

रिबिक्का. जे. फेरी के अनुसार –

"तनाव बाह्य मांगों (चाह) एवं दबाव से शारीरिक संरचना में होने वाला परिवर्तन है।"[19]

---

[17] Stress in the body's reaction to a change that requires a physical, mental or emotional adjustment or responses stress can come from any situation or throught that Makes you feel frustrated] angry] nervous or even anxious – By kirsti A Dyes MD. mstt from about.com.

[18] According to Richard s Lazarus stress is a feeling experienced when a pesson thinks that "The demands exceed the Persnal and Social resources the individual is able to mobilize. KTTP. II www. fatfreekitchen.com.

[19] Stress is defined as an organisms total response to environmental demands or pressures, Rebecca.J.Frey, stress answers.com

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्य परिभाषाएँ –

1. जब व्यक्ति की वैयक्तिक चेतना और उसके बाह्य वातावरण के बीच जो असंतुलन उत्पन्न होता है उसे तनाव कहते है।[20]

2. विज्ञान की दृष्टि में तनाव की एक परिभाषा यह भी मिलती है कि किसी व्यक्ति के मानस पर जो बाह्य दबाव बनता है उसे तनाव कहते हैं। व्यक्ति की जितनी अपनी क्षमता है जब उससे अधिक दबाव उस पर डाला जाता है तो वह अपने लक्ष्य, जिसे वह पाना चाहता है, उससे च्युत हो जाता है।[21] यही असफलता बोध तनाव बन जाता है।

3. ऐसी कोई भी घटना जो व्यक्ति को चुनौती रूप होती है या भय का सामना करने की स्थिति उत्पन्न करती है, उसे तनाव कहते है।[22]

4. चिकित्सकीय विज्ञान के अनुसार –तनाव वह दैहिक उत्तेजना है जिससे व्यक्ति पर मानसिक दबाव पड़ता है या शारीरिक परिवर्तन होते हैं, जो उस व्यक्ति को दैहिक विकृति की ओर ले जाते है।[23]

5. हमारी व्यक्तिगत और बाह्य परिवेशीय आवश्यकताओं को पूरा करने में ऐसी बहुत सी कठिनाईयॉं आती हैं, जो उनकी पूर्ति को असंभव बना देती है। इन कठिनाईयों का हमारी चाह (demand) के साथ सामंजस्य बनाने के प्रयास

---

[20] The Most common view or stress is that it is seen as a Stransaction between the individual and the environment. www. effective-time-management-strategiess.com.

[21] One definition, which is found in other Science, is that stress is an exeternal Pressure applied onto an object, If too much force is applied then that object will distort and eventually break. www. effective – time – management – strategiess.com

[22] The response to events that tireaten or challenge a Pesson – understanding psychology, 6th edition, Robert S. Feldmen, Page 445

[23] In Medical Terms stress is described as a Physical or Psychological stimuless that can Produce Mental Tension or Physiological reaction that May lead to illness. www.Fatfreekitchen.com

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हमें तनाव की ओर ले जाते हैं। जीव की आंतरिक मांगों और भौतिक परिवेश के साथ में समायोजन बैठाने के प्रयत्न ही तनाव है।[24]

6. हेल्पगाइड (www. helpguide.org) में तनाव को विषाद कहा है। जो व्यक्ति की एक सामान्य अवस्था है और उसके दैनिक जीवन में निहित रहती है। व्यक्ति की अपेक्षाए भंग होने पर या उसे कोई नुकसान होने पर अथवा किसी भी चिकित्सा संबंधी स्थिति से मायूसी या दुःख होता है उसे परिस्थितिजन्य विषाद कहा जाता है (जो तनाव की ही एक अवस्था है।)[25]

7. डॉ. सुरेन्द्र वर्मा ने दुःख, क्लेश, भय इत्यादि अनेक भावों को ही तनाव कहा है। उनके अनुसार दुःख क्लेश, भय इत्यादि के भाव बहुत कुछ तनाव के समानार्थक है। तनाव अनुभूति के स्तर पर एक व्यग्रता, उद्वेग, आतुरता या आकुलता है। जब हम इस उद्वेग को पहचान जाते हैं तो यह 'परिताप' दुःख क्लेश और भय के नाम से जाना जाता है।[26]

8. कर्ट लेविन कहते है कि –"तनाव व्यक्ति या व्यक्तित्व की एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें एक या एक से अधिक आन्तरिक –वैयक्तिक तंत्रो (inner–Personnal - system) के बलों के बीच में असंतुलन स्थापित हो जाता है।[27]

9. विषाद को तनाव का पर्यायवाची कहा जाता है। सेलिगमेंन ने अपने आरंभिक शोधों में यह दिखलाया था कि आरोपित, निःसहाय दशा तथा प्रतिक्रियात्मक विषाद, इन दोनों में काफी समानता है, क्योंकि उनकी उत्पत्ति एवं लक्ष्य लगभग समान होते हैं। इसे प्रतिक्रियात्मक विषाद इसलिए कहा जाता है कि यह विषाद सांवेगिक क्षुब्धता उत्पन्न करने वाली घटनाओं के प्रति एक तरह

---

[24] Stress is a Perception of the demands and the resources to core with the situation, coping with stress involve dealing with the demends boosting the resources or Changing the situation. Acknowledging that stress has a biological and Psycho-biological response. www.effective–time management – strategiess.com

[25] Feeling unhappy or sad in response to disappointment loss, frustration or a medical condition is normal. This is situational depression, which is a normal reaction to event around us. By Http: //www.helpguide.org/mental/despression/signs typer.

[26] समता सौरभ – जुलाई – सितम्बर 1996 पृ.39

[27] व्यक्तित्व का मनोविज्ञान – अरूण व आशीष कुमार सिंह पृ. 339

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की प्रतिक्रिया रूप होता है। ऐसी घटनाओं में किसी प्रियजन की मृत्यु, नौकरी छूट जाना, व्यवसाय में घाटा होना, परीक्षा में असफल होना आदि प्रमुख है।[28]

तनाव की उपरोक्त सभी परिभाषाओं में व्यक्ति का दैहिक पक्ष प्रमुख रहा हुआ है और इन लोगों ने तनाव को एक दैहिक या आंगिक परिवर्तन के रूप में ही देखा है।

तनाव की मनोदैहिक परिभाषाएँ :–

तनाव एक मानसिक पीड़ा है, जिसके कारण शरीर के रसायनों में नकारात्मक परिवर्तन होता है। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि शरीर में होने वाले रसायन परिवर्तन से तनाव उत्पन्न होता है। तनाव शरीर की उत्तेजना है, जिससे व्यक्ति कमजोर या बीमार होता है। किन्तु अगर तनाव का मात्र शरीर से ही सम्बन्ध होता तो व्यक्ति का तनाव मुक्त होना भी तो शरीर विशेषज्ञों के हाथ में होता, किन्तु सत्य यह है कि तनाव एक मनोदैहिक अवस्था है।

यह सच है कि तनाव से व्यक्ति के शारीरिक रसायनों में परिवर्तन होता है, किन्तु तनाव एक ऐसी मानसिक संवदेना है, जो हमारे दैहिक तंत्र को प्रभावित करती है। उत्तराध्ययनसूत्र में दैहिक दुःखों के अतिरिक्त मानसिक दुःखों का भी उल्लेख मिलता है।[29]

भावनात्मक क्रियाओं का असर व्यक्ति के मस्तिष्क पर पड़ता है और उसी से ही कई बीमारियां शरीर में जन्म लेती हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि मानसिक तनाव से ही शारीरिक तनाव उत्पन्न होता है। हमारा जीवन आसान एवं तनावमुक्त होता अगर हमारी हर इच्छा या आकांक्षा अपने आप पूरी हो जाती। किन्तु उन्हे पूरा करने में हमें अनेक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। जब हमारी इच्छाओं की पूर्ति में कठिनाई आती हैं या हम उन्हें पूरा करने में सफल

---

[28] व्यक्तित्व का मनोविज्ञान – अरूण व आशीष सिंह पृ. 402

[29] उत्तराध्ययन सूत्र –19/45

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हो पाते हैं तो तनाव उत्पन्न होता है। कुछ पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने तो कहा है कि ऐसी कोई भी घटना जो व्यक्ति में भय या चिन्ता उत्पन्न करे वह तनाव है।[30] डॉ. सुरेन्द्र वर्मा ने भी भय को तनाव का समानार्थी कहा है।[31]

यहाँ पर उन मनोवैज्ञानिकों की बात अधिक उचित लगती है, जो तनाव को एक मनोदैहिक अवस्था मानते हैं। भय से तनाव उत्पन्न होता है, अर्थात भय तनाव का कारण है। वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति का जीवन कई घटनाओं (परिस्थितियों) से भरा हुआ है, जैसे –परीक्षा में फेल हो जाना, किसी अपने की मृत्यु हो जाना, प्रिय वस्तु का खो जाना, किसी से धोखा मिलना, पारिवारिक समस्याएँ, सामाजिक समस्याएँ आदि। हमें प्रतिदिन किसी–न–किसी तनाव का सामना तो करना ही पड़ता है जिसका असर व्यक्ति के स्वास्थ पर पड़ता है। इस प्रकार वे परिस्थितियॉ जिनसे हमें समझौता करना पड़ता है, तनावपूर्ण स्थिति को जन्म देती हैं। चाहों (इच्छाओं) की पूर्ति न होने पर उनके साथ समन्वय स्थापित करने से मस्तिष्क में एक दबाव का अनुभव होता है यह दबाव भी तनाव है।

वस्तुतः देखा जाए तो तनाव की एक सामान्य परिभाषा यह हो सकती है कि ऐसी कोई भी स्थिति या घटना जिससे व्यक्ति को दुःख, भय, चिंता या परेशानी हो, वह तनाव है। शारीरिक, मानसिक या भावनात्मक मांगों के साथ अगर अनिच्छापूर्वक कोई समझौता करना पड़ता है, तो उससे भी कहीं न कहीं मन में दुःख होता है। मनोवैज्ञानिक अरूणकुमार एवं आशीषकुमार सिंह की पुस्तक 'व्यक्तित्व का मनोविज्ञान' एवं एक पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक जिनका एक आलेख www.helpguide.org पर उपलब्ध है, दोनों ने तनाव को विषाद शब्द से परिभाषित किया है। दोनों ने दैनिक जीवन में होने वाली घटनाओं से उत्पन्न

---

[30] Stress can come from any situation or throught that make you feel frustrated, angry, nervous or even anxious. - By kirsti A Dyer MD. MS. FT to About.com

[31] समता सौरभ – जुलाई – सितम्बर 1996 पृ. 43

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होने वाले विषाद (दुःख) को ही तनाव कहा है। भारतीय दार्शनिकों ने इसी विषाद को दुःख कहा है।

तनावों के प्रकार एवं उनके परिणाम –

हेन्ससेली ने तनाव के दो प्रकार बतायें हैं[32]– सकारात्मक तनाव एवं नकारात्मक तनाव। हर स्थिति चाहे वह सकारात्मक तनाव की हो या नकारात्मक तनाव की हो, सामंजस्य बिठाने की जरूरत तो पड़ती ही है। कुछ पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों ने तो कहा ही है कि –जहाँ हमारी इच्छाओं या मांगो के साथ समझौता करना पड़े वह तनावपूर्ण स्थिति है। जैनधर्म के अनुसार सकारात्मक तनाव को शुभ आस्रव एवं नकारात्मक तनाव को अशुभ आस्रव कह सकते हैं। उदाहरण के लिए किसी व्यक्ति ने मंदिर निर्माण की जिम्मेदारी ली है तो उस हेतु सामग्री आदि मंगवाना, कार्य पूर्ण करवाना आदि की चिन्ता भी उसे तनावग्रस्त बनायेगी किन्तु यह सकारात्मक तनाव होगा, किन्तु इसके विपरीत अगर कोई व्यक्ति अपना घर बनवाता है और उसके लिए लायी गई सामग्री में कोई नुकसान हो जाता है तो वह दुःख करता है, चिंता करता है तो यह तनाव नकारात्मक तनाव कहा जाएगा।

सकारात्मक तनाव में तनाव होते हुए भी आत्म शांति पूर्णतः भंग नहीं होती किन्तु नकारात्मक तनाव में विलाप, क्षोभ आदि के साथ आत्मशांति भी भंग हो जाती है। चिंता, दोनो में ही है किन्तु एक चिंता में नींद खराब नहीं होती है और दूसरी में नींद खराब होती है। पुनः दूसरे तनाव में नींद नहीं आने से भी तनाव तीव्र होता है। सकारात्मक तनाव में चिन्ता कम होती है जबकि नकारात्मक तनाव में चिन्ता अधिक होती है। एक अन्य दृष्टि से सकारात्मक तनाव उत्कर्ष का हेतु होता है, जबकि नकारात्मक तनाव विनाश का हेतु होता है।

अन्य अपेक्षा से तनाव को तीन वर्गो में बाटा गया है[33]–

---

[32] Abnormal Psychology and modern life 11th edition Page – 14

[33] Abnormal Psychology and Modern life Page – 145

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(i) विफलता या पराजय (ii) विरोध और (iii) दबाव

वस्तुतः ये तीनों ही तनाव के कारण हैं। इन तीनों से तनाव उत्पन्न होते हैं और इन तीनों स्थितियों में तनावयुक्त व्यक्ति की मानसिक स्थिति सामान्य नहीं होती है, शायद इसीलिए मनोवैज्ञानिकों ने इन्हें भी तनाव कहा है।

(i) **विफलता जन्य तनाव** – प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का एक लक्ष्य होता है और उसी को प्राप्त करने के लिए उसके प्रयास होते हैं। किन्तु यह आवश्यक नहीं है, कि उसके सभी प्रयास अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो। जिस व्यक्ति को विफलता मिलती है, वह निराश हो जाता है, दुःखी होता है अर्थात् तनावयुक्त होता है।

(ii) **विरोध जन्य तनाव** – आज व्यक्ति या समाज में ही नहीं, अपितु पूरे विश्व में तनाव का एक महत्वपूर्ण कारण पारस्परिक विरोध है। विरोध के कारण उत्पन्न तनाव विरोधजन्य तनाव है।

(iii) **दबाव जन्य तनाव** – जब व्यक्ति को किसी कार्य के करने के लिए या क्षमता से अधिक कार्य करने के लिए बाध्य किया जाता है तो यह बाध्यता या दबाव भी तनाव है। यही दबाव बढ़ने पर तनाव का रूप ले लेता है।

यही कारण है कि डॉ. सुरेन्द्र वर्मा ने क्लेश, दुःख भय इत्यादि भावों को तनाव के समानार्थक कहा है।[34]

यहाँ हम यह कह सकते है कि जहाँ दुःख है वहां तनाव है। अतः तनाव दुःख रूप है, इसलिए दुःख को तनाव का कारण नहीं कहा है, अपितु उसका समानार्थक कहा गया है।

दुःख क्लेश या भय है तो वह तनाव ही है, क्योंकि जब किसी भी ऐसी घटना के घटित होने पर जिससे व्यक्ति को दुःख क्लेश या भय होता है तो वह

---

[34] समता सौरभ (जुलाई–सितम्बर 1996) डॉ सुरेन्द्र वर्मा पृ.39

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तनाव है। दुःखादि तनावों से युक्त व्यक्ति की प्रतिक्रियाएं अलग–अलग होती है, इसलिए इन्हे तनावों के अलग–अलग रूप कह सकते है। वैसे तो विफलता, विरोध व दबाव की स्थिति में भी प्रतिक्रियाएं तो अलग–अलग ही होती है, इन्हें भी तनाव के ही विभिन्न रूप कह सकते हैं क्योंकि इनके कारण दुःख क्लेश आदि जो भाव उत्पन्न होते है वे तनाव ही हैं, जैसे सफलता नहीं मिलने पर दुःखी होगा, विरोधी से क्लेश होगा एवं किसी कार्य को करने के लिए बाध्य होने के पीछे कोई न कोई भय होगा। अतः हम यह कह सकते है कि भारतीय दार्शनिक डॉ. सुरेन्द्र वर्मा ने जो दुःख, क्लेश व भय को तनाव का समानार्थक कहा है, वह इस कारण कि ये तनाव के ही विविध रूप हैं। अतः दुःख, क्लेश भय आदि के भावों को भी सामान्य रूप से तनाव कह सकते है।

एक वेब साइट पर तनाव के निम्न तीन प्रकार भी मिले हैं[35] –

1. अल्पकालीन संवेदनाजन्य तनाव,
2. सामान्य संवेदनाजन्य तनाव और
3. तीव्र संवेदनाजन्य तनाव

अल्पकालीन संवेदनाजन्य तनाव :–

दैहिक गतिविधियों का असामान्य हो जाना, किसी कार्य को मर्यादित समय में पूर्ण करने की जवाबदारी आ जाना, आवश्यक वस्तु जैसे चाबी आदि का कहीं रख कर भूल जाना, उसे खोजने में अधिक श्रम का होना आदि कारणों से जो तनाव उत्पन्न होते हैं उन्हे अल्पकालीन संवेदनाजन्य तनाव कहा गया है। तनाव की इस स्थिति में व्यक्ति बहुत ही कम समय के लिए चिंतित या परेशान रहता है। समय निकल जाने पर या कार्य हो जाने पर वह अपनी सामान्य अवस्था में आ जाता है। इस तरह के तनावों का प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ पर भी पड़ता है जैसे सिरदर्द, पीठ दर्द, पेट दर्द, बदन दर्द, आदि होना, धड़कन का

[35] Stress defination, Type and Causes – Lttp : ll www. FatFree Kitchen. com/stress

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बढ जाना इससे शरीर में थकावट महसूस होती है, क्योंकि उपर्युक्त छोटे–छोटे कार्यों में शारीरिक श्रम या दैहिक शक्ति अधिक व्यय हो जाती है।

सामान्य संवेदनाजन्य तनाव –

जिस व्यक्ति के ऊपर कई तरह की जिम्मेंदारियां होती है, बहुत अधिक कार्यभार होने से उसकी कार्यप्रणाली अव्यवस्थित हो जाती है, हमेशा जल्दी में कार्य सम्पन्न करने का प्रयत्न करता है, किन्तु कोई भी कार्य समय पर पूर्ण नहीं हो पाता है। ऐसे तनाव को सामान्य संवेदनाजन्य तनाव कहा जाता है, क्योकि प्रत्येक संस्था के मुख्य व्यक्ति पर जिम्मेंदारियां या कार्यभार अधिक होता है। ऐसे व्यक्ति को मुख्यतः अपने घर या कार्यलय का महत्वपूर्ण सदस्य होने के कारण मुखिया कहा जाता है। उनका पूरा जीवन इसी प्रकार के तनाव में समाप्त हो जाता है। इस प्रकार का तनाव लम्बे समय तक बना रहता है। इसका प्रभाव व्यक्ति के शरीर के साथ–साथ मस्तिक पर भी पड़ता है। अल्पकालीन संवेदनाजन्य तनाव में भी मस्तिष्क पर प्रभाव तो पड़ता है किन्तु तनाव के समाप्त होने पर अल्प समय में ही मस्तिष्क व शरीर दोनो स्वस्थ हो जाते हैं। सामान्य संवेदनाजन्य तनाव में शरीर एवं मस्तिष्क दोनो ही असंतुलित हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को अति–रक्तचाप, सिरदर्द, सीने में दर्द, हृदय संबंधी बीमारियॉ आदि रोग होते रहते हैं, जिसमें से कुछ तो जीवन पर्यन्त रहते है।

तीव्र संवेदनाजन्य तनाव –

तीनो प्रकार के तनावों में यह सबसे गंभीर है। यह तनाव भी लम्बे समय तक रहता है और व्यक्ति को दुःखी करता रहता है। किसी घटना के घटित होने पर जो तीव्र वेदना या संवेदन होते है, उनका व्यक्ति के मन या मस्तिष्क में असहनीय प्रभाव पड़ता है। जैसे गरीब हो जाना, जीवन में निरन्तर असफलता मिलना, घर–परिवार में सदैव कलह होना, आत्मविश्वास का समाप्त हो जाना आदि। जो व्यक्ति इन तनावों से ग्रस्त होते है, वे खुद यह अनुभव नहीं कर पाते

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि वे तीव्र तनाव की स्थिति में है। ऐसा तनाव स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक होता है।

तनाव के व्यक्ति की मानसिकता पर निम्न प्रभाव होते है–

- व्यक्ति बात करते–करते अचानक चुप हो जाता है।
- तनावयुक्त व्यक्ति को अंधेरे में रहना अच्छा लगता है।
- किसी से बात करने की इच्छा ही नहीं होती है अर्थात एकांत प्रिय हो जाता है।
- चिड़चिड़ाहट या क्रोध उसका स्वभाव बन जाता है।
- कभी–कभी व्यक्ति का स्वभाव क्रोधादि की स्थिति में पहले से विपरीत भी हो जाता है और कभी कोई उसे कितना भी सताए वह चुपचाप सहन करता रहता है।
- काम करते–करते होश खो देता है। उदाहरण :–व्यक्ति गाड़ी चलाता रहता है, लेकिन मस्तिष्क यही सोचता रहता है कि अब क्या करूंगां, अब यह कैसे होगा आदि। चिन्ता में वह इतना खो जाता है कि आँखें खुली होते हुए भी उसे कुछ दिखाई नहीं देता और उसके परिणामस्वरूप दुर्घटना घटित हो जाती है।
- मस्तिष्क इतना तनावग्रस्त हो जाता है कि उसकी सोचने समझने की शक्ति भी क्षीण हो जाती है। जिसके कारण वह किसी भी कार्य को सही ढंग से नहीं कर पाता है, परिणाम यह होता है कि उसे सदा असफलता ही हाथ लगती है।
- दुःख से उत्पन्न तनाव में व्यक्ति को रोने या विलाप करने से मन में हल्कापन महसूस होता है।
- व्यक्ति को सही–ग़लत का भान नहीं रहता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

- व्यक्ति में निर्णय लेने की क्षमता ही नहीं होती।
- शांति का अनुभव नहीं होने पर वह बैचेन रहता है।

तनावों का दैहिक प्रभाव :–

- उसे भूख नहीं लगती। भूख लग भी रही हो, तो भी खाने का मन नहीं करता। वह खाता भी है तो अनमने मन से, जो स्वास्थ्य के लिए घातक होता है।
- वह अपने ही शरीर को ही नुकसान पहुचाता है। उदाहरण :– कोई प्रेम में असफल हो जाता है, तो चाकू से अपने शरीर पर उस व्यक्ति का नाम लिखने लगता है जिससे उसे प्रेम था।
- तनावयुक्त व्यक्ति को नींद नहीं आती है।
- अनेक बीमारियाँ, उसके शरीर में घर कर लेती हैं। रक्तचाप, मधुमेंह आदि। हृदयाघात होने का भी एक मुख्य कारण तनाव ही है।
- तनावग्रस्त होने से व्यक्ति अपना क्रोध, दूसरो को मार–पीट करके निकालता है।
- तनाव जब अधिक बढ़ जाता है तो व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खो देता है, परिणामस्वरूप वह पागल हो जाता है।
- जिसे अपना ही होश नहीं है वह अच्छा–बुरा क्या सोचेगा। अतः वह दूसरों की जान ले लेता है या फिर आत्महत्या कर लेता है।

तनाव का भावनात्मक प्रभाव :–

- मेंरे साथ बुरा हुआ है, तो मैं भी सब का बुरा ही करूँगा। ऐसी भावना उत्पन्न हो जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

- कभी–कभी नकारात्मक सोच भी बन जाती है। उदाहरण :– अपना कोई प्रिय व्यक्ति किसी दुर्घटना में मर जाता है तो उसके दुःख में सोचने लगता है कि ऐसा किसी दूसरे के साथ नहीं होना चाहिए।
- व्यक्ति में आत्मविश्वास की कमी आ जाती है।
- कभी–कभी व्यक्ति हर बात या घटना में नकारात्मक विचार ही करता है।
- कोई अच्छा भी कर रहा हो, किन्तु उसे गलत ही लगता है।

3. तनाव प्रबंधन का मनोवैज्ञानिक अर्थ –

चाहे समकालीन मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में तनाव हमारी मनोदैहिक अवस्था के प्रतीक हों, परन्तु जब हम तनाव के कारणों का विश्लेषण करते हैं, तो यह पाते हैं कि तनाव का जन्म हमारी मनोदशा या मनोवृत्ति से ही होता है। वैज्ञानिक प्रयोंगों की दृष्टि से चाहे तनाव को दैहिक संवेदना के रूप में देखा जाता हो, किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से तनाव एक मानसिक उत्पीड़न की अवस्था ही है। तनाव की दशा में हमारी चित्तवृत्ति अशांत होती है और चित्त की यह संवेगात्मक विसंगति ही तनाव कही जा सकती है।

मनोविज्ञान वह विज्ञान है, जो प्राणी के व्यवहार तथा मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करता है तथा प्राणी के भीतर के मानसिक द्वन्द्व एवं दैहिक प्रक्रियाओं तथा परिवेश के साथ उनके सम्बन्धों का अध्ययन करता है।[36] इन दैहिक व मानसिक प्रक्रियाओं के विचलन को ही तनाव कहा जाता है। वस्तुतः कुछ मनोवैज्ञानिकों ने दैहिक स्तर पर होने वाले असामान्य परिवर्तन को ही तनाव कहा है।[37]

---

[36] मनोविज्ञान की पद्धति एवं सिद्धांत, डॉ. जे.डी. शर्मा, पृ. 16

[37] मनोविज्ञान की पद्धति एवं सिद्धांत, डॉ. जे.डी. शर्मा, पृ. 16

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनोवैज्ञानिक शारीरिक रसायनों में होने वाले असामान्य परिवर्तनों को ही तनाव कहते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने चित्त या मन को एक काल्पनिक सत्ता ही माना है, किन्तु मानसिक अनुभूतियों के स्तर पर हम तनाव को चित्त या मन की अवस्था विशेष से पृथक नहीं कर सकते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से चित्त विचलन ही तनाव है। अतः तनाव की व्याख्या और उसके निराकरण के उपायों की चर्चा मात्र दैहिक आधार पर न करके मानस--मनोविज्ञान के आधार पर करना होगी। चाहे आज मनोविज्ञान प्राणी व्यवहार का विज्ञान हो, किन्तु वस्तुतः वह मानव मन का ही विज्ञान है। प्रायोगिक स्तर पर हम मनोवैज्ञानिक स्थितियों को भी दैहिक आधार पर ही पकड़ पाते हैं, किन्तु यह सत्य है कि चैत्तसिक अनुभूति के स्तर पर हम चित्त या मन की सत्ता को नकार नहीं सकते, चाहे प्रायोगिक आधार पर उसे पकड़ा नहीं जा सकता हो। प्लेटो ने भी मन का अस्तित्व बताते हुए कहा है कि –"मन में प्रेम, तृष्णा, वासना आदि संवेग होते हैं।"[38]

मन को प्रयोगशाला में चाहे न पकड़ा जा सकता हो, किन्तु प्रत्येक स्वसंवेदनशील व्यक्ति अपने मन की अवस्था एवं वृत्तियों को जानता है। अतः आज तनावों और उनके कारणों का विश्लेषण दैहिक आधार पर न करके चैतसिक मनोविज्ञान के आधार पर भी करना होगा। मन या चित्त चाहे हमारी प्रयोगशाला में न पकड़े जा सके हों, किन्तु अनुभव के स्तर पर हर व्यक्ति उन्हें जानता है। वस्तुतः आज हम विज्ञान के आधार पर जिसे तनाव के रूप में व्याख्यायित कर रहे हैं वह न तो तनाव का हेतु है और न तनावपूर्ण अवस्था है, क्योंकि तनाव एक चैत्तसिक स्थिति है, जिसें प्रयोगशाला में देखा नहीं जा सकता है।

आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की भूल यह है कि वे तनाव की दैहिक अवस्था को ही तनाव मान रहे हैं। जो लोग शरीर में होने वाले दैहिक असामान्य रासायनिक परिवर्तन को ही तनाव कहते हैं, वे भी सत्य से अपरिचित ही हैं।

---

[38] मनोविज्ञान की पद्धति एवं सिद्धांत, डॉ. जे.डी. शर्मा, पृ. 20

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य यह है कि मानसिक असामान्य परिवर्तन ही शारीरिक रसायनों में परिवर्तन के कारण है और यही मानसिक असामान्यता ही तनाव है। आज हम तनाव की व्याख्या न करके तनाव के दैहिक परिणामों की या अधिक से अधिक हमारे व्यवहार के असंतुलन की अवस्था की व्याख्या कर रहे हैं। तनावमुक्ति के लिए या तनाव प्रबंधन के लिए आवश्यकता है, मानसिक संवेदनाओं को देखने की। यदि हम दैहिक परिणामों को मानसिक संवेदनाओं के रूप में देखेंगे तो हम मानसिक तनाव के साथ–साथ दैहिक तनाव से भी मुक्त होने में सफल हो सकेंगे। जैनदर्शन के अनुसार भी तनाव में मन की प्रधानता रही है। मन ही संसार भ्रमण का कारण, अर्थात् तनावपूर्ण स्थिति का हेतु है।

वस्तुतः मनोवैज्ञानिक आत्मा व मन को एकरूप मानते हैं, किन्तु जैनदर्शन में मन को एक मनोदैहिक संरचना माना गया है, जिसके दो पक्ष हैं – द्रव्य मन और भाव मन। तनाव का कारण भाव मन है, जिसके मलिन होने पर या असंतुलित होने पर तनाव उत्पन्न होते हैं।

तनाव का आध्यात्मिक अर्थ

तनाव शब्द का अर्थ हम पूर्व में समझ चुके है। तनाव शब्द का आध्यात्मिक अर्थ जानने से पूर्व यह जरूरी है कि हम आध्यात्मिक शब्द का अर्थ भी समझ ले। डॉ. सागरमल जैन के अभिनंदन ग्रंथ में उनका एक लेख है अध्यात्म और विज्ञान। उसमें कहा गया है कि अध्यात्म शब्द अधि + आत्म से बना है। अधि उपसर्ग विशिष्टता का सूचक है, अर्थात् जो आत्मा की विशिष्टता दे वही अध्यात्म है।[39]

'आत्मानम् अधिकृत्य यद्वर्तते तद अध्यात्मम्'[40] आत्मा को लक्ष्य करके जो भी क्रिया की जाती है वह अध्यात्म है। आनंदघनजी ने भी आत्मस्वरूप को

---

[39] डॉ. सागरमलजी जैन अभिनंदन ग्रंथ – अध्यात्म और विज्ञान, पृ. 2

[40] अभिधान राजेन्द्रकोश, भाग–1, पृ. 257

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधने की क्रिया को अध्यात्म कहा है।[41] साध्वी प्रीतिदर्शनाश्री भी अपने शोध आलेख में लिखा है कि – शरीर, वाणी और मन की भिन्नता होने पर भी उनमें चेतना गुण की जो सदृशता है वही अध्यात्म है।[42]

संक्षेप में हम यह कह सकते है कि जब व्यक्ति शरीर एवं मन से आत्मा के ज्ञाता द्रष्टा स्वरूप की भिन्नता को स्वीकार करता है, तब वह अध्यात्म की ओर अग्रसर होता है।

अध्यात्म का सम्बंध आत्मा से है और तनाव का सम्बन्ध शरीर व मन से है। जब तक देहासक्ति है, तनाव बना रहेगा और जब व्यक्ति देह से ऊपर उठ कर देहातीत बन जाता है तो वह अध्यात्म की और अग्रसर हो जाता है तथा तनावमुक्त हो जाता है।

जब तक देह के प्रति ममत्व भाव है व्यक्ति आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता, क्योंकि प्रत्येक प्राणी शारीरिक सुरक्षा, सुख एवं सुविधा को पाने के प्रयास में लगा रहता है। आज के युग में मानव के पास हर सुख सुविधा है –धन, वैभव, भोग–विलास के साधन, सुरक्षा के लिए अनेक तेजस्वी शस्त्र आदि। लेकिन फिर भी वास्तविकता यह है प्रत्येक मानव तनावों एवं अशांति से ग्रस्त है। मानव के प्रयास तो शांति प्राप्त करने के लिए होते हैं, फिर भी वह अधिक तनावग्रस्त होता जा रहा है। विज्ञान ने आज कई मशीनों और यंत्रों का विकास किया है। शिक्षा और सुखसुविधा प्राप्त करने के कई साधनों का विकास किया है, फिर भी हर एक व्यक्ति अशांत है। जहाँ एक ओर अनेक भौतिक सुख सुविधाएँ है, वही दूसरी ओर दुःख और समस्याओं का भी अम्बार लगा हुआ है।

हमें यह जान लेना चाहिए कि आखिर तनाव नामक इस विश्व–व्यापी बीमारी के कारण क्या हैं? हमें उसके कारणों को खोजकर उनका निराकरण

---

[41] निजस्वरूप जे किरिया साधे तेह अध्यात्म कहीये रे, – श्रेयांसनाथ का स्तवन

[42] अध्यात्मसार, (शोधग्रंथ), पृ. 28

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करना होगा, तभी हमारे तनावों से मुक्ति पाने के प्रयास सफलता को प्राप्त कर सकेंगे।

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि तनाव का सम्बंध देह एवं व्यक्ति की मानसिकता से है। जब व्यक्ति आत्म चिंतन करना प्रारम्भ कर देता है और देहातीत अवस्था को प्राप्त होता है तब देह एवं मन से ऊपर उठ जाता है। वह अध्यात्म पथ का पथिक बनने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार शांति प्राप्त करने का सही या सम्यक् मार्ग पा लेता है। दूसरे शब्दो में कहे तो जहाँ तनावों का अंत होता है वहीं अध्यात्म का प्रारम्भ होता है। अध्यात्म में व्यक्ति देह एवं मन से परे होकर ज्ञाता–द्रष्टा या साक्षी भाव में जीता है। जब वह आत्मा को महत्त्व देता है तब उसके सारे प्रयत्न भौतिक सुख साधनो को प्राप्त करने के लिए नहीं होते अपितु आत्म शांति को प्राप्त करने के लिए होते है। व्यक्ति शरीर में होने वाले हर सुख–दुःख को समभावपूर्वक सहन करता है। वह दैहिक सुख में न तो प्रसन्न होता है और न ही दैहिक दुःख में दुःखी होता है।

आचारांगसूत्र में अध्यात्म पद का अर्थ प्रिय और अप्रिय अनुभूतियो का समभावपूर्वक संवेदन किया गया है।[43] देह व मन में होने वाली वृत्ति तनाव है। इसी के विपरीत आत्मा में होने वाली समत्व की अनुभूति तनाव–मुक्ति है। आचांरागभाष्य में अध्यात्म को परिभाषित करते हुए आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं –अन्तरात्मा में होने वाली प्रवृति अध्यात्म है।[44] उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि अध्यात्म में व्यक्ति में दूसरे प्राणियो के प्रति आत्मवत् वृत्ति जाग्रत हो जाती है। उसे जैसे स्वयं के प्रिय और अप्रिय के अनुभव में सुख–दुःख की अनुभूति नहीं होती है मात्र साक्षीभाव की अनुभूति होती है। व्यक्ति की तनावमुक्ति तभी सम्भव है, जब वह अध्यात्म दृष्टि से सम्पन्न हो। प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि अध्यात्म पद पर चलने का साधन देह ही तो है फिर क्या देह को सुरक्षित रखने का प्रयास छोड़ दे ? इसका उत्तर हमें विनोबा–भावे की पुस्तक आत्मज्ञान और

---

[43] आचारांगसूत्र – 7/47

[44] आचारांगभाष्य – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 75

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विज्ञान में मिलता है। उनके विचार थे कि आज विज्ञान के कारण हम लोगों के हाथों में अत्यधिक शक्ति आ गयी है, लेकिन उसका उपयोग कैसे किया जाये, यह तो आत्मज्ञान (अध्यात्म) ही बतलाएगा। घोड़े को काबू में रखें और उस पर लगाम चढ़ायें, तभी आप उस पर चढ़कर चाहे जहां पहुंच सकते है। विज्ञान घोड़ा है और आत्मज्ञान उसकी लगाम।[45] कहने का तात्पर्य यही है कि आध्यात्मिकता के भवन को यदि ऊँचां उठाना है, जीवन को सुख और शांति से जीना है तो अध्यात्म को ही आधार बनाना होगा। आध्यात्मिक दृष्टि से जीने वाले व्यक्ति का जीवन तनाव से मुक्त रहेगा। व्यक्ति में मैत्री, करूणा आदि की भावनाओं का विकास होगा। प्रिय–अप्रिय में उसका समभाव होगा। वह देह व आत्मा की भिन्नता को समझेगा। अगर देह में कोई पीड़ा उत्पन्न होगी, तो तनाव उत्पन्न होगा, किन्तु आध्यात्मिक व्यक्ति उस पीड़ा को नश्वर देह की विकृति समझ कर तनावमुक्त रहेगा। अपने समान ही दूसरे प्राणी को समझेगा। इस बात कि सिद्धी उपाध्याय यशोविजय जी के ज्ञानसार से होती है, वे अध्यात्म का अर्थ बताते हुए लिखते है कि सद्धर्म के आचरण से बलवान बना हुआ तथा मैत्री, करूणा, प्रमोद और माध्यस्थ भावना से मुक्त निर्मल चित्त ही अध्यात्म है। चित्त की निर्मलता तनाव को हटा देती है।

तनाव भौतिक दुःख एवं तनावमुक्ति आध्यात्मिक सुख

व्यक्ति अगर भौतिकसुख सुविधा के पीछे भागेगा, तनाव पूर्ण जीवन जीएगा, क्योंकि उन भौतिक सुखों की लालसा में तनाव ग्रस्त होगा, किन्तु देह व मन को आत्मा से भिन्न मान कर आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा तो तनावमुक्ति का अनुभव करेगा। भौतिक सुख तृप्ति नहीं देते हैं, एक इच्छा पूरी होने पर कुछ क्षण के लिए तृप्ति मिलती है किन्तु फिर मन अतृप्त और अशान्त हो जाता है। अतृप्त मन दुःखी बनाता है, तनाव उत्पन्न करता है।

---

[45] आत्मज्ञान और विज्ञान, विनोबा भावे, पृ. 95–96

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह मन लालची है, कितना भी मिले उसे वह कम ही लगता है तृप्ति नहीं होती है। यह मन एक ऐसा गहन गड्ढा है जिसे कितना ही सुख दो संतुष्ट नहीं होता, कभी तृप्त होता ही नहीं है। उ. यशोविजयजी ने ज्ञानसार में कहा है कि –

'सरित्सहस्त्र दुष्पूरसमुद्रोदरसोदरः तृप्तिमानेद्रिग्रामो भव तृप्तोऽन्तरात्मना'[46]

हजारों नदियां सागर के उदर में नियमित रूप से गिरती है फिर भी क्या सागर को तृप्ति हुई ? सागर की तरह पॉच इन्द्रियों एवं मन का स्वभाव भी है अतृप्त रहना। स्थानांगसूत्र में भी कहा गया है चार स्थान सदैव अपूर्ण ही रहते हैं–

1) सागर 2) श्मसान 3) पेट और 4) तृष्णा (मन)[47]

भौतिक सुख प्राप्त करने की लालसा व्यक्ति को तनावग्रस्त कर देती है और भौतिक सुखों को ही सच्चा सुख मानने वाले जीव सदैव दुःख का अनुभव करते है। भौतिकसुख प्राप्त करने की इच्छा को, तनाव को या दुःख को समाप्त करने के लिए आध्यात्मिक आनन्द की ओर अग्रसर होना होगा। जब तक सम्यक् आत्मबोध नहीं होता है, तभी तक सांसारिक विषय–वासनाओं में मनुष्य की रूचि बनी रहती है।''[48] सच्चा सुख या आनन्द तो वह होता है, जो एक बार प्राप्त होने पर कभी नहीं जाता है। वह सदैव शांति देता है और वही सुख आत्मिक सुख या आनन्द है। आत्मिक आनन्द तनाव का अंत है।

तनावों को उत्पन्न करने वाले इन्द्रिय, मन आदि के विषयों की आकांक्षा या इच्छा से रहित आत्मिक सुख ही वास्तविक सुख है। "अपूर्ण विद्या, धूर्त मनुष्य की मैत्री तथा अन्याययुक्त राज्य प्रणालिका, जिस प्रकार अंत में दुःख प्रदाता

---

[46] ज्ञानसार, इन्द्रियजयाष्टक, 7/3, यशोविजयजी

[47] स्थानांगसूत्र, चतुर्थ स्थानक

[48] अध्यात्मसार –अध्यात्म महात्म्य अधिकार, उपा. यशोविजयजी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती है, उसी प्रकार सांसारिक सुखभोग भी वास्तविक सुख नहीं है, वे भी अंत में दुःख प्रदाता ही बनते हैं।"[49]

मेरे विचार से भौतिक सुखों की आकांक्षा सिर्फ अंत में ही दुःखी करती है, ऐसा भी नहीं है। जब सुख पाने की लालसा उत्पन्न होती है तभी से दुःख उत्पन्न हो जाता है जो अंत तक बना रहता है। जैसे कोई वस्तु प्रिय लगी तो उसे पाने में दुःख उठाना होता है, जब मिल गई तो वह नष्ट न हो उसका कभी वियोग न हो ऐसी चिंता होती हैं उसका वियोग या उसे नष्ट होने पर भी दुःख होता है। ये दुःख एवं चिंताएँ तनाव के ही रूप है। 'अध्यात्मसार' नामक ग्रन्थ में भी स्पष्टतया लिखा है कि जिस प्रकार कोई प्रेमी पहले प्रेमिका की प्राप्ति के लिए दुःखी होता है, उसके बाद उसका वियोग न हो इसकी चिंता में दुःखी होता है।[50]

आध्यात्मिकता से ही भौतिक दुःखों का अंत किया जा सकता है। जब व्यक्ति को आत्मतत्व का बोध होगा, उसमें आत्मिक गुणो का विकास होगा तभी व्यक्ति को सच्चे सुख एवं शांति की अनुभूति हो सकती है। आध्यात्मिक जीवन शैली ही व्यक्ति को अशांति, हिंसा, क्रूरता भ्रष्टाचार, चिंता आदि से बचा सकती हैं। आज विज्ञान के इस युग में भी जहाँ व्यक्ति को प्रत्येक सुख सुविधा मिल रही है, फिर भी व्यक्ति सुख की खोज कर रहा है। क्योंकि उसे सच्चा सुख मिल नहीं पाया है। वर्तमान विश्व तनावग्रस्त है। इस युग में अध्यात्म की अत्यंत आवश्यकता है। साध्वी प्रीतिदर्शनाजी अपने शोध ग्रन्थ में लिखती है कि –हमें विज्ञान का विरोध नहीं है, पर भौतिक जीवनदृष्टि के स्थान पर आध्यात्मिक जीवन दृष्टि तो रखनी ही होगी।[51]

---

[49] अपूर्णा विधेव प्रकटखलमैत्रीव कुनय,
प्रणालीपास्थाने विधववनितायौवनभिव – अध्यात्मसार – अध्यात्म महात्म्य अधिकार

[50] आध्यात्मसार –अध्यात्मोपनिषद् एवं ज्ञानसार के संदर्भ में (शोध) –सा. प्रीतिदर्शनाश्री, पृ.45

[51] अध्यात्मसार, अध्यात्मोपनिषद एवं ज्ञानसार के संदर्भ में (शोध), सा. प्रीतिदर्शनाश्री, पृ. 45

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तनाव रूपी शत्रु से लड़ने का एक मात्र शस्त्र अध्यात्मिक जीवनदृष्टि है। हमारी आत्मा में सद्गुणों की असीम शक्तियॉ है। हमें उन शक्तियों को जागृत करने की आवश्यकता है। वे शक्तियाँ ही हमें तनावरूपी शत्रु से विजय प्राप्त कराने वाली है। राजिन्दरसिंह ने अपनी कृति आत्मशक्ति में लिखा है कि –"हमारे अन्तर में एक शक्ति है, ऊर्जा है जो हमें भय पर विजय पाने के योग्य बनाती है।"[52] हमें आत्म–ऊर्जा से तनावों को दूर करना है। अध्यात्म से ही तनावमुक्ति सम्भव है। आध्यात्म ही एक मात्र उपाय है– वैयक्तिक एवं वैश्विक शांति का।

आत्मशक्ति को जागृत करने का अर्थ है आत्मा पर चढ़े अज्ञान या मिथ्शत्व के आवरण को हटा कर आत्मगुणों को जागृत करना। अनन्त–ज्ञान, निःस्वार्थ करूणा, अभय, आनंद, इच्छाओं पर विजय आदि आत्मा के ही गुण हैं। ये गुण प्रत्येक प्राणी में निर्द्वन्द्व आध्यात्मिक सुख का अनुभव कराने में एवं तनावों को समाप्त करने में समर्थ है। आचारांग में भी कहॉ गया है – हे पुरूष! अपना (आत्मा का) निग्रह कर। इसी विधि से तू दुःख से मुक्ति प्राप्त कर सकेगा।[53]

---

[52] आत्मशक्ति, राजिंदरसिंह, पृ. 1

[53] आचारांगसूत्र – 1/3/3/126

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(क) जैन दर्शन में तनाव का आधार राग–द्वेष और कषाय

जैन धर्म का प्रत्येक सिद्धांत वैश्विक एवं वैयक्तिक शांति का प्रतिपादन करता है। जैन धर्म का मुख्य लक्ष्य है, प्रत्येक प्राणी मुक्त हो। मुक्ति प्राप्त करने का अर्थ है –कषायों या तनावों से मुक्त हो जाना अर्थात व्यक्ति उस अवस्था को प्राप्त करे, जहाँ उसकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, चाह, चिन्ता, कषायों या तनावों से मुक्त राग–द्वेष कषाय आदि समाप्त हो जाते हैं।

जैनदर्शन का यह मानना है कि व्यक्ति के तनाव का मूल कारण राग–द्वेष व कषाय ही है। आचारांगसूत्र का एक पद है **–जं दुक्खं पवेदितं**। इस पद में दुःख शब्द से दुःख के हेतुओं का भी ग्रहण किया गया है और दुःख के हेतु राग–द्वेष या कषाय माने गए हैं।[54] आचारांगसूत्र में कई स्थान पर यह कहां गया है कि संसार के परिभ्रमण का कारण राग–द्वेष एवं कषाय है। जब व्यक्ति राग–द्वेष एवं कषाय का त्याग कर देता है तभी वह मुक्ति को प्राप्त करता है। पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था को ही मोक्ष कहा जाता है। आचार्य हरिभद्र ने स्पष्टतः कहा है – **कषामुक्तिः मुक्तिः किलरेव**। आचारांग में लिखा है कि –शब्द और रूप आदि के प्रति जो राग–द्वेष नहीं करता है वह मृत्यु से मुक्त हो जाता है।[55] कहने का तात्पर्य यही है कि वह मोक्ष प्राप्त कर लेता है। मोक्ष वह अवस्था है जहाँ तनाव के कारणों का अंत हो जाता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि राग–द्वेष एवं कषाय आदि जो तनाव के कारण हैं, इनका पूर्णतः त्याग ही तनावमुक्ति है।

जैन दर्शन में संसार में परिभ्रम्रण का मुख्य कारण राग–द्वेष एवं कषाय को ही माना है। उसमें भी राग को मुख्यता दी गई है। कषाय के मुख्यतः दो भेद किये जाते है– राग एवं द्वेष। इसी राग एवं द्वेष के आधार से कषाय के

---

[54] जं दुक्खं पवेदितं इह माणवाणं तस्य दुक्खस्स कुसला परिण्णमुदाहरांति, इति कम्मं परिण्णाय सव्वसो। जे अणण्णदंसी से अणण्णारामे से अणण्णंदसी।

आचारांगसूत्र – 2/6/101

[55] आचारांगसूत्र – 3/1/108

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार भेद किये गये है। जहाँ राग है, वहाँ माया एवं लोभ है और जहाँ द्वेष है वहाँ क्रोध एवं मान कषाय है। दशवैकालिक सूत्र में कषाय को दुःख (तनाव) का कारण बताते हुए कहा है– **चत्तारि एए कसिणा कसाया सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स**[56] अर्थात–ये चारों कषाय पुर्नभव अर्थात् जन्म–मरण की जड़ को सींचते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र में भी राग–द्वेष एवं कषाय को ही संसार में बार–बार जन्म मरण का कारण बताया है। संसार के परिभम्रण के कारण राग–द्वेष है और राग–द्वेष के कारण तनाव है क्योकि राग–द्वेष एवं तद्जन्य कषाय व्यक्ति के दुःख के कारण है। दुःख के कारण व्यक्ति विलाप अर्थात् आर्त्तध्यान करता है। सदैव आर्त्त एवं रौद्र ध्यान करता हुआ व्यक्ति कर्मो को बांधता है, जो संसार में पुनर्भव का हेतु बनते हैं।

जैनदर्शन के ग्रन्थों में राग–द्वेष व कषाय को ही व्यक्ति के दुःख का मूल भूत कारण माना गया है और यह दुःख ही तनाव है। जैन ग्रन्थों में इस बात को किस प्रकार सिद्ध किया गया है, इसकी चर्चा आगे के अध्यायों में करेंगे।

(ख) आचारांग में राग द्वेष व कषाय

आचारांग के दूसरे अध्ययन के पहले उद्देशक का नाम 'लोक–विजय' है। लोक का सामान्य अर्थ संसार होता है, अर्थात् जहाँ लोग रहते हैं वह लोक है, किन्तु यहाँ लोक का अर्थ संसार से भिन्न है। यहाँ लोक का अर्थ है वे मनोभाव या वृत्तियाँ जिससे प्राणी का संसार में परिभ्रमण होता है, अर्थात् राग–द्वेष व कषाय भाव।

विजय का अर्थ है 'जीतना'। लोक–विजय का अर्थ हुआ – राग–द्वेष व कषाय को जीतना, उनसे ऊपर उठना या मुक्त होना। व्यक्ति के कर्मबंध का,

---

[56] दशवैकालिक सूत्र – 8/40

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके संसार में परिभ्रमण का मुख्य कारण राग–द्वेष हैं और जैनदर्शन के अनुसार यही कारण व्यक्ति के तनावयुक्त होने का भी है। तनावों की जन्म स्थली तो मन है किन्तु उसकी उत्पत्ति के मुख्य कारण इच्छा, आकांक्षा, ममत्ववृत्ति, राग–द्वेष, कषाय आदि हैं।

आचार्य आत्माराजी म.सा. ने आचारांग सूत्र के विवेचन में राग–द्वेष और कषाय रूपी लोक को 'भावलोक' की भी संज्ञा दी है।''[57] वैसे देखा जाए तो जैनदर्शन में लोक के कई अर्थ माने गए है जैसे – द्रव्य–लोक, क्षेत्र–लोक आदि। लोक का सामान्य अर्थ है जो दिखाई देता है, प्रतीत होता है, अनुभूत होता है। इन विभिन्न प्रकार के लोकों में भाव–लोक को प्रमुखता दी गई है। द्रव्य–लोक का अस्तित्व भी इसी भाव–लोक पर ही आधारित है। व्यक्तियों या वस्तुओं के प्रति आसक्ति का मूल कारण तो भाव ही है।

व्यक्तियों या वस्तुओं के प्रति आसक्ति या राग भाव, उनकी प्राप्ति की इच्छा या आकांक्षा उत्पन्न करती है, ये इच्छाएँ या आकांक्षाएँ ही तनाव का कारण है।

दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाली वस्तुएँ द्रव्य कहलाती है और इन भौतिक वस्तुओ पर आसक्ति होने पर उनकी प्राप्ति की इच्छा और आकांक्षा होती है अथवा उनके नष्ट होने पर या उनका वियोग होने पर अथवा उन्हें प्राप्त करने में बाधा उत्पन्न होने पर क्रोध या द्वेष होता है, फलतः तनाव उत्पन्न होता है। व्यक्ति क्षोभित एवं चिंतित हो उठता है। इच्छा, आकांक्षा, अपेक्षा, क्षोभ, चिंता, व्याकुलता आदि सभी तनाव के ही उपनाम है। मनोभावो के कारण ही पर–द्रव्यों पर राग–द्वेष होता है और इन्हीं के कारण ही क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह द्वेष आदि सभी दुष्प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, जो व्यक्ति को तनावग्रस्त बना देती है।

जैन सूत्रों में प्रथम सूत्र आचारांग में इसी राग–द्वेष तथा तद्जन्य कषाय के कारणों, स्वरूप आदि को समझाया गया है, जो तनाव का मुख्य कारण है।

---

[57] आचारागसूत्र – पृ. 110

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन राग–द्वेष एवं तद्जन्य कषायों के स्वरूप की चर्चा हम आगे करेंगे। जैसा कि हम जानते है राग–द्वेष तनाव की उत्पत्ति का मूल कारण है। वस्तुतः राग–द्वेष के कारण कषायों का जन्म होता है और कषायों के कारण तनाव उत्पन्न होते हैं। राग–द्वेष एवं कषाय का सहसम्बन्ध बताते हुए उमास्वाति ने प्रशमरति नामक ग्रन्थ में लिखा है कि –"राग एवं द्वेष कषाय के दो भेद है।"[58] इन्हीं राग–द्वेष से काषायिक वृत्तियों का जन्म होता है और व्यक्ति स्व–स्वभाव को भूल कर "पर" में आसक्त होता है। "पर" के प्रति आसक्ति के निमित्त से राग और राग के निमित्त से द्वेष वृत्ति जाग्रत होती है। व्यक्ति परिजनों एवं स्वजनों आदि के प्रति 'मेरेपन' का भाव बना लेता है तथा जिनसे राग होता है और उनके विरोधियों के प्रति परायेपन का भाव बनाता है, जिससे द्वेष होता है। व्यक्तियों के साथ–साथ वह वस्तुओं पर भी 'मेरे' एवं पराये का भाव करने लगता है शरीर और इन्द्रियों को अपना मानकर उनके प्रति राग भाव रखता है। इसी रागवश व्यक्ति कई प्रकार पाप कर्म करता हुआ दुःख एवं परिताप को भी प्राप्त होता है। अपनों के वियोग की चिन्ता के दुःख को भी हम तनाव का ही एक रूप कह सकते हैं।

इस राग भाव को ही किसी व्यक्ति वस्तु के प्रति आसक्ति कहा जाता है और यही राग भावना व्यक्ति में कषाय की वृत्ति को जन्म देती है। अपनी इन्द्रियों की विषय–वासना की पूर्ति हेतु एवं स्वजनों एवं परिजनों की आसक्ति हेतु व्यक्ति क्या–क्या नहीं करता। सारा जीवन भोगों की आकांक्षा या तृष्णा में बिता देता है अंत में तनाववयुक्त या उद्विग्न अवस्था में ही मरण को प्राप्त करता है। आचारांगसूत्र में भी तनाव का मूल कारण इन्द्रियो के विषय–भोगों की वासना तथा तद्जन्य कषायों को ही बताया गया है। उसमें वर्णित है कि –"इन्द्रियों के विषयों का अभिलाषी महान् परिताप एवं दुःख का अनुभव करता है। व्यक्ति राग द्वेष के वशीभूत हुआ, तनाव की स्थिति को उत्पन्न करता है। यह मेरी माता है, यह मेरी बहन है, यह मेरा भाई है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी

[58] प्रशमरति–उमास्वाति श्लोक – 31

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पत्नि है, ये मेरे स्वजन हैं; इन्होंने मेरे लिए भोजन, वस्त्र, मकान आदि की व्यवस्था की है, अतः मैं भी इनके लिए यह करूँगा। इस प्रकार विषयों में आसक्त व्यक्ति प्रमादी बनकर दिन–रात बिना विचार किए दुष्कर्म करता है।"[59]

वस्तुतः 'पर' पर स्व का मिथ्या आरोपण या ममत्वबुद्धि ही उसके काषायिक चित्तवृत्तियों के उत्पन्न होने का कारण होती है और यही राग–द्वेष या क्रोध, मान, माया, लोभ आदि कषायवृत्तियों को जन्म देती है और तद्जन्य दुःख का कारण होती है।

यद्यपि राग एवं द्वेष में भी तनाव–युक्त अवस्था का मूल कारण तो राग को ही बताया गया है। जब किसी व्यक्ति या वस्तु पर राग होता है तो उसके विरोधी या बाधक के प्रति द्वेष होता है। इस प्रकार राग–द्वेष से व्यक्ति में कषाय भावना उत्पन्न होती है। व्यक्ति हमेशा इन्द्रियों के विषयों के प्रति आसक्त रहता है। आसक्तिवश उनकी पूर्ति करने में अगर कोई बाधा आती है, तो उसके अंदर एक रोष उत्पन्न हो जाता है। रोष ही क्रोध का समानार्थक शब्द है। क्रोध में व्यक्ति विवेकशून्य होता है। उसे सही–गलत की पहचान नहीं होती और अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने हेतु अलग–अलग ढंग से मायाचार करता है अर्थात् छल–कपट की भावना से माया जाल बुनता है, क्रोध करता है और क्रोध हिंसा को जन्म देता है। हिसंक व्यक्ति तनाव ग्रस्त रहता है। पुनः मान या अहंकार के पोषण हेतु छल–कपट करता है। आचारांग में लिखा है कि राग–द्वेष से युक्त प्रमादी जीव छल–कपट करता हुआ पुनः–पुनः गर्भ में आता है।"[60] दूसरी ओर 'पर' पदार्थो पर 'मेरेपन' का आरोपण कर अभिमान भी करता है। आचारांग में मान को पतन, दुःख अर्थात् तनाव का कारण बताया है –

---

[59] "जे गुणे से मूलठाणे, जे मूल ठाणे से गुणे इति से गुणट्ठी महया परियावेणं पुणो–पुणो वसे पमत्ते तं जहाँ – माया मे, पिया मे, भज्जा मे, पुत्ता मे, धुआ मे, राहुसा मे, सहिसयणसंगंयसंधुआ मे विवित्तुवगरणपरिवट्टण भोयणच्छायंण मे। इच्चत्यं गडिए लोय वसे पमत्ते अहो य राओय परितप्पमाणे कालाकालसमट्ठाई संजोगट्ठी, अट्ठालोय आलम्पे सहसाकारे विणिविरठचित्ते, आचारांग – 2/1/63

[60] आचारांग – 3/1/110

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुहओ जीवियस्य परिवंदन–माणण–पूयणाए, जंसि एगे पमायंति ।।120।।

अर्थात् –रागद्वेष से संतप्त कई–एक जीव अपने जीवन के मान सम्मान के लिए, पूजा–प्रतिष्ठा के लिए प्रमाद–हिंसा आदि पापों का आसेवन करते हैं।[61] प्रमादी व्यक्ति सदा तनावग्रस्त रहता है। अभिमान में व्यक्ति में और अधिक पाने कि लालसा बढ़ जाती है। आचारांग में कषायवृतियों की उत्पत्ति का मूल कारण राग ही कहा है। "खेत, मकान आदि में आसक्त मनुष्य को असंयति जीवन ही प्रिय लगता है और रंगे हुए एवं भिन्न–भिन्न रंग युक्त वस्त्रों, चन्द्रकान्ता आदि मणियों, कुण्डल एवं स्वर्ण आदि के साथ स्त्रियों को प्राप्त करके उनमें आसक्त अत्यन्त अज्ञानी जीव, असंयम जीवन के इच्छुक होते हैं। विषय–भोगों के लिए अत्यन्त रागभाव रखता हुआ शारीरिक, मानसिक दुःखों एवं अपयश को प्राप्त करता हुआ तनावयुक्त जीवन जीता है।"[62]

जब व्यक्ति की दृष्टि भौतिकता की ओर होती है, तब इच्छा तनावजन्य से मुक्त होने के लिए भी वह बाह्य पदार्थो को हीं खोजता है। इस प्रकार व्यक्ति अनुकूल पर राग और प्रतिकूल पर द्वेष करता हुआ तनावयुक्त चित्तवृत्तियों का पोषण करता रहता है। मान का पोषण एवं लोभ की पूर्ति में बाधक तत्वों को जानकर उनके प्रति क्रोध एवं मायाचार करता है। इस प्रकार राग–द्वेष तनावों की उत्पत्ति के बीज हैं, क्योंकि क्रोध, मान, माया, लोभ आदि काषायिक चित्तवृत्तियाँ व्यक्ति को तनावयुक्त बना देती हैं। तनावमुक्ति का उपाय बताते हुएं आचारांग में कहा गया है कि –बुद्धिमान पुरूष को राग–द्वेष को आत्मा से पृथक् करके विषयों को कषाय उत्पत्ति का हेतु जान करके उन्हें छोड़ दे और संयम में पुरूषार्थ करे, जिससे वह तनावमुक्त हो सकता है। आगे वर्णित है कि जो ज्ञान से युक्त संयमनिष्ठ व्यक्ति हैं, वे कषाय–अर्थात क्रोध, मान, माया और लोभ की वृतियों का वमन या त्याग कर देते हैं और स्वतः ही तनावमुक्त हो जाते हैं।

---

[61] आचारांग – 3/3/120

[62] से अबुज्झमाणे हओवहए ..... समुवेई –वही 2/3/80

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तनावमुक्ति के लिए राग–द्वेष का त्याग कहा गया है। उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जिसका मोह (राग) समाप्त हो जाता है, उसका दुःख समाप्त हो जाता है।[69] मोह के विसर्जन तथा राग–द्वेष के उन्मूलन से एकान्त सुख रूप मोक्ष की उपलब्धि होती है।[70] राग–द्वेष की समाप्ति होने पर ही तनावमुक्ति होती है। जैनदर्शन में राग–द्वेष से जनित क्रोध, मान, माया, लोभ रूप मलिन चित्तवृत्तियों को कषाय कहा गया है। उत्तराध्ययनसूत्र एवं उसकी टीकाओं में कषायों के स्वरूप की स्पष्ट व्याख्या उपलब्ध होती है। इसमें क्रोधादि कषायों से विमुक्ति की चर्चा अनेक स्थलों पर की गई है।[71] कषाय क्या है ? वह कैसे तनाव उत्पन्न करता है, इसका विस्तार से विवेचन तो आगे के अध्याय में किया जाएगा। यहाँ इतना बताना अनिवार्य है कि उत्तराध्ययन सूत्र में कषाय के निम्न चार भेद प्रतिपादित किये गये है –क्रोध, मान, माया और लोभ।[72] ये चार कषाय प्रत्येक व्यक्ति में स्वभाविक रूप से होती है, इन पर विजय प्राप्त करने वाला ही तनाव रूपी पिंजरे को तोड़ पाता है। उत्तराध्ययन सूत्र में कषाय को अग्नि की उपमा दी है, जो आत्मा के सद्गुणों को जलाकर नष्ट कर देती है।[73] व्यक्ति के सद्गुण ही उसके जीवन में शांति स्थापित करते हैं और इनके नष्ट होने पर तनावग्रस्त हो जाता है।

(ग) तत्वार्थसूत्र और उसकी टीकाओं में कषायों का स्वरूप और उनका तनावों से सह–सम्बन्ध –

जैन दर्शन के अनुसार जो बंध के हेतु हैं, वही तनाव के कारण भी है। दूसरे शब्दों में कहें तो मोक्ष प्राप्ति में बाधक तत्व ही तनाव उत्पक्ति के हेतु हैं और मोक्ष प्राप्ति के साधन ही तनावमुक्ति के उपाय हैं।

---

[69] उत्तराध्ययन सूत्र – 32/8

[70] उत्तराध्ययन सूत्र 32/2

[71] उत्तराध्ययन सूत्र – 1/9, 2/26, 4/12

[72] उत्तराध्ययन सूत्र 4/12, 29/88 से 71

[73] उत्तराध्ययन सूत्र – 32/7

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुख्य रूप से शास्त्रों में कषाय और योग इन दो बंध हेतुओं का कथन है। तत्वार्थसूत्र[74] व समवायांग[75] में बंध के पाँच हेतु बताए गए हैं –1, मिथ्यात्व, 2. अविरति, 3. प्रमाद, 4. कषाय और 5. योग। इन पाँच में से भी कषाय व योग –इन दो को ही बन्ध का प्रमुख कारण माना गया है। तनाव उत्पत्ति का मूल कारण राग–द्वेष हैं और आत्मा कलुषित भी इन्हीं से होती है। राग–द्वेष होने पर ही जीव में कषाय उत्पन्न होते हैं। तत्त्वार्थसूत्र की हिन्दी व्याख्या में केवलमुनि लिखते हैं कि –"आत्मा के कलुषित परिणाम कषाय हैं।"[76] कषाय के चार प्रकार कहे गये हैं –1. क्रोध, 2 मान, 3 माया और 4 लोभ। ये चारों ही तनाव उत्पन्न करते हैं। कषाय की तीव्रता तनाव के स्तर को बढ़ाती है और कषाय की मन्दता तनाव के स्तर को कम करती है।

कषायों के निमित्त से कर्मों का बंध निरन्तर होता रहता है। "यह बंध चार प्रकार का है – प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, अनुभाग बंध और स्थिति बंध।"[77] कर्मों के स्वभाव को प्रकृति बंध कहते हैं। कर्म पुद्गलों का आत्मा के साथ सम्बद्ध रहने की काल–मर्यादा को स्थिति बंध कहते हैं। कर्म फल की मंदता या तीव्रता को अनुभाग बंध व कर्म–पुद्गल आत्मा के साथ कितनी मात्रा में चिपकते हैं, उसे प्रदेश बन्ध कहते है। कोई भी कर्म उपर्युक्त चार प्रकार से बंधता है, किन्तु कर्मों का स्थिति बंध एवं फल में हानि–वृद्धि तो कषाय की प्रवृत्ति से होती है। कषाय की तीव्रता ही कर्मो की स्थिति में वृद्धि करती है तथा कषाय की मंदता से स्थिति में कमी आती है। इस तरह तनाव एवं कषाय का भी सहसम्बन्ध मानना होता है। जब व्यक्ति में कषाय प्रवृत्ति अधिक होती है तब उसकी विवेक बुद्धि नष्ट होकर व्यक्ति को जीवन पर्यन्त के लिए तनावग्रस्त बना देती है। जिसे हम अनन्तानुबंधी कषाय कहते हैं। चारों कषायों में से एक भी कषाय की तीव्रता अगर व्यक्ति में है तो, शेष कषायों प्रवृत्तियों में भी वृद्धि हो जाती है, जो

---

[74] मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमाद कषाययोगा बन्धहेतवः।, तत्वार्थसूत्र – अध्याय 8 सूत्र–1

[75] समवायांग – समवाय – 5

[76] तत्त्वार्थसूत्र – अध्याय 8, पृ. 352 (केवलमुनिजी)

[77] प्रकृतिस्थित्यनुभावप्रदेशास्तद्विधयः। –तत्वार्थसूत्र – अध्याय – 8/4

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसके सोचने–समझने की क्षमता को समाप्त कर देती है। उसके मानसिक संतुलन को बिगाड़ देती है। कषाय व्यक्ति की सुख–शांति की जिन्दगी में तूफान की तरह आते हैं और उसे तनावग्रस्तता रूपी गड्ढे में गिरा देते हैं। कषाय के सम्बन्ध से ही जीव कर्म पुद्गलों को ग्रहण करता है[78] और उसी के सम्बन्ध से व्यक्ति अपने दैनिक जीवन में तनाव उत्पन्न करता है। कर्म बंध की स्थिति व अनुभाग (तीव्रता) कषाय के आश्रित हैं, क्योंकि कषाय की तीव्रता–मन्दता पर ही स्थिति बंध और अनुभाग बंध की अल्पाधिकता अवलम्बित है।[79] कषाय की ही तीव्रता व मन्दता के आधार पर तनाव भी घटता–बढ़ता रहता है। क्योंकि जितना तीव्र क्रोध होगा उतना मानसिक संतुलन बिगड़ता जाता है। लोभी प्रतिक्षण कुछ प्राप्ति की इच्छा रखता है। इच्छा से तनाव उत्पन्न होता है, क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनंत है, उसकी पूर्ति असम्भव है। उसकी जितनी पूर्ति होती है, लालसा उतनी ही बढ़ती जाती है। वह अपनी लालसाओं की पूर्ति एवं मान–सम्मान के लिए सदैव षड़यंत्र रचता रहता है और इस प्रकार व्यक्ति एक क्षण के लिए भी मानसिक शांति का अनुभव नहीं कर सकता।

तत्वार्थसूत्र में कर्मबंध के हेतुओ में कषाय का भी समावेश किया गया है, किन्तु प्रश्न यह उठता है कि कषाय का सम्बंध आठ कर्मो में से किससे है। इसका उत्तर भी हमें तत्वार्थसूत्र के ही बंध तत्त्व नामक आठवें अध्याय के दसवें सूत्र में मिलता है।[80]–

दर्शनचारित्र मोहनीय कषायनो, कषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्वि षोडशनव भेदाः सम्यक्त्व मिथ्यात्वतदुभे यानि कषायनो कषायावनन्तानुबन्धय–प्रत्याख्यान प्रत्याख्यानावरणं संज्वलनकिल्पाश्चैकशः क्रोधमानमाय लोभा शस्यख्यरतिशोक भय जुगुप्सास्त्रीपुनपुसकवेदाः।।10।।

---

[78] अकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलनादत्ते, –तत्त्वार्थ सूत्र – अध्याय 8/2

[79] तत्वार्थ सूत्र टीका – पं. सुखलाल संघवी पृ. 115

[80] तत्वार्थ सूत्र – अध्याय–8/10

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ यह कहा गया है कषाय का सम्बन्ध मुख्यतः मोहनीय कर्म से है। इसके दोनो भेद अर्थात् दर्शनमोह और चारित्रमोह कषाय से सम्बन्धित है। दर्शनमोह का सम्बंध अन्नतानुबंधी कषाय चतुष्क से है और चारित्र मोहनीका सम्बंध – अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानीय, प्रत्याख्यानीय और संज्वलन कषाय चतुष्क से है।

"चारित्रमोहनीय के प्रमुख दो भेद है –कषायमोहनीय और नोकषाय–मोहनीय।"[81] कषाय के मोहनीय के अन्तर्गत क्रोध, मान, माया और लोभ आते हैं और हास्य, शोक, रति–अरति, भय, जुगप्सा तथा स्त्री–पुरुष और नपुंसक की कामवासना नोकषाय मोहनीय है। ये कषायों के कारण या कार्य होते हैं। कषाय की तीव्रता व मन्दता के आधार पर ही कषाय को चार भागों में विभाजित किया गया है – (1) अनन्तानुबन्धी (2) प्रत्याख्यानीय (3) अप्रत्याख्यान (4) संज्वलन।

इन चारों को चार कषाय में घटाया गया है, इस प्रकार कषाय के सोलह भेद कहे गए है। तत्वार्थसूत्र टीका में इसे इस प्रकार कहा गया है –"क्रोध, मान, माया और लोभ ये कषाय के मुख्य चार भेद है। तीव्रता के तरतमभाव की दृष्टि से प्रत्येक के चार–चार प्रकार है।[82]

अनन्तानुबन्धी – क्रोध, मान, माया और लोभ है। **अप्रत्याख्यानीय** – क्रोध, मान, माया और लोभ। इसी प्रकार **प्रत्याख्यानीय** एवं **संज्वलन** के भी चार–चार भेद करने पर कषाय मोहनीय के सोलह भेद होते है। हास्य, रति, अरति शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरूषवेद व नपुंसकवेद –ये नोकषाय मोहनीय के नवभेद है। प. फूलचंदजी शास्त्री की टीका में इन्हें अकषायवेदनीय और कषायवेदनीय कहा गया है।[83] हास्य आदि नवभेद अकषायवेदनीय के हैं एवं कषायवेदनीय के सोलह भेद हैं।

---

[81] तत्वार्थसूत्र टीका – उपाध्याय श्री केवलमुनि पृ. 369

[82] तत्वार्थसूत्र टीका – पं. सुखलाल संघवी पृ. 198

[83] सर्वार्थसिद्धी – अध्याय – 8 पृ. 301

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपरोक्त सभी नो कषायों एवं कषायों के भेदों को मिलाकर कुल पच्चीस भेद होते है। ये पच्चीस कषाय जब उदय में आते है तब इनकी तीव्रता या मन्दता के कारण व्यक्ति की विवेक क्षमता में परिवर्तन होता है और ये मानसिक तथा दैहिक स्तर पर तनावों को जन्म देते हैं। इसकी विस्तृत चर्चा चतुर्थ अध्याय में की गई है।

प्रत्येक व्यक्ति तनाव से मुक्त रहना चाहता है। तनाव से मुक्ति के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति की चेतना दैहिक एवं मानसिक बाध्यता की स्थिति में भी विवेक एवं समभाव से परिपूर्ण हो, साथ ही क्षमा, सहनशीलता, दया आदि गुणों से युक्त हो। इन गुणों के अभाव में व्यक्ति तनावग्रस्त रहता है। कषायें इन्हीं गुणों की नाशक हैं, अर्थात् उन्हें नष्ट करने वाली हैं। साथ ही इन गुणों के विकास में बाधक तत्व भी हैं। यदि व्यक्ति स्वयं यह समझ ले कि तनावमुक्ति के लिए उसे अपने विवेकादि गुणों को प्राप्त करना है, तो क्रोधादि कषाय के उदय होने पर भी तत्सम्बन्धी प्रतिक्रियायें रोककर, वह अन्तःशुद्धि को प्राप्त कर सकता है अन्तःशुद्धि ही आत्मशुद्धि है और यह आत्मशुद्धि तनावमुक्ति की अवस्था है, क्योंकि इसमें आत्मा, कषाय या नोकषायजन्य तनावों से अप्रभावित या मुक्त रहता है।

पं. फूलचन्द शास्त्री का मानना है कि[84] व्यक्ति के जीवन में स्वातन्त्र्य एवं स्वावलम्बन अनिवार्य रूप से होना चाहिए। "स्वातन्त्र्य और स्वावलम्बन का अविनाभाव सम्बन्ध है। जीवन में स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पुरूषार्थ में स्वावलम्बन का महत्व अपने आप समझ में आ जाता है।" व्यक्ति के दुःख का कारण ही यह है कि वह सदैव दूसरों पर आश्रित रहता है। दूसरे के सहारे ही जीवन जीता है और जब 'पर' का आश्रय छूट जाता है, तो व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है। अगर व्यक्ति स्वतन्त्र और स्वावलम्बी होगा तो आत्मा के यथार्थ स्वरूप को समझेगा। स्वावलम्बी होने से पूर्व भी उसे आत्मस्वातन्त्र्य का बोध होना चाहिए

---

[84] सर्वार्थसिद्धी – अध्याय – 8 पृष्ट 302

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब परावलम्बन और स्वावलम्बन का भेद समझ में आता है, तो व्यक्ति स्वावलम्बी बनने के लिए उद्यत होता है। स्वावलम्बी बनने की भावना उसे पराधीन या परतन्त्र नहीं होने देती। पराधीन व्यक्ति जब पराधीनता को अपने दुःख का कारण जानकर जैसे–जैसे उस पराधीनता या परावलम्बन से मुक्त होता है, उसकी अन्तःशुद्धि होती जाती हैं। जैसे –चिड़िया सोने के पिंजरे में बंद हो, फिर भी खुश नहीं रहती, वह भी आजाद हो कर स्वावलम्बी बनना चाहती है। वैसी ही आत्मा भी मुक्त होना चाहती है। कभी–कभी वह तनावमुक्ति के लिए, स्वतन्त्र होने के लिए और स्वावलम्बी बनने के लिए प्रयास तो करता है किन्तु फिर भी वह उसे जीवन में उतारने में स्वयं को असमर्थ पाता है। इसका कारण उसकी मानसिक कमजोरी ही है, क्योंकि एक बार जीवन किसी के आश्रित हो जाए अर्थात परवालम्बी बन जाए तो उससे छूटना अत्यधिक कठिन होता है। 'पं. फूलचन्दजी शास्त्री ने इसका कारण जीवन की भीतरी कमजोरी माना है और कषाय चतुष्क को इस दशा के बनाये रखने में निमित्त बताया है।''[85] तनावमुक्ति के लिए व्यक्ति का स्वतंत्र एवं स्वावलम्बी होना आवश्यक है और इसके लिए उसे मनोबल बढ़ाने के साथ–साथ अन्तःशुद्धि भी करनी होगी। अंतःशुद्धि में बाधक तत्त्व कषाय चतुष्क का उदय होने पर उनका समभाव से सामना कर कर्मों की निर्जरा करनी होगी, तभी मोक्ष प्राप्ति सम्भव है। कषायमुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है, तनाव से भी और संसार से भी। तत्त्वार्थसूत्र और तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं में भी कषाय को ही संसार भ्रमण का मुख्य कारण बताया है और व्यक्ति के दुःखों एवं तनावों की उत्पत्ति का हेतु भी कहा है। साथ ही मुक्ति के लिए कषाय–मुक्ति को ही एकमात्र मार्ग बताया है।

''जैनदर्शन के अनुसार स्वावलम्बनपूर्ण आचरण को ही सदाचार कहा गया है। इसी सदाचार का दूसरा नाम सच्चारित्र भी है। जो कार्य इस सच्चारित्र में बाधक होते हैं उन्हें ही आगम में चारित्र–मोहनीय कहा गया है।''[86] स्वावलम्बन;

---

[85] सर्वार्थसिद्धी – पृ. 302

[86] सर्वार्थसिद्धि :– अध्याय 8 पृ. 302

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वतन्त्रता, विवेकादि गुण तनावमुक्ति में साधक है और चारित्रमोहनीय तनावमुक्ति में भी बाधक हैं तथा मानसिक शांति को भंग करने वाला है। "चारित्रमोहनीय के कषायवेदनीय और नोकषायवेदनीय भेद कर्म बंध के हेतु है"[87] और ये ही तनाव उत्पत्ति के कारण भी है। "हास्यादि नोकषाय मोहनीय एवं कषाय मोहनीय चुतुष्क दोनों ही जब उदय में आते हैं तो व्यक्ति की स्वतन्त्रता को भंगकर उसे तनावग्रस्त बनाते हैं। अतः कषायमुक्ति ही वास्तविक मुक्ति है क्योकि वही तनावमुक्ति है।

परवर्ती जैन दार्शनिक ग्रन्थो में राग–द्वेष और कषाय का सह–सम्बन्ध

जैन दर्शन के अनुसार वासना या भोग आसक्ति से राग का जन्म होता है, फिर भोगासक्ति या भोगाकांक्षा की पूर्ति में जो बाधक तत्व होते हैं, उनके प्रति द्वेष का जन्म होता है। वस्तुतः राग–द्वेष सहजीवी हैं। जहाँ राग होता है वहाँ द्वेष भी अव्यक्त रूप से तो उपस्थित रहता है, इसीलिए उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है कि राग–द्वेष कर्म या संसार परिभ्रमण के बीज हैं।[88] राग–द्वेष से ही कषायों की उत्पति होती है।

परवर्ती कालीन जैनग्रंथ 'विशेषावश्यक भाष्य' (छठवीं शताब्दी) में राग–द्वेष का कषायों से क्या और कैसे सम्बंध है, इसका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। उसमें विभिन्न नयों के आधार पर यह बताया गया है कि संग्रहनय की दृष्टि से क्रोध और मान द्वेष रूप हैं तथा माया और लोभ रागरूप हैं। इसी बात को प्रकारान्तर से स्थानांग–सूत्र में भी बताया गया है। उसमें कहा गया है कि राग से माया और लोभ व द्वेष से क्रोध और मान का जन्म होता है। क्योंकि क्रोध और मान में दूसरे के अहित या नीचा दिखाने की भावना होती है। अतः ये दोनों द्वेषजन्य हैं। जबकि माया और लोभ दोनों रागरूप हैं, क्योंकि इनमें अपने

---

[87] तत्वार्थसूत्र :– अध्याय 8/9–10

[88] उत्तराध्ययन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वार्थ की साधना ही मुख्य लक्ष्य रहता है। किन्तु व्यवहार नय की अपेक्षा से क्रोध, मान व माया तीनों को द्वेष रूप माना गया है, क्योंकि माया भी दूसरों के अहित का विचार ही है। केवल अकेला लोभ रागात्मक है, क्योंकि उसमें ममत्व भाव है। अध्यात्मसार के ममत्व त्याग अधिकार में भी ममता का कारण लोभ बताया है।[89] इसके विपरीत ऋजुसूत्रनय का कथन यह है कि केवल क्रोध ही द्वेष रूप होता है, शेष मान माया और लोभ एकान्तः न तो राग रूप कहे जा सकते हैं, न द्वेष रूप कहे जा सकते हैं। रागात्मकता से प्रेरित होने पर वे राग रूप होते हैं और द्वेषात्मकता से प्रेरित होने पर वे द्वेष युक्त हो जाते हैं।" डॉ. सागरमल जैन के शब्दों में चारों कषाये राग एवं द्वेष –दोनों पक्षों को अपने में समाहित करके चलती है।"[90] वासना का तत्त्व अपनी तीव्रता की सकारात्मक अवस्था में राग रूप होता है, वही निषेधात्मक अवस्था में द्वेष रूप हो जाता है। राग–द्वेष सहजीवी हैं। यदि राग व्यापक होकर सर्वहित की भावना में बदल जाए, तो वह आवेगात्मक नहीं रह जाता है, वह चित्तवृत्ति के समत्व का आधार बन जाता है। इसी प्रकार द्वेष भी अपनी पूर्णता में जब सभी के प्रति निर्ममत्व की स्थिति में होता है, तो वह भी हमारी चेतना को विक्षोभित नहीं करता है। वस्तुतः सर्वहिताय की वृत्ति और पूर्णतः निर्ममत्व की बुद्धि ऐसी है जो तनाव को जन्म नहीं देती है। राग और द्वेष जब भी किसी विशेष व्यक्ति या वस्तु पर आधारित होते हैं, तो वे तनाव को जन्म देते हैं। क्योंकि उनसे हमारे चित्त का समत्व भंग होता है। हमारे दुःख का मूल कारण भी राग–द्वेष ही है, जो कषाय रूप है। प्रशमरतिप्रकरण में सभी दुःखों का कारण राग–द्वेष बताया है और राग–द्वेष को ही कषाय कहा गया है। जो जीव राग–द्वेष के अधीन होते हैं, वे क्रोधी मानी, मायावी और लोभी कहे जाते है।"[91] इसके विपरीत यह भी सत्य है कि जब राग अधिक व्याप्त होकर सर्व के हित की भावना बन जाता है और द्वेष

---

[89] अध्यात्मसार – 18 अधिकार, ममत्व त्यागः गाथा – 217

[90] जैन बोद्ध गीता के आचार दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन – पृ.

[91] प्रशमरतिप्रकरण – 23

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपनी पूर्णता में निर्ममत्व की साधना बन जाता है तो दोनों ही तनाव को समाप्त करने में सहायक होते हैं। सर्व व्यापी राग व सर्व व्यापी द्वेष तनाव का कारण नहीं है। नियमसार में भी उल्लेखित है कि जिसे राग–द्वेष उत्पन्न न होता है, उसे विकार भी उत्पन्न नहीं होता है।[92] रागद्वेष के अभाव में समता होती है और जहाँ समता है, वहाँ तनाव नहीं होता है। तनाव का मूल कारण राग व द्वेष की सहजीविता है। राग व द्वेष की सहजीविता से ही व्यक्ति में कषाय की वृत्तियाँ उत्पन्न होती है। कषाय व राग–द्वेष का सम्बन्ध बताते हुऐ समयसार में आचार्य कुन्दकुन्द लिखते है कि –मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग आस्रव के निमित्त है और कर्म–आश्रव से बंध होता है। बंध के उदय के निमित्त पुनः राग–द्वेष हैं''[93] और इस प्रकार संसार चक्र चलता रहता है वस्तुतः जहाँ आश्रव है, वहाँ बंध है और जहाँ बंध विपाक है वहाँ तनाव है। क्योंकि आश्रय संसार परिभ्रमण का कारण है और संसारचक्र में तनावमुक्ति संभव नहीं है। तनाव के निमित्त कषाय है, कषाय के निमित्त राग–द्वेष है, अर्थात राग–द्वेष से मुक्ति कषायमुक्ति है और कषायमुक्ति ही तनावमुक्ति है, यही मोक्ष है।

उ. यशोविजयजी कहते है –''यदि ममता जाग्रत हो, अन्दर विषयों के प्रति राग विद्यमान हो, तो विषयों का त्याग करने से भी क्या होगा ? मात्र केंचुली का त्याग करने से सर्प विषरहित नहीं होता है।[94] कहने का तात्पर्य यही है कि व्यक्ति में राग या ममता का जहर फैला हुआ है। राग निर्मल हो जाए तो विषय–भोग का त्याग सहज हो जाता है और व्यक्ति तनावमुक्ति का अनुभव करता है। तनावमुक्ति के लिए राग–द्वेष को छोड़ना ही होगा। जिस प्रकार एक म्यान में दो तलवार नहीं रह सकती उसी प्रकार जहाँ ममत्व है वहाँ समत्व नहीं रह सकता अर्थात जहाँ राग है वहाँ मुक्ति सम्भव नहीं है। ज्ञानार्णव में कहा गया है –जिस पक्षी के पंख कट गए हैं, वह जिस प्रकार उपद्रव करने में

---

[92] नियमसार – परमसमाध्याधिकार – 128

[93] समयसार/आश्रव अधिकार – 164, 165

[94] ममत्वत्यागाधिकार – अध्यात्मसार – उ. यशोविजयजी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असमर्थ हो जाता है, उसी प्रकार राग–द्वेष रूपी पंखों के कट जाने पर, उनके नष्ट हो जाने पर मन रूपी पक्षी भी उपद्रव करने अथवा बाह्य पदार्थों में इष्ट–अनिष्ट बुद्धि करके उनकी प्राप्ति व परिहार के लिए पापाचरण करने में असमर्थ हो जाता है।[95]

———————000———————

[95] ज्ञानार्णव – रागादिनिवारणम् – आ. शुभचन्द्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मदर्शन में तनाव प्रबंधन

अध्याय - 2 तनावों का कारण : जैन दृष्टिकोण

1. आर्थिक विपन्नता (अभाव होना) और तनाव
    - उत्तराध्ययनसूत्र में "वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते"
2. शोषण की प्रवृत्ति और तनाव
    - हरिभद्र के पंचाशक प्रकरण में शोषण नहीं करने के निर्देश
3. पारिवारिक असंतुलन और तनाव
4. सामाजिक विषमताएँ और तनाव
    - उत्तराध्ययन व आचारांग निर्युक्ति आदि में वर्ण व्यवस्था
5. तनावों के मनोवैज्ञानिक कारण
    - जैनदर्शन में मन, वचन और काया प्रवृत्तियाँ आस्रव का हेतु हैं।
6. तनावों के धार्मिक कारण
7. अतीत और भविष्य की कल्पनाएँ और तनाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–2
तनावों के कारण : जैन दृष्टिकोण

जैन दृष्टिकोण के अनुसार तनाव का मुख्य कारण राग–द्वेष एवं कषाय हैं। जैनधर्म में मूल ग्रन्थों में भी दुःख या संसार परिभ्रमण के हेतु राग–द्वेष एवं कषाय बताए गए हैं। दुःखी होने का अर्थ तनावग्रस्त होना है। दशवैकालिकसूत्र में जहाँ चारों कषायों को जन्म–मरण का कारण बताया गया है[1], वहीं आचारांगसूत्र में राग–द्वेष एवं कषाय को दुःख का हेतु कहा गया है।[2]

वस्तुतः कषाय या राग–द्वेष अलग–अलग नहीं है। कषाय के दो मुख्य भेद हैं – राग एवं द्वेष और इन्हीं दोनों से क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषायों का जन्म होता है। इस विषय में विस्तार से चर्चा तो हम चतुर्थ अध्याय में करेंगे। यहाँ केवल इतना जान लेना आवश्यक है कि जैनदर्शन में तनाव का मुख्य कारण राग–द्वेष और तद्जन्य कषाय है। क्योंकि इनके कारण से चित्तवृत्ति का समत्व भंग होता है और जहाँ चित्तवृत्ति का समत्व भंग होता है, वहाँ तनाव अवश्य जन्म लेता है।

यद्यपि जैनदर्शन में तनाव के मुख्य कारण तो राग–द्वेष हैं, किन्तु मनोविज्ञान की दृष्टि में दैनिक जीवन में और भी ऐसे कई कारण हैं, जो व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करते हैं।

1. आर्थिक विपन्नता और तनाव –

भगवान् महावीर के मुख्य पाँच व्रतों में एक व्रत है – अपरिग्रह। अपरिग्रह से तात्पर्य है – संचय नहीं करना। संचय–वृत्ति में भी धन संचय और भोग

---

[1] दशवैकालिक – 8/40

[2] आचारांग – 2/1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामग्री का संचय नहीं करने की वृत्ति को प्रधानता दी गई है। वर्त्तमान युग में धन के प्रति लोगों का आकर्षण बहुत बढ़ गया है। यह आकर्षण इतना बढ़ चुका है कि मनुष्य अर्थ का अर्जन करने के लिए अपने व दूसरों के जीवन का मूल्य भी नहीं समझते। आज के युग में एक कहावत प्रचलित हो गई है कि –"पैसा भगवान् नहीं पर भगवान् से कम भी नहीं है।" अर्थ के प्रति इतनी आसक्ति बढ़ गई है कि भगवान् की आराधना भी धन संचय की कामना से होने लगी है। मुख्य रूप से हिंसा, झूठ, चोरी, कलह, युद्ध आदि कई अनैतिक कर्म भी अर्थ संचय के लिए ही किए जाने लगे हैं। उत्तराध्ययन में भगवान महावीर ने कहा है, जो मनुष्य कुबुद्धि का सहारा लेकर पापकर्मों से धन का उपार्जन करते हैं, वे पापोपार्जित उस धन को यहीं छोड़कर राग–द्वेष के पाश (जाल) में पड़े हुए तथा वैर (कर्म) से बंधे हुए मरकर नरक में जाते हैं।[3] आज व्यक्ति, समाज और विश्व में अशांति या तनाव का प्रमुख कारण अर्थ संचय की वृत्ति बन गई है।

गणाधिपति तुलसी ने लिखा है –'अर्थ का अर्जन, संग्रह, संरक्षण और भोग –यह चतुष्टयी संताप का कारण बन रही है।'[4] व्यक्ति सर्वप्रथम धन अर्जन कैसे करे ? इसके लिए चिंतित रहता है, फिर लोभवश अधिकाधिक संचय करना चाहता है। लोभ की प्रवृत्ति व्यक्ति को कभी शांति का अनुभव नहीं होने देती। उसके मन–मस्तिष्क में लोभ की अग्नि जलती रहती है, जो उसके अन्दर की शांति को भस्म कर देती है, उसे तनावग्रस्त बना देती है। मनुष्य धन का संचय स्वयं के त्राण के लिए करता है, किन्तु धन के संचय एवं संरक्षण में ही स्वयं के प्राण त्याग देता है।

उत्तराध्ययनसूत्र में **'वित्तेण ताणं ण लभे प्रमत्ते'**[5] अर्थात् आसक्त (प्रमत्त) व्यक्ति धन से भी त्राण को प्राप्त नहीं होता है। जैनग्रंथों में अपरिग्रह के बारे में बहुत सी ऐसी अनेक बातें मिलती हैं। धन में मूर्च्छित मनुष्य न इस लोक में और

---

[3] जे पावकम्हेहिं धणं..... उत्तराध्ययनसूत्र 4/2

[4] महावीर का अर्थशास्त्र – आशीर्वचन (पुस्तक का प्रथम पृष्ठ)

[5] उत्तराध्ययन सूत्र 6/5

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न परलोक में धन के माध्यम से त्राण (संरक्षण) नहीं पाता है। पहले धनार्जन की चिन्ता में तनावग्रस्त रहता है, फिर उस उपलब्ध धन के संरक्षण हेतु तनावों में जीता है। पुरूषार्थ प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है, किन्तु वह पुरूषार्थ भी सही कार्य के लिए होना चाहिए। कुछ मतवादी अर्थपुरूषार्थ पर जोर देते हैं। उनका मानना है कि धन ही जीवन को सुरक्षित रख सकता है। आधुनिक अर्थशास्त्र के प्रमुख पुरुष कहते हैं –'हमें अपने लक्ष्य को प्राप्त करना है, सबको धनी बनना है। इस रास्ते में नैतिक और अनैतिक का हमारे लिए कोई मूल्य नहीं है।' वे नैतिकता के विचार को भी धन कमाने के मार्ग में बाधक तत्त्व मानते हैं। आज विश्व में भ्रष्टाचार करने वाले व्यक्तियों का राज है। यही भ्रष्टाचार पूरे विश्व में अशांति फैला रहा है। यदि अर्थशास्त्रियों की विचारधारा यही है कि धन के उपार्जन में नैतिकता का कोई मूल्य नहीं है तो फिर विश्व का प्रत्येक प्राणी एवं स्वयं प्रकृति भी तनावग्रस्त ही रहेगी। सभी को सदैव भय बना रहेगा कि कब, कौन, किसकी हिंसा कर दे और यह भय की वृत्ति तनावग्रस्तता की सूचक है। आज बढ़ते हुए आर्थिक अपराधों, अप्रामाणिकता और बेईमानी ने पूरे विश्व को अशांत व तनावग्रस्त बना दिया है। प्रत्येक व्यक्ति इन सबसे बचने के लिए धन को ही अपना संरक्षक मानते हैं, परन्तु भगवान् महावीर के अनुसार धन किसी का त्राणदाता नहीं बन सकता है। उनका मानना है कि –वासना की अंधेरी गुफा में जिसका विवेकरूपी दीपक बुझ गया हो, उसको शान्ति कहाँ मिलेगी। वह मनुष्य तनावमुक्त होने के मार्ग को देखकर भी नहीं देख पाता है।[6]

आचार्य तुलसी ने उत्तराध्ययन की पूर्वोक्त गाथा का विवेचन करते हुए लिखा है कि –'व्यक्ति धन कमाता है, पर वह (धन) उसके लिए त्राणदायक नहीं बनता। धन सुख–सुविधा दे सकता है, पर शरण नहीं।[7]

---

[6] उत्तराध्ययनसूत्र – अध्याय 4/5

[7] उत्तरज्झयणाणि, आचार्य तुलसी, अध्याय–4 की गाथा–5 का अर्थ विवेचन, पृ. 114

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः वे व्यक्ति जो धन को त्राणदाता समझकर उसके अर्जन में पापकर्मों को करते हैं, वही धन उनकी की मानसिकता पर एक दबाव बनाए रखता है। उदाहरण के लिए –यह धन कहीं चोरी न चला जाए –इसकी चिंता, इतने धन को किस प्रकार भोग करूं, कहीं मेरे मरने पर यह धन कोई दूसरा तो न ले जाए, धन के लालच में कोई व्यक्ति मुझे कोई नुकसान न पहुँचाए या मृत्यु न दे दे, आदि का भय उसे तनावग्रस्त बनाए रखता है और धन के मोह में आसक्त चाहकर भी तनावमुक्त नहीं हो पाता है। वह भयमुक्त या तनावमुक्त होने के लिए भी उसी धन का ही सहारा लेता है जो उसे तनावग्रस्त बनाता है। जैन ग्रंथों में एक कथा है[8] –'इन्द्रमह उत्सव का आयोजन था। राजा ने अपने नगर में घोषणा करवाई कि आज नगर के सभी पुरुष गांव के बाहर उद्यान में एकत्रित हो जाएं। कोई भी पुरुष नगर के भीतर न रहे। यदि कोई रहेगा तो उसे मौत का दंड भोगना पड़ेगा। सभी पुरुष नगर के बाहर एकत्रित हो गए। राजपुरोहित का पुत्र एक वेश्या के घर में जा छुपा। राज्य कर्मचारियों को पता लगा और वे वेश्या के घर से उसे पकड़ कर ले गए। वह राजपुरुषों के साथ विवाद करने लगा। वे उसे राजा के समक्ष ले गए। राजाज्ञा की अवहेलना के जुर्म में राजा ने उसे मृत्युदंड दिया। पुरोहित राजा के समक्ष उपस्थित होकर बोला राजन्! मैं अपनी समस्त सम्पत्ति आपको दे देता हूँ। आप मेरे इकलौते पुत्र को मुक्त कर दें। राजा ने उसकी बात स्वीकार नहीं की और पुरोहितपुत्र को शूली पर चढ़ा दिया।' आशय यह है कि धन त्राणदाता न बन सका।

आज सम्पत्ति या धन हीं अशांति एवं तनाव का प्रमुख कारण है। धन अपने साथ व्यक्ति में कई पाप कर्मों को लेकर आता है और उसे इतना तनावग्रस्त बना देता है कि जहाँ से मुक्ति–पथ अर्थात् तनाव–मुक्ति के मार्ग पर

---

[8] बृहद्वृत्ति, पत्र–211

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आना संभव नहीं हो पाता। जैन आचार्य नेमिचन्द्र ने वित्त (धन) के परिणामों की चर्चा करते हुए एक गाथा उद्धृत की है[9] –

मोहाययणं मयकामवद्धणो जणियचित्तसंतावो
आरंभकलह हेऊ, दुक्खाण परिग्गहो मूलं।

अर्थ – परिग्रह मोह का आयतन है। यह अहंकार और वासना को बढ़ाने वाला एवं चित्त में संताप पैदा करने वाला है, साथ ही हिंसा और कलह का हेतु तथा दुःखों का मूल कारण है।

यह ठीक है कि धन से भौतिक सुख मिलते हैं, किन्तु जैन आगमों में कहा गया है – **खणमित्त सोक्खा बहुकाल दुक्खा** – भौतिक सुख क्षणिक होता है तथा परिणाम में बहुत काल तक दुःख देने वाला होता है।[10]

दुःख, अशांति, भय, कलह आदि तनावों से बचने के लिए जीवन का आधार भौतिकता को नहीं मानते हुए आध्यात्मिकता मानने की आवश्यकता है। धन से क्षणभर के लिए भौतिक सुख तो मिल जाएगा, किन्तु जीवन में शांति का अनुभव कभी नहीं हो सकेगा।

उपर्युक्त विवेचन से यह तो सिद्ध हो जाता है कि अर्थ तनाव का हेतु है। किन्तु एक प्रश्न सामने आता है कि धन के अभाव में जीवन–निर्वाह कैसे करें ? जीवन जीने के लिए व्यक्ति को रोटी, कपड़ा, मकान चिकित्सा आदि मूलभूत वस्तुओं की आवश्यकता होती है, जिनके अभाव में भी व्यक्ति दुःखी या तनावग्रस्त होता है और ये वस्तुएं बिना धन के नहीं मिल सकती हैं। अतः व्यक्ति को अपने जीवन– निर्वाह के लिए धन का अर्जन करना पड़ता है। परिस्थितियां बदलती रहती हैं, इसलिए वह भविष्य में जीवन–निर्वाह एवं रोगादि की स्थिति में चिकित्सा के लिए धन का संचय करता है और इसी कारण वश उसका संरक्षण भी करना पड़ता है। वस्तुतः तो धन का अर्जन, संचय, संरक्षण

---

[9] उद्धृत – सुखबोधा, पत्र–83

[10] महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 17

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदि तनाव उत्पत्ति के हेतु ही हैं, फिर भी जीवन की सुख–सुविधा के लिए धनार्जन करना ही पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति मुनि जीवन धारण नहीं कर सकता है, तो ऐसी स्थितियों में तनाव के कारणों का निवारण कैसे हो सकता है ? तनाव प्रबंधन कैसे किया जा सकता है।

इसके उत्तर में जैनदर्शन कहता है कि –जीवन को अध्यात्म के साथ जीओ। यदि अर्थ को जीवन–निर्वाह का साधन मात्र मानें, उस पर ममत्त्व बुद्धि का आरोपण न करे, तो वह धन तनाव–उत्पत्ति का कारण नहीं होगा। इसी बात को ध्यान में रखते हुए आचार्य महाप्रज्ञजी ने 'महावीर का अर्थशास्त्र' नामक पुस्तक में आधुनिक अर्थशास्त्र के मुख्य तत्त्वों इच्छा, आवश्यकता, व मांग में निम्न चार बातों को और जोड़ दिया है[11] – सुविधा, वासना, विलासिता और प्रतिष्ठा।

व्यक्ति को अर्थ तीन बातों के लिए चाहिए –प्रथम अपनी माँग (अनिवार्य आवश्कता) को पूरा करने के लिए, दूसरे अपनी प्रतिष्ठागत आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए व तीसरे इच्छाओं को पूरा करने के लिए।

तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो माँग (जैविक आवश्यकता) व्यक्ति पर कम दबाव डालती है, क्योंकि उसकी माँगें उतनी ही होती हैं, जितनी उसे अति–आवश्यकता लगती है। अति–आवश्यकताएं भी उनकी पूर्ति के लिए व्यक्ति को अर्थ उपार्जन के लिए प्रेरित करती हैं। किन्तु जब वे आवश्यकताऐं इच्छाएँ बन जाती हैं, तो सभी इच्छाओं की पूर्ति असम्भव होने से वे तनाव के स्तर को बढ़ा देती हैं।

यद्यपि जैविक एवं सामाजिक आवश्यकताएं तो पूरी हो सकती हैं, किन्तु जब उन आवश्यकता की जगह इच्छाएं ले लेती हैं, तो उनकी पूर्ति असम्भव हो जाती है, क्योंकि जैनदर्शन के अनुसार इच्छाएं तो आकाश के समान अनन्त

---

[11] महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 17

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं।[12] अनन्त इच्छाओं की पूर्ति असम्भव होने से ये अतृप्त इच्छाएं तनाव के स्तर को बढ़ा देती हैं।

व्यक्ति केवल आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अर्थ का संचय नहीं करता है। वह अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं, वासनाओं, सुख–सुविधा तथा विलासिता के साधनों एवं सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए भी अर्थ संचय करता है।[13]

वर्त्तमान युग में उपभोवादी जीवन दृष्टि का विकास हो रहा है। आज व्यक्ति अपनी आवश्यक सुविधाओं से अतिरिक्त भी कुछ चाहता है। उसकी अर्थ के प्रति आसक्ति इतनी बढ़ गई है कि मनुष्य अपने से ज्यादा अर्थ को प्रधानता देता है। वह धन का उपार्जन अपनी अनियंत्रित इच्छाओं की पूर्ति के लिए करता ही रहता है और जीवन में कभी शांति को प्राप्त नहीं कर पाता है। आज व्यक्ति में स्वार्थ इतना बढ़ चुका है कि वह न स्वयं शांति से जीता है न दूसरों को शांति से जीने देता है।

अर्थ तनाव का हेतु है, क्योंकि अर्थ अर्जन का एक हेतु व्यक्ति की तृष्णा या इच्छा भी है। आचारांग में लिखा है –व्यक्ति तृष्णारूपी चलनी को जल से भरना चाहता है। तृष्णा की पूर्ति के लिए व्याकुल (तनावग्रस्त) मनुष्य दूसरों के वध के लिए, दूसरों के परिताप के लिए, दूसरों को परिग्रहित करता है तथा जनपद के वध, व परिग्रहण के लिए प्रवृत्ति करता है।[14] मधुकर मुनि इसी सूत्र का विवेचन करते हुए लिखते हैं कि –आगम में सुखाभिलाषी पुरुष को अनेकचित्त बताया है, क्योंकि वह लोभ से प्रेरित होकर कृषि, व्यापार, कारखाने आदि अनेक धंधे करता है, उसका चित्त रात–दिन, उन्हीं अनेक धंधों की उधेड़बुन में लगा रहता है।[15] अर्थ को तनाव का हेतु बताते हुए वे आगे लिखते हैं कि अनेकचित्त (अनेक इच्छाओं से युक्त) पुरुष अतिलोभी बनकर कितनी

---

[12] आचारांग

[13] महावीर का अर्थशास्त्र, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 18

[14] आचारांग–अध्ययन– 3/2/118

[15] आचारांग–अध्ययन–3/2/सूत्र 118 का विवेचन, पृ. 93, मधुकर मुनि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असम्भव इच्छाओं की पूर्ति चाहता है, इसके लिए शास्त्रकार चलनी का दृष्टान्त देकर समझाते हैं कि जैसे चलनी को जल से भरना अशक्य है, अर्थात् चलनी रूपी महातृष्णा को धनरूपी जल से भरना असम्भव है। वह अपने तृष्णा के खप्पर को भरने हेतु दूसरे प्राणियों का वध करता है, दूसरों को शारीरिक व मानसिक संताप देता है।[16] तृष्णाग्रस्त व्यक्ति न स्वयं शारीरिक व मानसिक सुख पाता है, न दूसरों को शांति से रहने देता है। वह स्वयं तनावग्रस्त होकर दूसरों को भी तनावग्रस्त बनाता है। तृष्णायुक्त व्यक्ति द्विपद (दास--दासी, नौकर आदि), चतुष्पद (चार पैरों के पशु) आदि का संग्रह करता है। इतना ही नहीं, वह असीम लोभ से उन्मत्त होकर लोगों को मारता है, उन्हें अनेक प्रकार के दुःख देता है। तृष्णाकुल मनुष्य स्वयं व्याकुल व तनावयुक्त होता है और दूसरों को तनावग्रस्त बनाता है। उसकी धन अर्जन की तृष्णा तनाव का कारण बनी रहती है।

आर्थिक विकास, वैश्विक विकास के लिए आवश्यक है, किन्तु वह विकास तनाव उत्पन्न करने के लिए नहीं होना चाहिए। यह सत्य है कि अर्थ का अभाव तनाव दे सकता है, किन्तु ऐसे तनाव की तीव्रता अतिअल्प होती है। आर्थिक विकास का लक्ष्य उत्तम है, किन्तु वह प्रत्येक व्यक्ति की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति एवं व्यक्ति की मानसिक शांति या तनावमुक्ति के लिए होना चाहिए।

शोषण की प्रवृत्ति और तनाव –

आधुनिक साम्यवादी अर्थतंत्र में समाज को दो वर्गों में विभाजित किया जाता है, एक शोषक और दूसरा शोषित। पूँजीपति वर्ग को शोषक और श्रमिक वर्ग को शोषित माना जाता है। शोषक का सामान्य अर्थ श्रमिक को उसके श्रम से अर्जित लाभ का पूरा हिस्सा नहीं देना। इसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग धीरे–धीरे गरीब और शोषक वर्ग धीरे–धीरे अमीर बनता जाता है और इस प्रकार

---

[16] आचारांग–अध्ययन–3/2/सूत्र 118 का विवेचन, पृ. 94, मधुकर मुनि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है, एक अमीर और दूसरा गरीब। गरीब व निर्धन वर्ग अपनी दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी नहीं कर पाता है। वह रोटी, कपड़ा व मकान की समस्याओं में झूंझता रहता है। दूसरी ओर पूँजीपति के भोगोपभोग के प्रचुर साधनों को देखकर श्रमिक वर्ग के मन में ईर्ष्या की भावना उत्पन्न होती है। एक ओर अभावग्रस्त जीवन और दूसरी ओर ईर्ष्या की वृत्ति, इन दोनों के परिणामस्वरूप उसका जीवन तनावग्रस्त बन जाता है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि तनावग्रस्त होने का एक कारण पूँजीपति वर्ग द्वारा गरीब के शोषण की प्रवृत्ति भी है।

एक ओर भौतिक सुख–सुविधा के आकर्षण उसे लुभाते हैं, तो दूसरी ओर उन साधनों को क्रय करने में धन का अभाव उसकी चेतना में तनाव को जन्म देता है। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अमीरों के द्वारा श्रमिकों के शोषण की प्रवृत्ति भी तनाव का एक प्रमुख कारण है। शोषित वर्ग अभावग्रस्त होने के कारण सदैव तनावों से ग्रस्त बना रहता है। उन तनावों से छुटकारा पाने के लिए वह मादक द्रव्यों का सेवन करता है और इसके परिणामस्वरूप एक ओर उसकी पारिवारिक अर्थव्यवस्था भी अव्यवस्थित हो जाती है, तो दूसरी ओर परिवार के सदस्यों में कलह प्रारम्भ हो जाता है और यह कलह पुनः उसे तनावग्रस्त बना देता है। इस प्रकार उसके जीवन में तनावों का एक दुष्चक्र प्रारम्भ हो जाता है। कभी यह भी होता है कि पूँजीपति के पास जो सुख–सुविधा व उपभोग के अतिरिक्त साधन होते हैं, उन्हें देखकर व्यक्ति अपनी आर्थिक क्षमता का विकास न करके अपव्यय करने लगता है। इस अपव्यय के परिणामस्वरूप वह धीरे–धीरे कर्ज के बोझ में डूबकर गरीब होता जाता है और उस कर्ज को चुकाने की चिन्ता में और अधिक तनावग्रस्त होता जाता है।

इस प्रकार यह एक सुनिश्चित तथ्य है कि भौतिक आकर्षण, शोषण, भोगवादी जीवनदृष्टि व गरीबी –ये सभी व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि शोषण, गरीबी और भौतिक आकर्षणों से उत्पन्न ईर्ष्या,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये तीनों ही व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाते हैं। अतः जैनदर्शन में सर्वप्रथम यह प्रतिपादित किया गया है कि श्रमिकों को उनके श्रम का पूरा पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए ताकि वे अपना जीवनयापन सम्यक् प्रकार से कर सकें। आचार्य हरिभद्र ने अपने ग्रंथ 'पंचाशकप्रकरण' में जिनभवन निर्माण विधि में यह बताया है कि श्रमिकों को उनके श्रम के प्रतिदान के रूप में पूरा पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए, ताकि वे अभाव में जीवन न जीएं।[17] यदि श्रमिकों को अपने श्रम का यथोचित प्रतिदान उपलब्ध होता है तो वे संतोषपूर्वक अपना सामान्य जीवन बिताते हैं और उनके मन में धनी वर्ग के प्रति विद्वेष की भावना भी जन्म नहीं लेती है। जैनदर्शन का यह प्रमुख सिद्धांत है कि व्यक्ति को पारस्परिक हित का ध्यान रखते हुए जीवन जीना चाहिए। तत्त्वार्थसूत्र के पाँचवे अध्याय में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि –**परस्परोपग्रहजीवानामः** अर्थात् जीवों को एक दूसरे का सहयोग करते हुए जीवन जीना चाहिए।[18] जैनदर्शन यह मानता है कि सम्यक् जीवन जीने के लिए परस्पर सद्भाव की वृत्ति होना चाहिए। जहाँ पारस्परिक सहयोग की वृत्ति होती है, वहां शोषण की वृत्ति नहीं होती है और इसके परिणाम स्वरूप सामाजिक जीवन में पारस्परिक विद्वेष व घृणा भी जन्म नहीं लेती है। अतः यदि समाज में तनावमुक्त जीवन जीना है तो पारस्परिक सहयोग की वृत्ति से ही जीवन जीना होगा। समाज व्यवस्था का आधार शोषण नहीं, सहयोग की भावना है। साथ ही जैन आचार्यों ने परिग्रह परिमाण व्रत व भोगोपभोग परिमाण व्रत की व्यवस्था देकर यह बताया है कि जब व्यक्ति में संग्रह बुद्धि नहीं होती है और भोगों–उपभोगों की आकांक्षाएं भी मर्यादित होती है, तो उसका जीवन शांत और सामंजस्यपूर्ण होता है। इसी हेतु भारतीय दर्शन में 'सादा जीवन और उच्च विचार' का सूत्र प्रस्तुत किया गया है। इस सूत्र के आधार पर अगर जीवन जीया जाए तो पारस्परिक ईर्ष्या व विद्वेष की भावना भी जन्म नहीं लेगी। यदि व्यक्ति अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुरूप अपने व्यय को

17

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीमित रखेगा तो भी पारस्परिक ईर्ष्या की भावना जन्म नहीं लेगी और इस प्रकार व्यक्ति तनावों से मुक्त रह सकेगा। परिग्रह परिमाण व्रत से शोषण की प्रवृत्ति कम होगी और भोगोपभोग परिमाण व्रत से भोगवादी जीवन दृष्टि पर अंकुश लगेगा और इस प्रकार व्यक्ति तनावों से मुक्त हो सकेगा। इस विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि जैन आचारदर्शन एक ओर तनावों की उत्पत्ति के मूल कारण की गवेषणा करता है, तो दूसरी ओर उनके निराकरण का उपाय भी सुझाता है।

पारिवारिक असंतुलन और तनाव –

जब दो या दो से अधिक व्यक्ति पारस्परिक हितों के साधन के लिए एक सूत्र में बंधे हों या एक दूसरे के सहयोग के लिए साथ रहते हों, तब वह परिवार कहलाता है, जिसका प्रत्येक सदस्य पारस्परिक स्नेह, सहयोग और विश्वास से जुड़ा होता है। किन्तु जब इन पारस्परिक स्नेह, सहयोग और विश्वास के धागों में खिंचाव आता है और परिवार टूटने या बिखरने लगता है, तब परिवार के प्रत्येक सदस्य में तनाव उत्पन्न होता है तथा परिवार की शांति भंग हो जाती है। परिवार एक ऐसा समूह है, जिसकी एक भी इकाई यदि परिवार की एकजुटता के इन सिद्धांतों के विरूद्ध जाए या पारिवारिक व्यवस्था के नियमों को तोड़े तो पूरा परिवार तनावग्रस्त हो जाता है।

परिवार की परिभाषा –

समाजशास्त्री इयान–राबर्टसन के अनुसार[19] –"परिवार लोगों का अपेक्षाकृत स्थायी समूह है, जो वंश–परम्परा, विवाह अथवा एक–दूसरे के अंगीकरण के

---

[19] Magill, N.Frank (1995) International Encyclopedia of Sociology Fitzroy Dearbon publishers, USA, Vol. – 1, Page – 506.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा संबंधित होता है और जिसके सदस्य एक साथ रहकर एक आर्थिक इकाई का निर्माण करते हैं, और अपने बच्चों की देखरेख करते हैं।"

लामन्ना और रीडमान ने परिवार का परिभाषित करते हुए कहा है कि –"जब लैंगिक अभिव्यक्ति अथवा पारिवारिक सम्बन्धों के आधार पर जिसमें व्यक्ति प्रायः वंश–परम्परा, विवाह अथवा अभिस्वीकरण द्वारा एक–दूसरे से सम्बन्धित होते हैं, पूरी निष्ठा से एक साथ रहते हैं तथा एक आर्थिक इकाई का निर्माण करते हैं और बच्चों को जन्म देते हैं तथा उनका पालन–पोषण करते हैं एवं घनिष्ठ रूप से जुड़कर एक समूह के रूप में अपनी पहचान पाते हैं, तब वह परिवार कहलाता है।"[20]

उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि परिवार एक ऐसा समूह है, जिसमें साथ रह रहे लोगों में बीच अपनत्व की भावना, एक–दूसरे पर अधिकार, विश्वास होता है। एक–दूसरे के प्रति प्रेम होता है। आपस में निकटस्थ सम्बन्ध होता है। यदि किसी परिवार में पारस्परिक स्नेह, सहयोग, विश्वास आदि के तत्त्व कायम रहेंगे, तो वह परिवार एक तनावमुक्त या शांतिपूर्ण परिवार कहलाएगा। पारस्परिक सहयोग की भावना, विश्वास, शांति, नम्रता, सहनशीलता आदि गुण परिवार का संतुलन बनाए रखते हैं। परिवार के प्रत्येक व्यक्ति में इन गुणों का होना ही पारिवारिक शांति या परिवार के तनावमुक्त होने का आधार है, जबकि इनके अभाव में परिवार तनावग्रस्त बन जाता है।

पारस्परिक सहयोग, विश्वास एवं त्याग–भावना किसी भी तनावमुक्त परिवार की प्राथमिक आवश्यकता है। एक प्रचलित कहावत है कि –"एक गंदी मछली पूरे तालाब को गंदा कर देती है।"

---

[20] Lamanna, Mary Ann. & Agnes Riedma (1991) Marriage and families : Making choices and facing the change, 4th ed. Belmont,California Wadsworth

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसी प्रकार यदि परिवार का एक सदस्य भी दुष्ट प्रवृत्ति करता है, स्वार्थ–साधन के साथ उस समूह में रहता है तो वह स्वयं तो तनावग्रस्त रहता ही है, साथ–ही–साथ सम्पूर्ण परिवार को भी तनावग्रस्त कर देता है। जैनदर्शन के अनुसार परिवार का संतुलन बना रहे, वह तनावमुक्त रहे इसके लिए आवश्यकता है कि परिवार के प्रत्येक सदस्य में पारस्परिक सहयोग की वृत्ति बनी रहे और परिवार का प्रत्येक सदस्य उन दुष्प्रवृत्तियों या वैयक्तिक स्वार्थ–साधन की प्रवृत्तियों से दूर रहे, जो समूह में तनाव उत्पन्न करती हैं और परिवार की शांति को भंग करती हैं। क्योंकि जैनदर्शन के अनुसार वे सभी बातें जो पारिवारिक हित के विरूद्ध कार्य करती हैं, अनैतिक भी होती हैं।

परिवार में तनाव के कारण –

डॉ. बच्छराजजी दूगड़ ने पारिवारिक अशांति के कारणों को दो भागों में विभाजित किया है – वैयक्तिक एवं अवैयक्तिक।[21] वैयक्तिक कारण उन्हें कहते हैं, जिसमें परिवार के सदस्यों के स्वभाव, विचार आदि में भिन्नता होने से परिवार में विरोध उत्पन्न होता है या मतभेद होता है और जिससे परिवार तनावग्रस्त होता है। जैनदर्शन के अनुसार पारिवारिक सदस्यों की प्रवृत्तियों में विरोध के परिणामस्वरूप उनमें तनाव इतना बढ़ जाता है कि उनका एकसाथ रहना असहनीय हो जाता है।

हार्नेल तथा हार्ट ने परिवार में पति–पत्नी के सम्बन्ध को लेकर यह समझाने का प्रयत्न किया है कि –"दोनों के बीच यौन सम्बन्ध तथा बच्चे का जन्म और पालन–पोषण के अतिरिक्त भी विवाह कोई अन्य व्यवस्था भी है। जहां पारस्परिक समर्पण एवं त्याग का भाव है। परिवार के संदर्भ में विवाह दो व्यक्तियों का ऐसा सम्बन्ध है, जिसमें दोनों की आदतें, मित्रता, सम्पत्ति, लक्ष्य, प्रवृत्तियाँ और उनमें निहित शक्तियाँ आदि के विविध तत्त्व निहित होते हैं। जब

---

[21] पारिवारिक शांति और अनेकान्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोनों सदस्य एक–दूसरे के मध्य तादात्म्य का अनुभव करते हैं, तब ही दोनों के व्यक्तित्व का समग्र विकास होता है, किन्तु वे ही जब एक–दूसरे का निरादर करते हैं अथवा एक–दूसरे पर अधिकार जताने का प्रयत्न करते हैं तो विवाह सम्बन्ध भी अभिशाप बन जाता है।"[22]

परिवार के सदस्यों के व्यक्तित्व में जब मतभेद उत्पन्न हो जाता है एवं जब वे एक–दूसरे की भावनाओं को समझने का प्रयास नहीं करते तो पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हो जाता है।

परिवार में तनाव उत्पन्न होने के वैयक्तिक कारण निम्न हैं –

1. व्यक्तित्व की विभिन्न संरचनाऐं।[23]
2. परिवार के सदस्यों के व्यक्तित्व में उत्पन्न हुई मनोविकृतियाँ।[24]
3. परिवार के सदस्यों के स्वभाव में विपरीतता।
4. सदस्यों के मध्य समन्वय का अभाव।
5. एक–दूसरे के प्रति व्यवहार के भिन्न तरीके।
6. परिवार के मुखिया या माता–पिता में अन्य सदस्यों पर अत्यधिक अनुशासन की प्रवृत्ति।
7. सदस्यों में पारस्परिक सम्बन्धों को समझने का अभाव।
8. सदस्यों में सहयोग व सामंजस्य का अभाव।
9. सहनशीलता का अभाव।
10. सदस्यों के वैचारिक मतभेद।
11. एक–दूसरे में ईर्ष्या की प्रवृत्ति होना।
12. सदस्यों में अहंकार की वृत्ति उग्र होना।
13. एक–दूसरे के प्रति विश्वास की कमी।
14. रूचि–भेद।[25]
15. सदस्यों में स्वार्थी होने की प्रवृत्ति का विकास।

---

[22] Hornell and Eila Hart, Unsuccessful Marrige" in the wolrd tomorrow (1927)

[23] पारिवारिक शांति और अनेकान्त – डॉ. बच्छराज दुग्ड़, पृ. 18

[24] पारिवारिक शांति और अनेकान्त – डॉ. बच्छराज दुग्ड़, पृ. 18

[25] परिवार के साथ कैसे रहें ? – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 22

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिवार में तनाव उत्पन्न होने के अवैयक्तिक कारण[26] –

अवैयक्तिक कारण भी पारिवारिक अशांति के निमित्त बनते हैं। परिवार में तनाव के कुछ ऐसे भी कारण होते हैं, जो किसी एक सदस्य के द्वारा उत्पन्न नहीं होते हैं, अपितु वे कारण सम्पूर्ण परिवार में तनाव उत्पन्न कर देते हैं। जिनमें से कुछ निम्न हैं.–

1. पीढ़ीगत भेद।
2. आर्थिक असंतुलन
3. सांस्कृतिक अन्तर
4. पति–पत्नी के सामाजिक–स्तर में अंतर
5. बच्चों से माता या पिता के सम्बन्ध
6. व्यावसायिक तनाव/प्रशासनिक प्रताड़ना
7. अर्थहीन रूढ़िवादिता

जैनाचार्य महाप्रज्ञजी ने भी कुछ पारिवारिक समस्याएँ बताई हैं, जो परिवार में कलह का हेतु बनती हैं। वे समस्याएँ निम्न हैं[27] –

1. दहेज की समस्या
2. तलाक की समस्या
3. पुरुषार्थ में कमी
4. परिवार के किसी सदस्य या सदस्यों में नशे की आदत
5. वृद्धों की उपेक्षा
6. सांस्कृतिक संक्रमण की समस्या

परिवार में तनाव के अन्य कारण –

---

[26] पारिवारिक शांति और अनेकान्त – डॉ. बच्छराज दुग्ड़, पृ. 18

[27] परिवार के साथ कैसे रहें ? – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 16, 131–137

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. पारिवारिक हिंसा अर्थात् दूसरों को प्रताड़ित करने की वृत्ति भी परिवार की अशांति एवं तनाव का कारण बनती हैं।[28] गेलीज और स्ट्राउस[29] एवं कुछ अन्य समाजशास्त्रियों का यह मानना है कि परिवार हिंसा का एक बड़ा केन्द्र है, जहाँ प्रत्येक सदस्य दूसरों पर शासन करना चाहता है।

2. द्विपक्षीय सम्बन्धों की अस्थिरता की प्रवृत्ति भी पारिवारिक सम्बन्धों में तनावों को जन्म देती है।[30]

3. पारिवारिक जीवन में जन्म, मृत्यु एवं सामाजिक परम्पराओं के निर्वाह के कारण पारिवारिक–संरचना निरन्तर परिवर्तन के दौर से गुजरती रहती है।[31] इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप परिवार में तनावों की अनेक स्थितियाँ पैदा हो जाती है।

4. समाज में प्रत्येक परिवार की चाह होती है कि उसके सदस्यों को पर्याप्त मात्रा में भोजन, कपड़ा, आवास आदि की सुविधाएं मिले। किन्तु परिस्थितिवश परिवार के हेतु अर्जन करने वाले सदस्यों द्वारा अपेक्षित सुविधाओं के संसाधनों को नहीं जुटा पाने के कारण उस परिवार के सदस्य तनावग्रस्त हो जाते हैं।[32]

5. जब परिवार में दो भाईयों या अन्य सदस्यों के बीच झगड़ा होता है या कोई परिवार से पृथक् (अलग) होता है, तब भी पूरे परिवार में तनाव का माहौल उत्पन्न हो जाता है।

---

[28] पारिवारिक शांति और अनेकान्त – डॉ. बच्छराज दुग्ड़, पृ. 19

[29] (A) Gelles Richard and Murray A. Stuaus. - Determinats of violence in the family : Toward a theoretical Integration. (b) In W.Burs R. Hill, I-I Nye and I Reias (Eds.); Contemporary theories About the family. (c) new York: Free Press, 1978, पारिवारिक शांति और अनेकांत, पृ. 36

[30] Simmel. Georg. Conflict and the web of group affiliations. Free Press, 1955 (1908)

[31] पारिवारिक शांति और अनेकान्त – डॉ. बच्छराज दुग्ड़, पृ. 19

[32] पारिवारिक शांति और अनेकान्त – डॉ. बच्छराज दुग्ड़, पृ. 26

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

6. जब परिवार की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है, तब भी परिवार तनावग्रस्त होता है।

7. जब परिवार के मुख्य सदस्य या किसी अन्य सदस्य को कोई क्षति पहुंचाने की धमकी दी जाती है, तो भी पूरा परिवार तनावग्रस्त हो जाता है।[33]

8. पुरुष प्रधान समाज में स्त्री के साथ दुर्व्यवहार भी परिवार में तनाव पैदा कर देता है।

9. स्त्री के मन में भय की भावना पैदा कर देना, उसके आत्म–सम्मान को चोट पहुंचाना भी तनाव को जन्म देता है। इस बात की पुष्टि स्ट्राउस के 1979 के एक अध्ययन से होती है।[34] उन्होंने कुछ स्त्रियों के साक्षात्कार द्वारा इस तथ्य का अध्ययन किया था।

जैनधर्म के अनुसार पारिवारिक अशांति के कारण –

जैनधर्म–दर्शन के अनेकांत के सिद्धान्त के आधार पर परिवार में अनेक सदस्य होते हैं, सबकी भावनाएं, इच्छाएं अलग–अलग होती हैं। अगर परिवार में समर्पण, सहयोग व सामंजस्य ही न हो तो परिवार तनावग्रस्त हो जाता है।

सामाजिक विषमताएं और तनाव –

जैनदर्शन के अनुसार व्यक्ति और समाज दोनों एक–दूसरे पर आधारित हैं। व्यक्ति के बिना समाज की संरचना नहीं होती और सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के अभाव में व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास नहीं होता। व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के आधार पर ही जाना जाता है। वस्तुतः जैन आगमों की भाषा में

---

[33] पारिवारिक शांति और अनेकान्त – डॉ. बच्छराज दुग्ड़, पृ. 28

[34] Straus : The Conflict tactics scales. Journal of marriage and the family, 4, 75 – 88

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाज कल्पना है –"समाज कल्पना--प्रसूत सत्य है, वास्तविक सत्य है व्यक्ति।"[35] जैनदर्शन की अनेकांत दृष्टि यह मान कर चलती है कि समाज एक सामान्य व अमूर्त तत्त्व है। समाज व्यक्ति सापेक्ष है, क्योंकि वह व्यक्तियों से ही बनता है, किन्तु जैनदर्शन यह भी मानकर चलता है कि व्यक्ति और समाज दोनों एक–दूसरे में अन्तर्निहित हैं। जैनदर्शन तत्त्वमीमांसा के अनुसार प्रत्येक वस्तु अपने आप में सामान्य और विशेष दोनों ही होती है। व्यक्ति सामाजिक होने पर भी व्यक्ति तो रहता ही है। समाज व्यक्ति निरपेक्ष नहीं होता और व्यक्ति समाज निरपेक्ष नहीं होता। यही कारण है कि सामाजिक परिस्थितियां एवं सामाजिक विषमताएं व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करती हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना एक अलग व्यक्तित्व होता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति समाज में अपने अहं की संतुष्टि चाहता है। वह परिवार और समाज में रहता है, अतः परिवार एवं समाज के दूसरे सदस्यों से उसकी कुछ अपेक्षाएं होती हैं। आचार्य महाप्रज्ञजी लिखते हैं कि –"समाज का आधार है, परस्परावलम्बन और परस्पर–सहयोग।"[36] व्यक्ति सामान्यतः एक प्रतिष्ठापूर्ण जीवन जीने का आकांक्षी होता है। यदि समाज में उसकी आकांक्षाएं और अपेक्षाएं पूरी नहीं होती है ओर उसके अहं और प्रतिष्ठा को कोई चोट पहुंचती है तो वह तनावग्रस्त हो जाता है। समाज में उत्पन्न विषमताएं, वर्ग असंतुलन व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं और उसे तनावग्रस्त बनाते हैं। जब व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा पर चोट पहुंचती है तो वह कभी–कभी आत्महत्या तक का निर्णय ले लेता है। प्रत्येक व्यक्ति समाज में सम्मान के साथ जीना चाहता है। जैनदर्शन यह मान करके चलता है कि प्रत्येक व्यक्ति में मान कषाय होती है और जब तक व्यक्ति में चेतन व अचेतन रूप से मान कषाय (Ego Problem) रही हुई है, तब तक वह तनावग्रस्त ही बना रहता है। दशवैकालिकसूत्र में कहा गया है कि जो व्यक्ति पूजा–प्रतिष्ठा की कामना में पड़ा है, यश का भूखा है, मान–सम्मान के

---

[35] समस्या को देखना सीखें – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 10 (आदर्श साहित्य संघ, चूरू) संस्करण–1999

[36] समस्या को देखना सीखें – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 11

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पीछे दौड़ता है, वह उनके लिए अनेक प्रकार के दंभ रचता हुआ, अत्यधिक पापकर्म करता है और अंत में कपटवृत्ति अपना लेता है।"[37] व्यक्ति के जीवन में कथनी और करनी में जितना दोहरापन आता है उतना ही व्यक्ति तनावग्रस्त बना रहता है, क्योंकि वह यह अपेक्षा रखता है कि कहीं भी उसका यह दोहरापन उजागर न हो। जैनदर्शन में "कहना कुछ और करना कुछ" –यही मृषावाद (असत्य भाषण) है।[38] जब व्यक्ति असत्य कथन करता है तो उसे भय होता है कि सत्य सामने आया तो उसकी मान–प्रतिष्ठा पर घात पहुंचेगा। इस प्रकार सामाजिक जीवन में व्यक्ति की प्रतिष्ठा और सम्मान की भावना ही उसे तनावग्रस्त बनाती है। दूसरे प्रत्येक व्यक्ति मूलतः स्वहित की कामना का आकांक्षी होता है। जब कभी उसकी स्वहित की भावना को ठेस पहुंचती है तो भी वह तनावग्रस्त बन जाता है। जैसे अचानक आए हुए आर्थिक संकट या दिवालियापन आदि की स्थिति में व्यक्ति तनावग्रस्त बन जाता है। क्योंकि ऐसी स्थिति में उसे अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा के धूमिल होने का भय होता है। इसके अतिरिक्त समाज में व्याप्त वर्ग–संघर्ष एवं भेदभाव व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाते हैं। जैनधर्म में धनी अथवा निर्धन का भेद, उच्च अथवा नीच का भेद, जाति एवं वर्ण का भेद मान्य नहीं है।

आचारांगसूत्र में कहा गया है कि साधना–मार्ग (तनावमुक्ति का मार्ग) का उपदेश सभी के लिए समान है, जो उपदेश एक धनवान या उच्चकुल के व्यक्ति के लिए है, वही उपदेश गरीब या निम्नकुलोत्पन्न व्यक्ति के लिए भी है।"[39] किन्तु फिर भी वर्त्तमान में मान–कषाय के कारण यह भेदभाव की भावना प्रत्येक व्यक्ति में तनाव उत्पन्न कर रही है। वर्णभेद, रंगभेद, ऊँच–नीच के भाव आदि भी व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाते हैं। सभी मनुष्यों की एक ही जाति है।"[40] जन्म के आधार

---

[37] दशवैकालिकसूत्र – 5/2/37

[38] निर्युक्ति चूर्णि साहित्य की सूक्तियां, 3988 –सूक्ति त्रिवेणी, पृ 225

[39] आचारांग – 1/2/6/102

[40] अभिधान राजेन्द्र खण्ड–4, पृ 1441

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर जाति का निश्चय नहीं किया जा सकता। जाति, धर्म के नाम पर उच्च जाति के व्यक्ति निम्नकुलोत्पन्न व्यक्ति से द्वेष एवं घृणा की भावना रखते हैं। जहां एक ओर श्रेष्ठ वर्ग अपने अहंकार के कारण और अहंकार के पोषण के लिए दोहरा जीवन जीते हैं, वहीं दूसरी ओर निम्न वर्ग वाले ईर्ष्या व अभावग्रस्त जीवन जीते हैं। इस तरह दोनों प्रकार के व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न होते हैं। जब समाज के सदस्यों में पारस्परिक सौहार्द और सद्भाव समाप्त हो जाता है तो उसके कारण भी व्यक्ति तनावग्रस्त होता है। जैनधर्म में एक स्वस्थ समाज व व्यक्ति के निर्माण के लिए निम्न सूत्र दिए गए हैं –

सूत्रकृतांग में कहा गया है कि –व्यक्ति को किसी के भी साथ वैर–विरोध नहीं करना चाहिए।[41] अभिमान करना अज्ञानी का लक्षण है।[42] व्यक्ति को अपने अहं का पोषण नहीं करना चाहिए, जो अनाश्रित एवं असहाय हैं, उनको सहयोग तथा आश्रय देने हेतु सदा तत्पर रहना चाहिए।[43] संघ (समाज) व्यवस्था में सद्व्यवहार बड़ी चीज है।[44] जिस संघ (समाज) में सहयोग न हो, गलत प्रवृत्ति का निषेध न हो और सत्कार्य के लिए प्रेरणा न दी जाए वह संघ संघ नहीं है।[45]

समाज में धनी–गरीब, ऊँच–नीच, ज्ञानी और मूर्ख के जो वर्गभेद बनते हैं, वे व्यक्तियों के मन में हीनता एवं श्रेष्ठता के भाव उत्पन्न करते हैं और इन्हीं हीनता या श्रेष्ठता के भावों के कारण समाज में तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि सामाजिक विषमता व्यक्ति के जीवन में तनावों को उत्पन्न करती है।

---

[41] न विरुज्झेज्ज केण वि। – सूत्रकृतांग – 1/11/12

[42] बालजणो पगब्भई। – सूत्रकृतांग – 1/11/12

[43] असंगिहीयपरिजणस्स संगिण्हणयाए अब्भुट्ठेयत्वं भवति। – स्थानांग – 8

[44] आवश्यक निर्युक्ति भाष्य – 123

[45] बृह. भा. – 4464 (सु. त्रि.)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाज में अनेक प्रकार की कुरीतियाँ भी प्रचलित होती हैं। उन कुरीतियों के कारण भी व्यक्ति का जीवन तनावग्रस्त बनता है। जैसे जिस समाज में यह प्रथा प्रचलित होती है कि – जब तक किसी मृत व्यक्ति का मृत्युभोज नहीं किया जाता, तब तक उसकी आत्मा को शांति नहीं मिलती है, फलतः उसके परिजन अर्थाभाव होने पर भी इस प्रथा को निभाते हैं। इस प्रकार मृत्युभोज की गलत परम्परा को जन्म तो मिलता ही है, किन्तु इसके परिणामस्वरूप जो विपण्ण परिस्थिति के लोग हैं, वे भोज सामग्री और उसके लिए अर्थ व्यवस्था न कर पाने के कारण तनावग्रस्त बने रहते हैं। मृत्युभोज में कभी–कभी इतना व्यय होता है कि सम्पन्न व्यक्ति भी विपण्ण परिस्थिति में चला जाता है और विपण्ण व्यक्ति भी समाज में अपनी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए उस हेतु व्यवस्था करने में और भी विपण्ण हो जाता है।

जिस समाज में बाल–विवाह होते हैं, वहाँ परिजन अपनी दृष्टि से विवाह निश्चित कर देते हैं, किन्तु जब बालवय में परिणयसूत्र में बंधे वे पति–पत्नि युवावस्था में आतें है, तो स्वभाव की भिन्नता के कारण व अन्य भिन्नताओं के कारण दोनों में तनाव उत्पन्न हो जाता है।

अनेक समाज में दहेज प्रथा भी प्रचलित है। यह दहेज प्रथा भी ससुराल पक्ष के लोभी होने पर अनेक परिवारों व अनेक लड़कियों को तनावग्रस्त करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज में व्याप्त कुरीतियाँ तनाव का कारण बनती है। जिस समाज में स्त्री–पुरुष को समान अधिकार नहीं मिलते हैं, वहाँ स्त्रियाँ हीनभावना के कारण व पुरुष अपने अहंकारवश तनावग्रस्त बने रहते हैं। मात्र यही नही, कभी–कभी सामाजिक प्रतिष्ठा के अनुकूल वस्त्र आभूषण के अभाव के कारण भी विशेष रूप से स्त्रियाँ तनावग्रस्त बनी रहती हैं और उनकी तनावग्रस्तता व व्यवहार पुरुषों को भी प्रभावित करता है। इन छोटे–मोटे तनावों के कारण उनके दाम्पत्य जीवन में भी बिखराव आ जाता है और जिसके कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दोनों तनावग्रस्त रहते हैं। न केवल पति–पत्नि अपितु परिवार के सदस्यों में भी सामंजस्य नहीं होता है, और इस कारण भी सम्पूर्ण परिवार तनावग्रस्त रहता है।

कभी परिवार में वृद्धजन पुत्र–पुत्रवधु आदि को अपने अनुसार जीवन जीने को विवश करते हैं, इससे भी तनावग्रस्तता का जन्म होता है। समाज में समाज के प्रत्येक सदस्य को अपनी योग्यता के अनुसार कार्य और स्थान मिलना चाहिए, किन्तु व्यक्ति की अहंकार की वृत्ति और सामाजिक प्रतिष्ठा की चाह आत्मसंतुष्टि न पाकर तनावों को जन्म देती है। इस प्रकार सामाजिक जीवन में अनेक ऐसे कारण पाए जाते हैं, जो व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाते हैं। इस संदर्भ में भारतीय–चिन्तन के अन्तर्गत गीता में यह कहा गया है कि –"व्यक्ति को कर्म करने का अधिकार है, फल प्राप्ति उसकी इच्छा के अनुसार हो यह आवंश्यक नहीं है।"[46] जैनदर्शन में भी इस बात को यह कहकर समझाया गया है कि सम्यक्दृष्टि जीव को अपने दायित्व व योग्यता के अनुरूप कार्य करते रहना चाहिए और फलासक्ति से दूर रहना चाहिए। कर्त्तव्यभावपूर्वक अपने दायित्व का निर्वाह करना एक ऐसा तत्त्व है जिससे व्यक्ति समाज के तनाव को दूर कर सकता है। जैनग्रंथ स्थानांगसूत्र में दस प्रकार के सामाजिक धर्मों का उल्लेख हुआ है, जैसे –ग्राम धर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म आदि। यह धर्म व्यक्ति का समाज के प्रति जो दायित्व है, उसे बताते हैं और इस प्रकार सामाजिक जीवन में समरसता उत्पन्न की जा सकती है और तनाव से बचा जा सकता है।

तनावों के धार्मिक कारण –

सामान्यतः धर्म समता एवं वीतरागभाव का सम्पोषक है, अतः उसे तनावमुक्ति का साधन माना जाता है, किन्तु धर्म के दो पक्ष होते हैं – एक सामान्य पक्ष और दूसरा उसका विकृत पक्ष होता है। जब धर्म सम्प्रदाय में आब्ध हो जाता है, तब कालक्रम में अनेक विसंगतियाँ उसमें प्रविष्ट हो जाती हैं और

---

[46] गीता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म को रूढ़िगत आचार–मर्यादाओं से जोड़ दिया जाता है। एक ओर वृद्धपीढ़ी इन रूढ़िगत आचार–व्यवस्थाओं को बनाए रखना चाहती है तो दूसरी और प्रगतिशील युवावर्ग उनके प्रति विद्रोह की भावना रखता है। यह सत्य है कि धार्मिक रूढ़ियाँ और कर्मकाण्ड जिस परिस्थिति विशेष में उत्पन्न होते हैं, उस समय सम्भवतः उनकी कोई सार्थकता होती है, किन्तु कालान्तर में उन रूढियों की सार्थकता भी समाप्त हो जाती है। फिर भी वृद्ध पीढ़ी उन्हें पकड़कर रखना चाहती है और युवा पीढ़ी उन्हें ध्वंस करने में जुटी होती है। इस प्रकार वृद्ध और युवा वर्ग में एक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है। यह संघर्ष दोनों के लिए तनाव का कारण बनता है। इसलिए जैनधर्म यह मानता है कि देश, काल और परिस्थितियों में उन रूढ़ियों के औचित्य का पुनः निर्धारण होना चाहिए और जो रूढ़ियाँ अपना मूल्य खो चुकी हैं, अर्थात् जिनकी अब कोई सार्थकता नहीं रही है, उन्हें छोड़ देना चाहिए। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि धर्म का मूल विनम्रता है और विनम्रता सद्गति का मूल है।[47] धर्म का सम्बन्ध विवेक से है, अतः समय–समय पर उन रूढ़ियों व परम्पराओं का मूल्यांकन होते रहना चाहिए। जैनदर्शन का सापेक्षिक निर्धारणवाद का सिद्धांत यह बताता है कि धर्म के सम्बन्ध में आग्रह और एकांत त्याग करके ही उसके सम्यक् स्वरूप का निर्धारण किया जाना चाहिए। समय के प्रवाह में अपना औचित्य खो चुकी रूढ़ियों से जकड़े रहना उचित नहीं है। इस प्रकार जैनदर्शन यह बताता है कि एक समत्व व संतुलित दृष्टिकोण लेकर ही धर्म के क्षेत्र में कार्य करना चाहिए, ताकि धर्म के नाम पर तनावों की उत्पत्ति न हो और समाज विघटित न हो। धर्म का मूलभूत आधार आसक्ति या ममत्व का परित्याग है। धर्म–श्रद्धा हमें राग (आसक्ति) से मुक्त करती है,[48] किन्तु दुर्भाग्य से वर्त्तमान युग में धर्म भी एक व्यवसाय बन गया है और उसके माध्यम से आज अपने स्वार्थों का पोषण किया जाता है। जब धर्म के नाम पर बद्धमूल रूढ़ियों और स्वार्थ का पोषण होता है, तो निश्चित ही धार्मिक

---

[47] धम्मस्स मूलं विणयं वंदति, धम्मो य मूलं खलु सोग्गईए। – बृह. भा. 4441

[48] सद्धा खमं णे विणइत्तु रागं। – उत्तराध्ययन – 14/28

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रियाएँ तनाव की उत्पत्ति का कारण बनती हैं। उदाहरण के रूप में –लोग या उपास्य की छोटी सी भागीदारी रखकर धनार्जन करना चाहते हैं। यह धनार्जन की वृत्ति या चाह स्वयं तनाव उत्पन्न करती है। यह सत्य है कि धर्म स्वतः तनाव की उत्पत्ति का कारण नहीं है, किन्तु साम्प्रदायिक दुराग्रह धर्म के नाम पर ही पनपते हैं, इससे समाज विघटित होता है और यह विघटन न केवल उन दोनों पक्षों के मन में तनाव उत्पन्न करता है अपितु सामान्य जन में भी पारस्परिक अलगाव की परिस्थिति उत्पन्न करके उन्हें भी तनावग्रस्त बना देता है।

वर्त्तमान में धर्म का मतलब किसी दिव्यसत्ता, साधना–पद्धति या सिद्धान्त से लिया जाता है, जिस पर हमारी श्रद्धा, आस्था या विश्वास होता है। धर्म के इस अर्थ में लोग धर्म के नाम पर झगड़ा, कलह करते हैं, जो मात्र व्यक्ति या समाज को ही नहीं, अपितु धर्मयुद्ध के नाम पर पूरे विश्व में ही तनाव उत्पन्न करता है। धर्म न हिन्दू होता है, न बौद्ध, न जैन, न ईसाई, न इस्लाम पर इन्हीं धार्मिक सम्प्रदायों को धर्म मानकर, उनके के अस्तित्त्व को बनाये रखने के लिए विश्व में तनाव उत्पन्न करता है। ऐसे व्यक्ति स्वयं को धार्मिक बताते हैं, किन्तु आचार्य महाप्रज्ञजी लिखते हैं कि –"क्षेत्रवाद, प्रान्तवाद, राष्ट्रवाद, भाषावाद और स्वयं की जाति के गर्व के आधार पर जो मनुष्य मनुष्य में विरोध के बीज बोते हैं, मनुष्य की वास्तविक एकता को काल्पनिक सिद्धान्तों के आधार पर छिन्न–भिन्न करते हैं, मनुष्य को मनुष्य का शत्रु बनाते हैं, वस्तुतः वे धार्मिक नहीं होते।"[49]

धर्म के नाम पर अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए उपास्य को भी एक साधन मान लिया जाता है और उससे यह प्रार्थना की जाती है कि वह व्यक्ति के मनोरथों की सम्पूर्ति करे। प्रथमतः तो इच्छाओं, आकांक्षाओं की उपस्थिति ही तनाव की स्थिति का कारण बनती हैं परन्तु इसके साथ जब उनकी पूर्ति नहीं होती है तो व्यक्ति का आक्रोश उपास्य के प्रति भी जाग जाता

---

[49] समस्या को देखना सीखें – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 106

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है और वह उपास्य को भी भला–बुरा कहने से नहीं चूकता है। यह भी तनाव की स्थिति का ही सूचक है। धर्म के नाम पर दो पीढ़ियाँ व दो वर्गों में भी तनाव के कारण बनते हैं।

आज यह देखा जाता है कि व्यक्ति धर्म के क्षेत्र में भी अपने अहं का पोषण एवं वर्चस्व की प्राप्ति चाहता है और अपनी मिथ्या प्रतिष्ठा की कामना में अपनी सामर्थ्य से अधिक धन का व्यय करके भी तनावग्रस्त बन जाता है।

धर्म के नाम पर होने वाले साम्प्रदायिक संघर्ष विरोधी धर्मों में एक दूसरे के प्रति घृणा और विद्वेष की भावना उत्पन्न करते हैं और घृणा और विद्वेष की स्थिति ही व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म जो मूलतः तनावमुक्ति का साधन था, वही तनावों की उत्पत्ति का कारण बन जाता है।

तनावों के मनोवैज्ञानिक कारण –

वस्तुतः तनाव एक मानसिक अवस्था है, जिसका प्रभाव हमारे शरीर और व्यवहार पर पड़ता है, फिर भी तनाव का मूल आधार तो मन ही है, क्योंकि तनाव का जन्म विकल्पों से होता है। विकल्प इच्छाओं, आकांक्षाओं और वासनाओं के कारण मन में उत्पन्न होते हैं। अनुकूल विकल्प अपनी पूर्ति की अपेक्षा रखते हैं और पूर्ति न होने के कारण तनाव को जन्म देते हैं। अवांछनीय विकल्प भी हमारी चेतना में यह भावना जागृत करते हैं कि उनकी पूर्ति का प्रयास किया जाए। यहाँ अवांछनीय से हमारा तात्पर्य अनुचित व अनैतिक से है। सभी विकल्प अपनी पूर्ति की अपेक्षा रखते हैं और पूर्ति न होने पर वे विकल्प विद्वेष, घृणा और आक्रोश को जन्म देते हैं, जो नियमतः तनाव के कारण बनते हैं। जब हमारी इन्द्रियों और चेतना का सम्पर्क बाह्य जगत से होता है, तो उसके परिणामस्वरूप कुछ अनुभूतियाँ सुखद व कुछ दुःखद लगती हैं। सुखद की पुनः प्राप्ति की इच्छा जागती है तो दुःखद का कैसे वियोग हो, यह चिंता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती है। इस प्रकार व्यक्ति के चैत्तसिक स्तर पर उत्पन्न होने वाली इच्छाएं और आकांक्षाएं अनुकूल होने पर पुनः–पुनः प्राप्ति की अपेक्षा रखकर चेतना को तनावग्रस्त बनाती हैं तो प्रतिकूल परिस्थिति से वियोग कैसे हो ? इस चिंता के द्वारा वे चेतना को विक्षोभित करती रहती है। उत्तराध्ययनसूत्र में भी लिखा है कि –शब्द में मूर्च्छित जीव अनुकूल शब्द, गंध, रस, स्पर्श वाले पदार्थों की प्राप्ति, रक्षण एवं प्रतिकूल के वियोग की चिंता में लगा रहता है। वह उनके संयोगकाल में भी अतृप्त ही रहता है,[50] अर्थात् तनावग्रस्त रहता है। वस्तुतः आसक्त जीव को कुछ भी सुख नहीं होता।[51] जैनाचार्यों ने मन और इन्द्रियों के अनुकूल विषयों की पुनः प्राप्ति की प्रवृत्ति को ही इच्छा कहा है,[52] और अनुकूल की चाह व प्रतिकूल के निराकरण की इच्छा दोनों ही तनावों को जन्म देती है।

अनुकूल की पुनः–पुनः प्राप्ति कैसे हो और प्रतिकूल का वियोग कैसे हो, मूलतः चैत्तसिक तनाव का ही एक रूप है। गीता में भी कहा गया है, कि --मन से इन्द्रियों की पूर्ति में बाधक बने तत्त्वों के प्रति क्रोध उत्पन्न होता है और क्रोध की स्थिति में विवेक समाप्त हो जाता है। विवेक शक्ति के समाप्त हो जाने पर व्यक्ति विनाश को प्राप्त होता है।[53] अतः तनाव की उत्पत्ति राग के वशीभूत होती है जो अपनी पूर्ति की प्रक्रिया में बाधक तत्त्वों के प्रति आक्रोश या द्वेष की वृत्ति को जन्म देती है। जैनदर्शन में राग व द्वेष को कर्मबीज कहा गया है,[54] और कर्म को बंधन का रूप माना गया है। चित्त में राग–द्वेष की वृत्तियों का जन्म होने पर चित्त विश्रंखलित हो जाता है और उसके परिणामस्वरूप व्यक्ति तनावग्रस्त बना रहता है, अतः तनावों से मुक्ति के लिए मन को विकल्पों से ऊपर उठाना होगा, क्योंकि मन में ऐसे उत्पन्न विकल्प वाणी और शरीर के

---

[50] उत्तराध्ययनसूत्र – 32/41

[51] उत्तराध्ययनसूत्र – 32/71

[52] अभिधानराजेन्द्रकोश, खण्ड–2, पृ. 575

[53] गीता – 2/62–63

[54] रागो य दोसो वि य कम्म बींज – उत्तराध्ययनसूत्र –32/7

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माध्यम से ही अपनी अभिव्यक्ति पाते हैं। इसलिए जैनदर्शन में यह माना गया है कि मानसिक, वाचिक व कायिक प्रवृत्तियाँ ही आश्रव का हेतु हैं और इस आश्रव से ही कर्मबंध होता है। जैसे–जैसे मन, वचन, काय के योग (संघर्ष) अल्पतर होते जाते हैं, वैसे–वैसे बंध भी अल्पतर होता जाता है। योगचक्र का पूर्णतः निरोध होने पर आत्मा में बंध (तनाव) का सर्वथा अभाव हो जाता है।[55]

जैनदर्शन यह मानता है कि मन और शरीर यह दो अलग–अलग अवस्थाएं हैं, फिर भी जैन कर्म–सिद्धांत में प्राचीनकाल से ही यह माना गया है कि जड़कर्म का प्रभाव हमारी चेतना पर और चेतना का प्रभाव जड़कर्मों पर होता है।

मन और शरीर वस्तुतः दो स्वतंत्र तत्त्व होने पर भी वे एक–दूसरे को प्रभावित करते ही हैं। गेस्ट्राल नामक मनोवैज्ञानिक ने यह माना था कि –शारीरिक परिवर्तन व्यक्ति की चेतना को प्रभावित करते हैं और चेतना के द्वारा शारीरिक परिवर्तन होते हैं। जैसे मादक द्रव्यों के सेवन से चेतना प्रभावित होती है तो दूसरी ओर मानसिक विचारों का प्रभाव हमारे शरीर पर पड़ता है। चिंताग्रस्त व्यक्ति दुबर्ल होता जाता है। इस प्रकार जैनदर्शन मन, वाणी और शरीर तीनों पारस्परिक प्रभावशीलता को स्वीकार करके चलता है और इसलिए वह यह मानता है कि आत्मशुद्धि के लिए मनशुद्धि और वचनशुद्धि आवश्यक है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तनाव एक मानसिक स्थिति होकर भी अपनी अभिव्यक्ति तो वाणी और शरीर से ही प्राप्त करता है, अतः मन को संयमित करने के लिए शारीरिक गतिविधियों व वाणी को भी संयमित करना आवश्यक है। मन संयमित होगा तो व्यक्ति तनावमुक्त होगा।

---

[55] जहा जहा अप्पतरो से जोगो, तहा तहा अप्पतरो से बंधो
निरूद्धजोगिस्स व से ण होति, अछिद्दपोतस्स व अंबुणाधे – बृह. भा. 3926

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतीत और भविष्य की कल्पनाएँ और तनाव –

मनुष्य ज्यादा तनाव में होता है, जो भार उसे उठाना नहीं चाहिए वह उससे ज्यादा भार ढोता है। अतीत की स्मृति और भविष्य की कल्पना का भार।[56] अतीत में कुछ ऐसी घटनाएँ घटी होती है कि हम वर्तमान में उसे बार–बार याद करके हमारे काम करने की शक्ति को कम कर देते हैं, जिससे हमारा कार्य नहीं हो पाता व एक और नया भार या तनाव पैदा हो जाता है। पूर्व स्मृति का भार तो कम हुआ नहीं था, कि एक और स्मृति बन गई। अतीत में क्या हुआ, कैसे हो गया था, कोई हमसे दूर हो गया, इन सबका हम इतना बोझ उठाते हैं कि पूरी तरह तनाव से ग्रस्त हो जाते हैं।

इसी प्रकार जटिल होता है कल्पना का भार। कल्पना में हम इतने डूब जाते हैं, हमारी इतनी आकांक्षाएँ होती हैं, कि हम उसी कल्पना में उलझ कर रह जाते हैं और भारी हो जाते हैं। हमें भविष्य की इतनी चिंता रहती है कि हम वर्तमान को तनावयुक्त कर देते हैं। भूत और भविष्य के बोझ को उठाते–उठाते हम वर्तमान को भी तनाव में डुबो देते हैं। वर्तमान में कर रहे कार्य को हम ठीक से नहीं कर पाते, क्योंकि हमारी आंतरिक शक्ति कम हो जाती है। कल्पना किए गए कार्य को करने में उतना भार नहीं होता, जितना कि हमारे मस्तिष्क में उस कल्पना का भार होता है। आचार्य महाप्रज्ञजी ने अपनी कृति **'चेतना का ऊर्ध्वारोहण'** में लिखा है जितना भार कल्पना और स्मृति का होता है, वास्तविकता का नहीं होता।[57]

लोग कहते हैं ये जंगल बड़ा भयानक है। शेर, चीता दिन में भी दहाड़ते हैं कई जंगली जानवर हैं, इंसान की महक मिलते ही उसे देखते ही खा जाते हैं। यह कल्पना में काफी भयावह है। किन्तु जब वन में से गुजरते हैं उस समय इतना भय नहीं होता, जितना कि हमारी कल्पना में होता है, हमारी स्मृति में

---

[56] चेतना का ऊर्ध्वारोहण – आचार्य महाप्रज्ञ जी, पृ. 9
[57] वही – पृ. 9

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है। स्मृति और कल्पना ये हमारे अन्तर्जगत की घटनाएँ हैं और परिस्थिति का सामना बाहरी जगत की घटनाएँ हैं। बाहरी जगत की घटनाएँ हमारे मानस पर उतना प्रभाव नहीं डालती, जिना प्रभाव हमारी कल्पना, हमारी स्मृति का हमारे मन पर और हमारी कार्य क्षमता पर पड़ता है। ना भूतकाल हमारा है ना भविष्यकाल। अगर कुछ है तो वह है वर्तमान। वर्तमान में जीने वाला व्यक्ति कभी भी तनाव का या भार का अनुभव नहीं करेगा। अगर हम अतीत और भविष्य से कटकर, अलग होकर, उसके बारे में स्मृति या कल्पना से दूर रहकर वर्तमान में जीना सीख ले तो तनावमुक्त की स्थिति प्राप्त कर सकते हैं। आचार्य शंकर ने जीवन–मुक्त की परिभाषा लिखी है, उसमें यही बताया है –

अतीताननुसन्धानं भविष्यदविचारणम्।
औदासिन्यमपि प्राप्ते, जीवन मुक्तस्य लक्षणम्।।

अर्थात् यह जीवन मुक्ति क्या है ? जहाँ अतीत का अनुसन्धान नहीं है और भविष्य की विचारणा नहीं है। भविष्य की कल्पनाएँ और योजनाएँ नहीं है, वह है जीवन–मुक्ति।

इसी प्रकार हम यह भी कह सकते हैं तनाव–मुक्ति ही जीवन मुक्ति है। अगर हम भविष्य की कल्पना नहीं करें, अतीत की स्मृति के अनुसन्धान को छोड़ दें, तो हमें मुक्ति का अनुभव होगा और यही है तनाव–मुक्ति। हल्केपन का अनुभव होगा और हल्केपन का अनुभव मतलब शांति का, आनंद का, अनुभव, तनावमुक्ति का अनुभव।

व्यक्ति या तो अपने अतीत में जीता है या भविष्य में। अतीत हमारी स्मृति बन जाता है। अगर स्मृति अच्छी है, अतीत अच्छा है तो हम यही सोच–सोचकर परेशान होते हैं, कि काश वो पल वो समय फिर आ जाए, लेकिन गुजरा कल वापस नहीं आता, फिर चाहे वो अच्छा हो या बुरा। हम यही सोचते हैं कि वो वक्त फिर से आए जिसमें हमने सुख का अनुभव किया था और जब वो सुख नहीं मिलता तो व्यक्ति विचलित हो जाता है। उस सुख को पाने की आशा में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और ना मिलने पर दुःखी हो जाता है। फिर वो अच्छी स्मृति भी चुभती है, बार–बार रूलाती है। उस स्मृति में तनाव हो जाता है। कल का सोच–सोचकर हम आज में रोते हैं और आज में रोते–रोते आने वाले कल को भी रूलाते हैं। आचारांगसूत्र में अतीत के गहरे से बाहर निकालने के लिए कहा है –'अणभिक्कंतं च वयं संपेहाए; खणं जाणाहि पंडिए।'[58] अर्थात् हे आत्मविद् साधक! जो बीत गया सो बीत गया। शेष रहे जीवन को ही लक्ष्य में रखते हुए प्राप्त अवसर को परख। समय का मूल्य समझ। हमारा अतीत अच्छा हुआ तो आज भी उसे लेकर हम तनाव में बदल देते हैं और अगर बुरा हुआ या कोई दुःखदायी घटना घटी तो भी हम उसको सोच–सोचकर उस घटना को बार–बार याद करते हैं और तनाव के गहरे में उतर जाते हैं। कहा भी गया है – 'जहा कडं कम्म, तहासि भारे।'[59] अर्थात् जैसा किया हुआ कर्म, वैसा ही उसका भोग। आज आर्त्तध्यान करेंगे तो कल भी तनावग्रस्त ही रहेंगे। हम ये विचार नहीं करते कि जो हो गया उसे भूल जाएं, बल्कि यही विचार करते रहते हैं, दूसरों को सुनाते रहते हैं कि देखों हमारे साथ कितनी दर्दनाक घटनाएँ घटी हैं। कभी–कभी तो हमें बहुत अच्छा लगता है कि हमारे जीवन में कुछ अलग हुआ है। हमें मजा आता है उस तकलीफ को बार–बार छेड़ने में। हमें लगता है कि हम ऐसे ही दुःखी रहेंगे तो लोगों की सहानुभूति मिलेगी। बड़ा आनन्द मिलता है उसी दुःखी घटना को याद करने में, पर तब हमें ये अनुभव नहीं होता कि हम क्या कर रहें हैं, उसी तनाव के गढ्ढे में पड़े–पड़े अपना अनमोल जीवन बर्बाद कर रहे हैं। आज जो कार्य करना है उसे छोड़कर पुराने दुखड़े रो रहे हैं। इसी मूर्च्छा में पड़े रहते हैं और जब होश आता है तब तक बहुत देर हो जाती है। जिस समय जो कार्य करना था, वह नहीं किया तो उसका भी भार एक साथ हम पर पड़ता है। हमारा अतीत इतना भयानक नहीं हुआ होगा जितना भयानक उसे सोच–सोचकर हम हमारा आज बना देते हैं और कहते हैं –वर्तमान सुधार

---

[58] आचारांगसूत्र – 1/2/1
[59] सूत्रकृतांग – 1/5/1/26

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लो लो भविष्य अपने आप सुधर जाता है। वर्तमान अतीत की परछाई को लेकर चले तो वर्तमान बिगड़ जाता है और वर्तमान बिगड़ा तो भविष्य भी बिगड़ जाता है। हमारा जीवन आया भी और चला भी गया, ना जीने का सुख मिला ना ही सुखशांति से मर सका।

अतीत की तरह ही भविष्य की चिंता भी हमारी चिता बना देती है। आज में नहीं जीकर हम आने वाले कल में जीते हैं। जो हमें पता ही नहीं है कैसा होगा ? जो पता ही नहीं है कैसा होगा उसके लिए क्या चिंता करना। अपना आज अच्छा होगा, अपना आज सुधार लोगे तो आनेवाला कल अपने आप अच्छा होगा। पर नहीं, हम भविष्य का सोचते हैं, कल्पना करते हैं। तनावमुक्त जीवन जीने की पहली शर्त यही है कि अतीत की घटनाओं से सिर्फ शिक्षा लो और भविष्य की कल्पनाओं को छोड़कर वर्तमान क्षण में जियो।

जिस काल (समय) में जो कार्य करने का हो, उस काल में वही कार्य करना चाहिए।[60] भविष्य की कल्पना नहीं और अतीत का बोझ नहीं होगा, तो वर्तमान तनावमुक्त होगा।

————000————

[60] काले कालं समायरे। – दशवैकालिकसूत्र –5/2/4

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मदर्शन में तनाव प्रबंधन

अध्याय - 3 चैत्तसिक मनोभूमि और तनाव

आत्मा, चित्त और मन

- जैन आगमों एवं दार्शनिक ग्रन्थों के आधार पर इनका स्वरूप

1. आत्मा की अवधारणा और तनाव
2. चित्तवृत्तियाँ और तनाव का सह-सम्बन्ध
3. मन और तनाव का सह-सम्बन्ध
4. आधुनिक मनोविज्ञान में मन के तीन स्तर -
    - अचेतन
    - अवचेतन
    - चेतन
5. जैन, बौद्ध एवं योगदर्शन में मन की अवस्थाएँ और उनका तनावों से सह-सम्बन्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय--3

चैत्तसिक मनोभूमि और तनाव

1. आत्मा, चित्त और मन एवं उनका सह सम्बन्ध –

मानव अस्तित्व देह और चेतना की एक निर्मिति है। मानवीय चेतना की अभिव्यक्ति तीन माध्यमों में देखी जाती है -- आत्मा, चित्त और मन। यद्यपि इन तीनों में इतना तादात्मय है कि इनमें किसी प्रकार की भेद रेखा नहीं खींची जा सकती है, फिर भी चेतना की अभिव्यक्ति एवं गतिविधियों के रूप में हम तीनों को एक–दूसरे से अलग समझ सकते हैं। सामान्यतः अपने सत्तात्मक स्तर पर ये तीनों एक ही हैं, किन्तु बाह्य लक्षणों और कार्यों के आधार पर इन तीनों में भेद किया जा सकता है।

जैनदर्शन के अनुसार आत्मा वह आधारभूमि है, जिसमें चेतना अभिव्यक्त होती है। आत्मा एक सत्ता है, जिसका लक्षण उपयोग अर्थात् चेतन गतिविधियाँ कहा गया है।[1] जैनदर्शन में चेतना के स्थान पर 'उपयोग' शब्द का प्रयोग अधिक हुआ है।[2] तत्त्वार्थसूत्र में उपयोग (चेतना) दो प्रकार के बताये गए हैं -- दर्शनात्मक एवं ज्ञानात्मक।[3] इन्हें हम क्रमशः अनुभूत्यिात्मक एवं विचारात्मक भी कह सकते हैं।

ज्ञान निर्णयात्मक रूप है और दर्शन अनुभूति रूप है, इसलिए जैन आचार्यों ने दर्शन को सामान्य और ज्ञान को विशेष कहा है। यह सत्य है कि अनुभूति के बिना ज्ञान नहीं होता है, अतः ज्ञान अनुभूति की आधारभूमि पर खड़ा हुआ है, फिर भी निर्णयात्मक या विकल्पात्मक होने से विशेष है। दर्शन सत्ता के अस्तित्त्व का बोध कराता है, जबकि ज्ञान उसकी विशेषताओं के सम्बन्ध में कोई

---

[1] अ) तत्त्वार्थसूत्र, 2/8

ब) उत्तराध्ययनसूत्र, 28/11

[2] जैन बौद्ध और गीता के आचारदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–1, पृ. 215

[3] तत्त्वार्थसूत्र –2/9

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निश्चय करता है। जैन दार्शनिकों के अनुसार 'इदं रज्जु' में इदमता का जो बोध होता है, वह दर्शन है और रज्जुत्व का जो बोध होता है, वह ज्ञान है। इसमें इदम्ता अंग्रेजी भाषा में 'Thisness' की सूचक है, और रज्जु शब्द उसके विशिष्ट गुणों या आकार–प्रकार का सूचक है। इस प्रकार के ज्ञान और दर्शन की क्षमता से जो युक्त है, वह आत्मा है। आत्मा एक अमूर्त्त द्रव्य है और चित्त उसकी वृत्ति है।

चित्त आत्मा के चैतसिक गुणों की आधारभूमि है। दूसरे शब्दों में कहें तो चित्त आत्मा की पर्याय (अवस्था–विशेष) है। आत्मा द्रव्य है और चित्त पर्याय है, जो ज्ञान रूप या अनुभूति रूप होती है। आत्मा की बाह्य जगत् में जो अभिव्यक्ति है या जिसके माध्यम से आत्मा अपने को अभिव्यक्त करती है, वह चित्त है। चित्त चेतना की एक अवस्था है। आचार्य महाप्रज्ञजी ने चित्त–निर्माण की अवस्था को चित्त–पर्याय की अवस्था कहा है।[4] उनके तथा कुछ अन्य मनोवैज्ञानिकों के अनुसार चित्त के तीन कार्य होते हैं –1. अनुभव करना, 2. जानना और 3. संकल्प करना। इनमें जो तीसरा संकल्पात्मक पक्ष है, वही वस्तुतः मन है। मन को विकल्पात्मक कहा है, अतः चित्त के विकल्प ही मन का आकार ग्रहण करते हैं। वस्तुतः स्मृति, कल्पना, मनन, ईहा, चिन्ता और विमर्श – ये सब मन के कार्य हैं। ये सारे मानसिक कार्य चित्त के सहयोग से ही सम्पन्न होते हैं।[5] जो मनन करता है, अर्थात् विकल्प करता है, वह मन है और यह मनन जिसकी सहायता से करता है, वह चित्त है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार चित्त का अर्थ है – स्थूल शरीर के साथ काम करने वाली चेतना और मन का अर्थ है – उस चित्त के द्वारा काम कराने के लिए प्रयुक्त तंत्र। मन पौद्गलिक है और चित्त आत्मिक है।[6]

---

[4] चेतना का उर्ध्वारोहण – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 51

[5] चित्त और मन, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 237

[6] वही, पृ. 239

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इस प्रकार जैनदर्शन के अनुसार आत्मा चित्त और मन अपने कार्यों या बाह्य अभिव्यक्ति की अपेक्षा से भिन्न–भिन्न हैं, किन्तु अपनी सत्ता की अपेक्षा से अभिन्न हैं।

जहाँ तक इन तीनों का तनाव से सम्बन्ध का प्रश्न है, मन तनाव की जन्मभूमि है, क्योंकि वह संकल्प–विकल्प रूप है। संकल्प–विकल्प मन में उत्पन्न होते हैं, अतः मन को तनाव की जन्मभूमि कहा जा सकता है। चित्त उसकी संवेदना और अभिव्यक्ति रूप है। द्रव्य मन मन है और भावमन चित्त है। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार तनाव एक मनोदैहिक अवस्था है। जैनदर्शन के अनुसार यह द्रव्यमन का भावमन पर होने वाला एक प्रभाव है। मन तनाव को जन्म देता है, चित्त उसका अनुभव करता है और अनुभव के आधार पर वह उद्वेलित भी होता है। जबकि आत्म स्वरूपतः उनका ज्ञाता या द्रष्टा होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो आत्मा तनावों को देखता है, चित्त उन्हें देखकर उद्वेलित होता है और मन नए–नए विकल्पों को जन्म देकर हमारी चेतना को तनावों से युक्त बनाता है। यह तनाव से युक्त चेतना ही चित्त है। इस प्रकार आत्मा, चित्त और मन भिन्न–भिन्न होकर भी अभिन्न हैं, क्योंकि जैनदर्शन की अनेकांत की दृष्टि कथंचित् भेद और कथंचित अभेद मानती है।

जैनधर्म में आत्मा की विविध अवधारणाएँ और तनाव

जैनदर्शन में आत्मा की अवस्थाएँ और उनका तनाव से सह–सम्बन्ध –

भगवतीसूत्र में आत्मा के आठ प्रकारों का वर्णन है।[7] इसमें ज्ञानआत्मा, दर्शनआत्मा, चारित्रआत्मा, वीर्यआत्मा, उपयोगआत्मा और द्रव्यआत्मा का जो स्वरूप दिया है, उसे हम तनावमुक्ति की अवस्था कह सकते हैं, क्योंकि इन अवस्थाओं में आत्मा विभाव से युक्त नहीं होती है, अतः यह अवस्था निर्विकल्पतां

---

[7] भगवतीसूत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की होने के कारण तनावमुक्ति की अवस्था है। इसके विपरीत कषाय आत्मा तनाव की अवस्था है। जब मन, वचन और काया की प्रवृत्ति बाह्य तत्त्वों से जुड़ती है तो योगात्मा की अवस्था भी तनाव की ही अवस्था है, किन्तु जब योग (मन, वचन व काय) की प्रवृत्ति अन्तरात्मा से जुड़ती है, तो वह तनावमुक्ति की अवस्था होती है। यद्यपि यदि आत्मा विभाव दशा को प्राप्त होती है तो मिथ्या–ज्ञान, मिथ्या–दर्शन, मिथ्या–चारित्र से युक्त होने पर उसे तनावग्रस्त मान सकते हैं। आत्म पुरुषार्थ या क्रियात्मक शक्ति का मिथ्यात्व की दिशा में क्रियाशील होने पर उसे हम तनावयुक्त मान सकते हैं। तनाव आत्मा की पर्याय दशा है, इसलिए द्रव्य आत्मा अपने तात्त्विक स्वरूप में पर्याय से अप्रभावित होने की दशा में तनावमुक्त माना जा सकता है, किन्तु जहाँ तक उपयोग आत्मा का प्रश्न है, यदि वह अपने उपयोग का प्रयोग ज्ञाता–द्रष्टाभाव को छोड़कर कर्त्ता–भोक्ताभाव में करता है, तो वह विभाव दशा को प्राप्त हो जाता है और ऐसी स्थिति में उसकी दशा तनावयुक्त दशा होगी, क्योंकि "अज्ञानी आत्मा ही कर्मों का कर्त्ता होता है।"[8] "आत्मा जब विभाव दशा में होती है तो कर्मों का संचय करता है, वे कर्म ही विपाक दशा में बहुत दुःखदायी (तनाव उत्पन्न करने वाले) होते हैं।"[9] आत्मा का ज्ञाता–द्रष्टाभाव में नहीं होना, यही तनाव का हेतु है, किन्तु यदि वह ज्ञाता–द्रष्टाभाव में रहता है तो वह तनावमुक्त है। इसी प्रकार योग–आत्मा मन, वचन और काय की प्रवृत्ति का कारण है। यह प्रवृत्ति सद् और असद् दोनों रूप हो सकती है। यदि असद् प्रवृत्ति है तो वह निश्चय ही तनावग्रस्त होगा। सद् प्रवृत्ति में इच्छा और आकांक्षा रह सकती है, वहाँ चाहे तीव्र तनाव न हो, किन्तु वह तनावमुक्त अवस्था भी नहीं मानी जा सकती। जब तक मन, वचन, काया की प्रवृत्ति है, तब तक शुभाशुभ भाव होते हैं और जब तक शुभाशुभ भाव हैं, तब तक इच्छाएँ और आकांक्षाएँ भी हो सकती है और उस स्थिति में व्यक्ति तनाव से युक्त भी हो सकता है। इससे भिन्न जब योग में भी

---

[8] समयसार – 12, अण्णाणमओ जीवो कम्माणं कारगो होदि।

[9] उत्तराध्ययनसूत्र, 32/46

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मात्र ज्ञाता–द्रष्टाभाव की स्थिति होती है, तब इच्छा के अभाव के कारण तनावमुक्त रह सकता है। तनावयुक्त अवस्था ही कषाय आत्मा की अवस्था है। क्योंकि तनाव का प्रमुख हेतु ही कषाय है।

इस प्रकार आत्मा के आठ प्रकारों में द्रव्य आत्मा विशुद्ध रूप होने से तनाव रहित होती है। यद्यपि यह बात केवल निर्वाण प्राप्त आत्मा के सम्बन्ध में ही समझना चाहिए।

जो द्रव्य आत्माएँ योग और कषाय से युक्त हैं, वे तो तनाव की स्थिति में होते ही हैं, क्योंकि उपयोग को ही आत्मा का लक्षण माना गया है, किन्तु यह उपयोग अपने शुद्ध स्वभाव में है तो निर्विकल्पता होने के कारण तनावमुक्ति की अवस्था होती है। इस प्रकार मात्र शुद्ध द्रव्य आत्मा निश्चित ही विकारमुक्त होने से तनावमुक्त मानी गई है। शेष छः प्रकार की आत्माएँ तनावयुक्त भी हो सकती हैं और तनावमुक्त भी हो सकती हैं, किन्तु जहाँ तक कषाय आत्मा का प्रश्न है, वह नियमतः तनावयुक्त ही होती है।

कहा भी गया है –"क्रोध से आत्मा नीचे गिरता है। मान से अधम गति प्राप्त करता है। माया से सद्गति का मार्ग अवरूद्ध हो जाता है। लोभ से इस लोक और परलोक दोनों में ही भय (कष्ट, दुःख) होता है।"[10] "क्रोधादि कषायों को क्षय किए बिना केवलज्ञान (तनावमुक्ति) की प्राप्ति नहीं होती।"[11]

इस प्रकार आठ प्रकार की आत्माओं में शुद्ध द्रव्य आत्मा तनावमुक्त व कषाय आत्मा को तनावयुक्त कहा जाता है। शेष छः आत्माएँ तनावयुक्त भी हो सकती हैं और तनावमुक्त भी हो सकती हैं।

आत्मा का एक वर्गीकरण गुणस्थानों के आधार पर भी किया गया है। गुणस्थान निम्न चौदह माने गए हैं –

---

[10] उत्तराध्ययनसूत्र – 1/54

[11] आवश्यकनिर्युक्ति – 92

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. मिथ्यात्व गुणस्थान
2. सास्वादन गुणस्थान
3. मिश्र गुणस्थान
4. अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान
5. देशविरति श्रावक गुणस्थान
6. प्रमादी साधु गुणस्थान
7. अप्रमादी साधु गुणस्थान
8. निवृत्ति बादर (कषाय) गुणस्थान
9. अनिवृत्ति बादर (नोकषाय)गुणस्थान
10. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान
11. उपशांत मोह गुणस्थान
12. क्षीणमोह गुणस्थान
13. सयोगी केवली गुणस्थान
14. अयोगी केवली गुणस्थान

1. मिथ्यात्व गुणस्थान –

इस अवस्था में मनुष्य पूर्णतः तनाववयुक्त रहता है, क्योंकि यह आत्मा की बहिर्मुखी अवस्था है। इस अवस्था में मानसिक दृष्टि से व्यक्ति तीव्रतम अनन्तानुबन्धी कषाय से वशीभूत रहता है[12], जिसके परिणामस्वरूप वह तनाव की तीव्रतम स्थिति में रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति पर वासनात्मक प्रवृत्तियाँ पूर्ण रूप से हावी होती हैं[13] और वासनात्मक व्यक्ति तनाववयुक्त होता है।

2. सास्वादन गुणस्थान –

जैनधर्म के अनुसार –"यह गुणस्थान आत्मा की पतनोन्मुख अवस्था का द्योतक है।"[14] इस अवस्था में व्यक्ति में अनन्तानुबन्धी कषायवृत्ति का उदय तो होता है, किन्तु वह कुछ क्षण के बाद स्वयं को तनावों से युक्त कर लेता है।

3. मिश्र गुणस्थान –

इस गुणस्थान में व्यक्ति संशयावस्था में रहता है। "इस अवस्था में वह सत्य और असत्य के मध्य झूलता रहता है, अर्थात् वासनात्मक जीवन और

---

[12] जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 455

[13] जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 455

[14] जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 457

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्त्तव्यशीलता के मध्य क्या श्रेष्ठ है, इसका निर्णय नहीं कर पाता है।"[15] दो परस्पर विरोधी तत्त्वों के मध्य निर्णय नहीं कर पाने या संशयावस्थ की यह स्थिति नियमतः तनाव की ही स्थिति है, क्योंकि व्यक्ति इसी चिंता में रहता है कि –"मैं क्या करूं, क्या नहीं" और परिणामस्वरूप वह कुछ निर्णय नहीं कर पाता।

4. अविरत सम्यक् दृष्टि गुणस्थान –

यह गुणस्थान आध्यात्मिक विकास की वह अवस्था है, जिसमें साधक को यथार्थता का बोध या सत्य का दर्शन तो हो जाता है, किन्तु फिर भी वासनाओं, रागादि कषायों से युक्त होता है, और जहाँ कषायादि है, वहाँ तनाव तो नियमतः होता ही है। इस अवस्था में संशय की स्थिति तो समाप्त हो जाती है, अर्थात् क्या अच्छा या उचित है, यह तो वह जानता तो है, पर फिर भी तनावों के हेतुओं से बच नहीं पाता।

5. देशविरत सम्यक्–दृष्टि गुणस्थान –

इस गुणस्थान में व्यक्ति की वासनाओं और कषायों में स्थायित्व नहीं होता।[16] वासनाओं और कषायों के आवेगों का प्रकटन तो होता है, किन्तु वह उन पर नियंत्रण करने की क्षमता रखता है अर्थात् तनावों के हेतुओं से बचने का प्रयास करता है।

6. प्रमत्त संयत गुणस्थान –

इस गुणस्थान में व्यक्ति तनाव के हेतुओं से पूरी तरह निवृत्त होकर तनावमुक्ति के लिए दृढ़तापूर्वक प्रयास करता है। इस अवस्था में व्यक्ति में तनाव का स्तर प्रथम तीन गुणस्थानों की अपेक्षा बहुत कम होता है। उदाहरण के रूप में, क्रोध के अवसर पर ऐसा साधक बाह्यरूप से तो शान्त बना रहता है,

---

[15] जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 457

[16] जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 461

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथा अन्तर में उस पर नियंत्रण करता है, फिर भी क्रोधादि कषाय वृत्तियाँ उसके अन्तर–मानस में तनाव तो उत्पन्न करती हैं।

7. अप्रमत्त–संयत गुणस्थान –

यह पूर्ण सजगता की स्थिति है। इसे हम तनावमुक्ति की अवस्था कह सकते हैं। इस गुणस्थान में कषाय की अवयक्त सत्ता तो होती है, कषाय वृत्तियाँ व्यक्ति को विचलित करने का प्रयास भी करती रहती हैं, किन्तु उसके अन्तर्मन (आत्मा) की सजगता उसे तनावमुक्त बनाए रखती है।

8. निवृत्ति बादर (कषाय) गुणस्थान –

इस अवस्था में साधक अधिकांश रूप में वासनाओं से मुक्त रहता है और मात्र बीजरूप संज्वलन माया और लोभ ही शेष रहते हैं।[17] इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि इस गुणस्थान में व्यक्ति तनावमुक्त रहता है।

9. अनिवृत्ति बादर (नोकषाय) गुणस्थान –

यह भी तनावमुक्त अवस्था ही है, किन्तु इस गुणस्थान में रही हुई आत्मा पुनः तनावपूर्ण स्थिति में भी आ सकती है, क्योंकि इस अवस्था में तनाव उत्पत्ति के नोकषाय रूपी कुछ कारण अभी शेष होते हैं, यद्यपि व्यक्ति के तनावमुक्त हो जाने से यह सम्भावना अत्यन्त कम ही होती है।

10. सूक्ष्म संपराय गुणस्थान –

अनिवृत्ति बादर गुणस्थान में नोकषाय होने से पुनः तनाव उत्पत्ति की संभावना तो होती है, किन्तु सूक्ष्म संपराय गुणस्थान में कषायों के कारणभूत हास्य, रति, अरति, भय, शोक और घृणा इन पूर्वोक्त छः भावों एवं स्त्री–पुरुष और नपुंसक सम्बन्धी कामवासना को भी नष्ट कर देता है।

---

[17] जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 465

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

11. उपशांत मोहनीय गुणस्थान --

साधक वासनाओं को दबाकर या उपशमित कर इस गुणस्थान में आते हैं, अतः कुछ समय के लिए तनावमुक्त रहते हैं, किन्तु दमित वासनाओं के पुनः प्रकट होने की संभावना के कारण वे पुनः पतित हो जाते हैं।

12. क्षीण मोह गुणस्थान --

इस अवस्था में तनाव का कारण कोई भी कारण अर्थात् वासना शेष नहीं रहती। उसकी समस्त वासनाएँ, समस्त आकांक्षाएँ क्षीण हो चुकी होती हैं। ऐसा साधक राग–द्वेष से भी पूर्णतः मुक्त हो जाता है, अतः ऐसा व्यक्ति तनावमुक्त हो जाता है और पुनः तनाव की स्थिति में नहीं जाता है।

13. सयोगीकेवली गुणस्थान –

यह अवस्था भी पूर्णतः तनावमुक्त अवस्था ही कही जाती है। इस अवस्था में साधक के चार अघाती कर्म शेष रहते हैं, परिणामस्वरूप उसका देह के साथ सम्बन्ध जुड़े होने के कारण उसकी वाचिक और मानसिक क्रियाएँ चलती रहती हैं, और उनके कारण कर्म का इर्यापथिक बंध तो होता है, किन्तु वह उसे प्रभावित नहीं करता है।

14. अयोगी केवली गुणस्थान –

सयोगी केवली गुणस्थान में आत्मा देहातीत होकर आध्यात्मिक पूर्णता को प्राप्त कर लेती है,[18] अर्थात् यह अवस्था पूर्णतः तनावमुक्त अवस्था है।

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि इन चौदह गुणस्थानों में पहले तीन गुणस्थानों में व्यक्ति नियमतः कषाय के उदय के कारण तनावग्रस्त ही रहता है, जबकि चौथे गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक किसी न किसी रूप में कषाय की सत्ता बनी रहती है और इसलिए इन अवस्थाओं में तनाव तो रहता है, किन्तु आत्मा आगे बढ़ते हुए तनावों से मुक्त होने के लिए सतत् प्रयत्नशील

---

[18] जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 470

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती है। अंतिम चार अवस्थाएँ अर्थात् उपशांत मोह, क्षीणमोह, सयोगीकेवली और अयोगीकेवली नियमतः तनावमुक्ति की अवस्था है, क्योंकि इन अवस्थाओं में राग–द्वेष तथा क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। अतः यह अवस्था तनावमुक्ति की अवस्था है। यह सत्य है कि ग्यारहवें गुणस्थान में व्यक्ति मोह के शांत होने पर कुछ समय के लिए तनावमुक्त हो जाता है, किन्तु उसकी यह स्थिति स्थाई नहीं होती। मोह का उदय होने पर वह पुनः तनावग्रस्त बन जाता है, किन्तु शेष तीन अवस्थाओं में तनावमुक्त होने पर पुनः तनावग्रस्त नहीं होता है।

चित्तवृत्तियाँ और तनाव –

जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण द्वारा प्रणीत 'झाणाज्झययन' नामक ग्रन्थ में चित्त को परिभाषित करते हुए कहा गया है –"जं चलं तं चित्तं" अर्थात् जो चंचल है, वह चित्त है। दूसरे शब्दों में – आत्मा की पर्याय–दशा को ही चित्त कहा गया है। चित्तवृत्तियों की यह चंचलता वस्तुतः तनाव का मुख्य कारण है। चित्त–वृत्तियों की इस चंचलता का जन्म चैत्तसिक पर्यायों के रूप में होता है। मन में उत्पन्न होने वाले राग–द्वेष और कषाय के भाव चैत्तसिक वृत्तियों को चंचल बना देते हैं। इस चंचलता में भोगाकांक्षाएँ जन्म लेती हैं। वस्तुतः ये भोगाकांक्षाएँ ही तनाव रूप होती हैं। इस प्रकार चित्त की चंचलता में विभिन्न इच्छाओं और आकांक्षाओं का जन्म होता है, जो अपनी पूर्ति की अपेक्षा रखती है। अपूर्ण इच्छाएँ और आकांक्षाएँ तनावों को जन्म देती हैं, मात्र यही नहीं, पूर्ण इच्छाओं की स्थिति में भी उनके पुनः–पुनः भोग की अपेक्षा तो बनी रहती है। वे सभी आकांक्षाएँ नवीन आकांक्षाओं को जन्म देती रहती है और इससे तनाव का जन्म होता है। जैसा कि पूर्व में कहा गया है –जहाँ इच्छा, आकांक्षा रही हुई हैं, वहाँ तनाव अपरिहार्य है। मनोवैज्ञानिकों के अनुसार तनाव मात्र इच्छा या आकांक्षा की पूर्ति की अपेक्षा ही नहीं रखता है, अपितु इनके माध्यम से पुनः

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न नवीन इच्छाओं और आकांक्षाओं का एक वर्तुल (चक्र) खड़ा कर लेता है। यह अंतहीन चक्र चलता रहता है। जैनदर्शन में इसे अनन्तानुबंधी–कषाय–चक्र कहा गया है। अतः जहाँ तनावों को समाप्त करने की बात है, वहाँ सबसे पहले यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी चंचल चित्त वृत्ति को या तो एकाग्र करे या उनका उच्छेद करे। इसका परिणाम यह होगा कि जब चित्त वृत्तियाँ साक्षीभाव में स्थित होंगी तो उनसे नवीन इच्छाओं, आकांक्षाओं या अपेक्षाओं का जन्म नहीं होगा और फलतः तनाव उत्पन्न नहीं होंगे। इसलिए यदि तनावों को समाप्त करना है, तो चित्त की चंचलता समाप्त करना होगी तब ही तनावों का जन्म भी नहीं होगा और इस प्रकार चित्तवृत्ति और तनावों के सह–सम्बन्ध का दुष्चक्र टूट जावेगा।

चित्त और तनाव : आचार्य महाप्रज्ञ की दृष्टि में –

आचार्य महाप्रज्ञजी ने भी चित्त को चंचल कहा है, किन्तु मन और चित्त को पृथक् करते हुए उनका यह मानना है कि चित्त का विक्षेप, मन का विक्षेप है। चित्त की चंचलता, मन की चंचलता है। मन का स्वभाव ही चंचलता है, जहाँ चंचलता समाप्त हो जाती है, वहाँ मन मर जाता है, अर्थात् मन 'अमन' हो जाता है, किन्तु चित्त की स्थिति भिन्न है उसको स्थिर किया जा सकता है और जब चित्त स्थिर हो जाता है, तब भी मन अमन बन जाता है।[19]

आचार्य महाप्रज्ञजी के अनुसार चित्त के चार प्रकार हैं[20] –

1. मिथ्यात्व–अध्यवसाय, 2. अविरत–अध्यवसाय

3. प्रमाद–अध्यवसाय 4. कषाय–अध्यवसाय

ये चार प्रकार के चित्त (अध्यवसाय) सतत सक्रिय रहते हैं।

---

[19] चित्त और मन – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 240

[20] वही, पृ. 242

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. **मिथ्यात्व–अध्यवसाय** रूपी चित्त से जो प्रकंपन होते हैं, वे दृष्टिकोण को भ्रांत बनाते हैं और जब दृष्टिकोण सम्यक् नहीं होता तो गलत धारणाएँ बनती हैं। ये गलत धारणाएँ व्यक्ति को तनावमुक्ति की अपेक्षा तनावग्रस्तता की ओर ले जाती हैं।

2. **अवितरत–अध्यवसाय** चित्त का दूसरा प्रकार है। इसको तृष्णा भी कहा जाता है। अविरति की भावना से तृष्णा उत्पन्न होती है। यह तृष्णा निरन्तर बनी रहती है। यह तृष्णा स्थूल चित्त में प्रकट होकर लोभ या लोभ–जनित प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करती है।[21] इस प्रकार अविरतभाव रूप यह तृष्णा नियमतः तनाव उत्पत्ति का ही एक हेतु है।

3. तीसरा चित्त है – **प्रमाद–चित्त** – यह मूर्च्छा उत्पन्न करता है।[22] इसके कारण आत्म–सजगता समाप्त हो जाती है। यह असजगता अचेतन मन में तनाव के कारणों को जन्म देती है। दमित इच्छाएँ और वासनाएँ इसी प्रमत्त चित्त में निवास करती हैं। प्रमत्त चित्त को ही कर्म कहा गया है, क्योंकि यह कर्म बन्धन का हेतु है।

4. चौथा चित्त है– **कषायचित्त** – यह चित्त क्रोध, अहंकार, कपट, लोभ, राग–द्वेष, प्रियता–अप्रियता – इन सबको उत्पन्न करता है।[23] ये कषाय वृत्तियाँ भी तनाव का मूलभूत हेतु है।

कषाय–चित्त में रहा हुआ राग चेतना को अशुद्ध बनाता है। जितना राग होता है, उतना ही चित्त अशुद्ध या तनावयुक्त होता है।[24]

तनावमुक्ति के लिए वैराग्य का रास्ता बताया गया है। भगवान् महावीर ने कहा है –"खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा"[25] अर्थात् जितनी कामनाएँ, आकांक्षाएँ

---

[21] वही, पृ. 242

[22] वही, पृ. 243

[23] वही, पृ. 243

[24] वही, पृ. 245

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और लालसाएँ चित्त में जागती हैं, ये क्षण भर के लिए सुख देती हैं। ये प्रवृत्तिकाल (भोगकाल) में सुख देती हैं, किन्तु परिणामकाल में अधिक समय तक दुःख देती हैं।[26] तृष्णा जन्य दुःख तनाव का ही पर्यायवाची शब्द है। मनोवैज्ञानिक जिसे तनाव कहते हैं, जैन आगमों में उसे दुःख कहा गया है। बौद्ध–परम्परा उसे तृष्णा या दुःख आर्य–सत्य कहती है। चित्त की दो अवस्थाएँ कही जा सकती हैं। जब चित्त अस्थिर या चंचल अथवा तृष्णा, कषाय आदि से युक्त होता है तो वह विक्षिप्त चित्त कहा जाता है और जब वह इनसे रहित होता है तो वह स्थिर, शांत हो जाता है तथा समाहित चित्त कहा जाता है। विक्षिप्त चित्त दुःख (तनाव) युक्त होता है और समाहित चित्त को कोई दुःख नहीं होता है।[27] विक्षिप्त चित्त जब समाहित चित्त हो जाता है तो तनाव समाप्त हो जाते हैं। समाहित चित्त होने पर भी समस्याएँ आ सकती हैं, किन्तु वह उसमें अनुकूल–प्रतिकूल का संवेदन न करके तनावमुक्त रह सकता है। तनावमुक्त अवस्था चित्तशुद्धि या चित्त स्थिरता से सम्भव है और इसके लिए उपाय बताते हुए आचार्य महाप्रज्ञ लिखते हैं कि –"भाव शुद्धि ही चित्त को निर्मल व राग–द्वेष से मुक्त बना सकती है।"[28] निरालंबन ध्यान से मन को दीर्घकाल तक एकाग्र कर चित्त को स्थिर किया जा सकता है।[29] इस पद्धति से चित्त विचार–शून्य हो जाता है।[30] विचार–शून्य अवस्था पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है।

---

[25] उत्तराध्ययनसूत्र – 14/3

[26] चित्त और मन – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 245

[27] वही, पृ. 248

[28] चित्त और मन – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 244

[29] वही, पृ. 248

[30] निरालंबन ध्यान की पद्धति के लिए देखें – चित्त और मन, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 249

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन और तनाव का सह सम्बन्ध –

मन कोई स्थाई तत्त्व नहीं है। वह चेतना या चित्त के आधार पर सक्रिय रहता है –"जो चेतना बाहर जाती है, उसका प्रवाहात्मक अस्तित्त्व ही मन है।"[31] जैनदर्शन में मन की दो अवस्थाएँ मानी गई हैं – द्रव्यमन व भावमन। इस सम्बन्ध में पूर्व में चर्चा करते हुए हमने बताया है कि भावमन चैत्तसिक मनोवृत्ति है तो द्रव्यमन दैहिक संरचना है। इन दोनों के बीच जैनदर्शन क्रिया–प्रतिक्रिया रूप सम्बन्ध मानता है। चित्तवृत्तियों का प्रभाव शरीर पर होता है और शारीरिक संवेदनाओं का प्रभाव चित्त (मन) पर होता है और शारीरिक संवेदनाओं का प्रभाव चित्त–वृत्तियों पर होता है। यही एक ऐसी स्थिति है जिसके आधार पर तनाव और मन में सम्बन्ध जोड़ा जा सकता है। आधुनिक मनोविज्ञान में तनाव को एक दैहिक संवेदना के रूप में भी माना गया है, किन्तु इसी समय वह एक चैत्तसिक वृत्ति भी है। चूंकि जैनदर्शन मन और शरीर के बीच क्रिया–प्रतिक्रिया का सम्बन्ध मानता है। विचार (भाव) के स्तर पर जो कुछ होता है, उसका प्रभाव शरीर पर और शरीर के स्तर पर जो कुछ होता है उसका प्रभाव विचार (मनोभावों) पर पड़ता है। बाह्य संवेदनाएँ शरीर को प्रभावित करती है और शरीर मन को प्रभावित करता है। पुनः यह प्रभावित मन शारीरिक प्रतिक्रियाओं को उत्पन्न करता है और ये शारीरिक प्रतिक्रियाएँ ही मनोवैज्ञानिक भाषा में तनाव को जन्म देती हैं, अतः मन और तनाव दोनों में एक सह–सम्बन्ध रहा हुआ है। मन किस प्रकार व्यक्ति को तनावग्रस्त करता है, यह बताते हुए जैन आगमों में कहा गया है –

"आसं च छंदं च विगिंच धीरे! तुमं चेव सल्लामाहटटु।"[32]

हे धीर पुरुष ! आशा–तृष्णा और स्वच्छन्दता का त्याग कर दो, क्योंकि तू स्वयं ही इन कांटों को मन में रखकर दुःखी (तनावग्रस्त) हो रहा है।

---

[31] चित्त और मन – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 1

[32] आचारांगसूत्र – 1/2/4

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे।
से केयणं अरिहए पूरइत्तए।"[33]

अर्थात् यह मनुष्य अनेकचित्त है, अर्थात् अनेकानेक कामनाओं के कारण मनुष्य का चित्त (मन) बिखरा हुआ है। इन कामनाओं की पूर्ति का प्रयास तो चलनी को भरने के प्रयास के समान है।

इच्छाओं, आकांक्षाओं और कामनाओं का जन्म स्थल मन ही है और जब ये कामनाएँ खत्म नहीं होती या पूर्ण नहीं होती तो मन में तनाव उत्पन्न होता है।

तनाव और मन का सम्बन्ध बताते हुए तथा तनाव आने पर मन को किस प्रकार संयमित रखना चाहिए, यह बताते हुए लिखा है –**"दुक्खेन पुट्ठे धुयमायएज्जा"**[34] अर्थात् दुःख आ जाने पर भी मन पर संयम रखना चाहिए। कहने का तात्पर्य यही है कि तनावग्रस्त होने पर भी मन में संयम रखने पर तनावमुक्त स्थिति प्राप्त होती है। तनाव से ही बचने के लिए कहा गया है –**"न सव्व सव्वत्थभिरोयएज्जा"** हर कहीं, हर किसी वस्तु में मन को मत लगा बैठिए।[35]

तनाव से मन या चित्तवृत्ति प्रभावित होती है और प्रभावित चित्तवृत्ति शरीर में तनाव उत्पन्न करती है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ का भी यही मानना है कि शारीरिक बीमारियों का कारण मनोभाव ही है और यह मनोभाव ही शरीर में तनाव उत्पन्न करते हैं।[36]

अतः जैनदर्शन को यह मानने में कोई बाधा नहीं आती है, तनाव एक मनोदैहिक अवस्था है, जिसमें मन और शरीर एक दूसरे को प्रभावित करते रहतें है और जब यह प्रभाव अति तीव्र होता है तो उसको तनाव कहा जाता है। जैनदर्शन न तो स्पिनोज़ा के समान मन और शरीर में **समान्तरवाद** मानता है

---

[33] आचारांगसूत्र – 1/3/2

[34] सूत्रकृतांगसूत्र – 1/7/29

[35] उत्तराध्ययनसूत्र – 21/15

[36] देखें पुस्तक – चित्त और मन, मन का शरीर पर प्रभाव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और न लाइब्निज़ के समान उनमें पूर्व स्थापित सामंजस्यवाद मानता है, अपितु वह डेकार्ट के समान उनमें क्रिया–प्रतिक्रियावाद को स्वीकार करता है। इस प्रकार तनाव का जन्म मन या मनोवृत्ति में होता है और उसकी अभिव्यक्ति शरीर के माध्यम से होती है। जो लोग दैहिक अवस्था को ही तनाव मान लेते हैं, वे लोग उसके मूल कारण तक नहीं पहुंच पाते हैं। वस्तुतः तनाव मनोदैहिक स्थिति है जो दोनों के बीच क्रिया–प्रतिक्रिया रूप सह सम्बन्ध से उत्पन्न होता है।

आधुनिक मनोविज्ञान में चेतना की अपेक्षा से मन के तीन स्तर माने हैं।[37] 1. अचेतन, 2. अवचेतन और 3. चेतन। आचार्य महाप्रज्ञजी[38] ने प्रेक्षाध्यान की भाषा में अचेतन को कर्म शरीर के साथ अवचेतन (आवरित चेतना) को तेजस शरीर के साथ और चेतन को औदारिक या स्थूल शरीर के साथ जोड़ा है। हमारा चेतन मन या जाग्रत करन ही तनाव का और तनावमुक्ति का कारण है। उसकी पृष्ठभूमि में ही चेतना के ये अनेक स्तर हैं।

अचेतन मन जैनदर्शन की भाषा में द्रव्यमन है। इसमें दमित वासनाएँ और संस्कार बैठे रहते हैं और अवचेतन के माध्यम से चेतना के स्तर पर आने का प्रयास करते हैं।

हम ज्यादा काम चेतन मन से लेते हैं। हमारी इच्छाएँ और आकांक्षाएँ इसी में उत्पन्न होते हैं। इच्छाएँ मन के स्तर पर होती हैं, जब इन इच्छाओं या आकांक्षाओं का दमन करते हैं तो वे अचेतन मन में चली जाती है और अवचेतन मन में बार–बार उस इच्छा को उभारती रहती है, अर्थात् चेतना के स्तर पर लाने का प्रयास करती है। फ्रायड के अनुसार, अर्द्धचेतन (अवचेतन) चेतन और अचेतन क्षेत्र के बीच एक पुल (Bridge) का काम करता है। अनेक इच्छाएँ और वासनाएँ सामाजिक आदर्शों के विपरीत होती है, वे हमारी चेतना के द्वारा तिरस्कृत कर अचेतन मन में डाल दी जाती है, लेकिन अचेतन मन में रहते हुए

---

[37] आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान – अरूणकुमार सिंह, आशीषकुमार सिंह, पृ. 570

[38] अवचेतन मन से सम्पर्क – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ.1 (प्रस्तुति से)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भी पूरी तरह निष्क्रिय नहीं होती। उनकी सक्रियता ही तनाव को जन्म देती है। वे अवचेतन एवं चेतन मन की सक्रियता को बढ़ाती हैं। फलतः वासनात्मक मन (Id) और आदर्श मन (Super Ego) दोनों के बीच एक संघर्ष होता है। दमित वासनाएँ और इच्छाएँ पुनः सक्रिय होकर चेतन मन को प्रभावित करती हैं, वहीं आदर्शात्मक मन उन्हें नकारने की कोशिश करता है। फलतः दोनों के बीच एक संघर्ष का जन्म होता है। आध्यात्मिक आदर्श और दैहिक वासनाएँ जब संघर्षरत होती है, तो चेतना में एक तनाव उत्पन्न होता है, जो हमारे मन और शरीर दोनों को प्रभावित करता है। शरीर उनकी पूर्ति की अपेक्षा रखता है, तो आदर्श मन (Super Ego) उसे नकारने का प्रयास करता है। इससे चैत्तसिक संतुलन भंग होता है और तनाव उत्पन्न होता है। इस प्रकार उपर्युक्त चेतना के तीनों स्तर संघर्षशील होकर व्यक्ति को तनावग्रस्त बना देते हैं। इस प्रकार फ्रायड आदि मनोवैज्ञानिकों ने मन के जो तीन स्तर बताए हैं, उनमें वासनात्मक मन (Id) और आदर्शात्मक मन (Super Ego) दोनों संघर्षशील होकर तनाव का कारण बनते हैं। इस प्रकार मन के उपर्युक्त इन तीन स्तरों का भी तनाव से सह--सम्बन्ध देखा जा सकता है।

जैन, बौद्ध और योगदर्शन में मन की अवस्थाएँ –

मन क्या है ? उसका स्वरूप क्या ? वह किस प्रकार तनाव उत्पन्न करता है, एवं किस प्रकार तनावों से मुक्त करता है ? वस्तुतः मन के भी अनेक स्तर हैं, इन स्तरों की चर्चा हम पूर्व में कर चुके हैं। यहाँ हम जैन, बौद्ध और योगदर्शन में मन की जो अवस्थाएँ वर्णित हैं और उनका तनावों से क्या सह--सम्बन्ध है ? इसकी विस्तार से चर्चा करेंगे।

जैन, बौद्ध और योगदर्शन के अनुसार मन ही तनाव की जन्मभूमि है और मन ही तनावमुक्ति का साधन भी है। मन की इन विभिन्न अवस्थाओं के आधार पर ही मन बन्धन और मुक्ति का कारण माना जाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन में मन की अवस्थाएँ – आचार्य हेमचन्द्र ने मन की चार अवस्थाएँ मानी हैं – 1. विक्षिप्त मन, 2. यातायात मन, 3. श्लिष्ट मन और 4. सुलीन मन[39]

1. **विक्षिप्त मन** – यह चंचल होता है, इधर–उधर भटकता रहता है। अस्थिर होता है। अस्थिर मन तनावयुक्त होता है।

2. **यातायात मन** – इस अवस्था में मन की भाग–दौड़ बनी रहती है। मन कभी बाह्य विषयों की ओर जाता है, तो कभी अन्तरात्मा में स्थित होता है। इस अवस्था में क्षण भर के लिए शांति का अनुभव होता है और फिर मन तनावग्रस्त हो जाता है।

3. **श्लिष्ट मन** – यह मन की स्थिरता की अवस्था है। जैसे–जैसे स्थिरता बढ़ती है, तनावमुक्ति के लिए अग्रसर होता जाता है।

4. **सुलीन मन** – यह पूर्ण तनावमुक्ति की अवस्था है, क्योंकि इसमें संकल्प–विकल्प, मानसिक वृत्तियाँ, वासनाएँ आदि शांत हो जाती हैं।

बौद्धदर्शन में चित्त की चार अवस्थाएँ – अभिधम्मत्थसंगहो के अनुसार बौद्ध दर्शन में भी चित्त की चार अवस्थाएँ हैं –

1. क्रामावचर, 2. रूपावचर, 3. अरूपावचर और 4. लोकोत्तर[40]

1. **कामावचर** – यह मन की वह अवस्था है, जिसमें व्यक्ति कामनाओं और वासनाओं के पीछे भागता रहता है। इस अवस्था में व्यक्ति के मन में संकल्प– विकल्प चलता ही रहता है। अपनी कामनाएँ पूरी होने पर वह स्वयं को तनावमुक्त समझता है, किन्तु कुछ ही क्षण में कोई नई कामना जग जाती है, जो उसे तनावग्रस्त बना देती है। कामना पूरी होने पर भी जो उसे क्षणिक तनावमुक्ति का अनुभव होता है, वस्तुतः वह तनावग्रस्तता

---

[39] योगशास्त्र – 12/2

[40] अभिधम्मत्थसंगहो, पृ. 1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की ही अवस्था है, क्योंकि तृष्णा जीवित रहती है। यह अवस्था जैनदर्शन के विक्षिप्तचित्त के समान है।

2. **रूपावचर** – यह अवस्था यातायात मन के समान ही है। इसमें मन अस्थिर तो रहता है, लेकिन एकाग्रता का प्रयत्न भी होता है। बिना किसी संकल्प विकल्प के जब शांति का अनुभव होता है, तो उस क्षण को बनाए रखने का प्रयास भी होता है, किन्तु पूर्वाभ्यास के कारण बाहरी विषयों में उलझ जाता है और तनावग्रस्त हो जाता है।

3. **अरूपावचर** – यह चित्त की स्थिर अवस्था है। इसमें चित्त पूर्णतः तनावमुक्त तो नहीं होता है, लेकिन तनावग्रस्त भी नहीं रहता है, क्योंकि उसकी एकाग्रता निर्विषय नहीं होती। उसके विषय अत्यन्त सूक्ष्म जैसे अनन्त आकाश, अनन्त विज्ञान या अकिंचनता होते हैं।[41]

4. **लोकोत्तर चित्त** – यह तनावमुक्ति की अवस्था है। निर्वाण अर्थात् तृष्णा का शांत हो जाना, यह पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है। इस अवस्था में तनाव के मूल कारणों राग–द्वेष, वासना, मोह आदि पूर्ण रूप से क्षीण हो जाते हैं। राग–द्वेष तनाव की उत्पत्ति के बीज हैं और जब वह बीज ही समाप्त हो जाएगा तो तनाव रूपी पेड़ कभी नहीं पनपेगा। इस अवस्था में व्यक्ति का चित्त पूर्णतः तनावमुक्त हो जाता है।

योगदर्शन में चित्त की पाँच अवस्थाएँ – योगदर्शन में चित्त की पाँच अवस्थाएँ कही गई हैं –1. क्षिप्त, 2. मूढ़, 3. विक्षिप्त, 4. एकाग्र और 5. निरूद्ध।[42]

1. क्षिप्त चित्त – यह अवस्था भी विक्षिप्त मन व कामावचर चित्त के समान ही है। चित्त एक विषय से दूसरे विषय की ओर दौड़ता ही रहता है, विषयों में

---

[41] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–1, डॉ. सागरमल जैन, पृ.495

[42] भारतीय दर्शन (दत्ता), पृ. 190

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भटकता रहता है। ऐसे में तनावमुक्ति कहाँ ? व्यक्ति पूर्णतः तनावग्रस्त बना रहता है। यह विषयासक्ति की अवस्था है।

2. मूढ़ चित्त – इस अवस्था में प्रमाद अधिक होता है। आलस्य के कारण वह कोई कार्य नहीं कर पाता और जो करता है, उसमें भी विफल हो जाता है। यह अवस्था भी तनावमुक्त अवस्था नहीं है, क्योंकि इसमें वासनाएँ शांत नहीं होती। निद्रावस्था में चित्त की वृत्तियों का कुछ काल के लिए तिरोभाव हो जाता है, किन्तु वे तनावमुक्त नहीं होती है।

3. विक्षिप्त चित्त – बौद्धदर्शन का विक्षिप्त चित्त जैनदर्शन के विक्षिप्त चित्त से थोड़ा भिन्न है। इस चित्त में व्यक्ति एक विषय की ओर दौड़ता है, फिर दूसरा मिलते ही उसके पीछे भागने लगता है, तो पहला वाला छूट जाता है। वस्तुतः यह भाग–दौड़ तनाव को उत्पन्न करती है। व्यक्ति में संतुष्टि नहीं होती है, एक के बाद एक विषय की चाह होती ही रहती है।

4. एकाग्र चित्त – यह चित्त की वह अवस्था है, जिसमें चित्त एक विषय पर एकाग्र हो जाता है। वस्तुतः चित्त की एकाग्रता से ही तनावमुक्ति होती है, किन्तु इस अवस्था में चित्त एकाग्र होते हुए भी तनावग्रस्त तो रहता ही है, क्योंकि उसकी एकाग्रता किसी एक विषय पर केन्द्रित हो जाती है और एक विषय की आसक्ति भी तनाव का ही कारण है।

5. निरूद्ध चित्त – यह पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है। इस अवस्था में चित्त इन्द्रियों के विषयों का भोग नहीं करता। यह मन की स्थिर और शांत अवस्था है। चित्त की सभी वृत्तियों का लोप होने से यह तनावमुक्त अवस्था है, जिसे जैनधर्म के शब्दों में मोक्ष कह सकते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से हम यह कह सकते हैं कि भले ही नामों में अन्तर है, लेकिन उनके मूलभूत दृष्टिकोण में कोई अन्तर नहीं है। योगदर्शन में चाहे पाँच चित्त की अवस्थाएँ हैं, पर प्रथम दो क्षिप्त एवं मूढ़ जैन दर्शन के विक्षिप्त मन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और बौद्धदर्शन के कामावचर के समान ही है। तीनों के लक्षण एक समान ही हैं।

इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि चित्त–वृत्तियों या वासनाओं अथवा विषयों के प्रति आसक्ति का विलयन ही तनावमुक्ति का साधन है।

बौद्धदर्शन में चैत्तसिक धर्म और तनाव

बौद्धदर्शन में बावन चैत्तसिक धर्म माने गए है।[43] सभी चैतसिक धर्म वे तथ्य हैं, जो चित्त की प्रवृत्ति के हेतु हैं। हेतु के आधार पर चित्त दो प्रकार का माना गया है –

1. अहेतुक एवं 2. सहेतुक

1. अहेतुक चित्त – जिस चित्त की वृत्ति में लोभ, द्वेष आदि कोई कार्य नहीं होते। दूसरे शब्दों में यह भी कह सकते हैं कि जिस चित्त में तनाव उत्पत्ति का कोई हेतु नहीं रहता है, वह अहेतुक चित्त है, तनावमुक्त चित्त है।

2. सहेतुक चित्त – जिस चित्त की वृत्ति में लोभ–द्वेष और मोह तथा अलोभ, अद्वेष और अमोह – इन छह हेतुओं में से कोई भी हेतु होता है, वह सहेतुक चित्त है। इस चित्त में तनाव उत्पत्ति के हेतु निहित रहते हैं, क्योंकि यहाँ संकल्प–विकल्प तो होते ही हैं। अलोभ, अद्वेष और अमोह चित्त में भी दूसरे के प्रति परोपकार की वृत्ति होने के कारण या दूसरों के भी हित की चिन्ता रहने के कारण यह अलोभ, अद्वेष और अमोह रूप चित्त भी सहेतुक होता है। यह पुण्य रूप चित्त है।

डॉ. सागरमल जैन का कहना है –"मनुष्य जिस किसी कार्य में प्रवृत्त होता है, वह इन छह हेतुओं में से किसी एक को लेकर प्रवृत्त होता है।[44]

---

[43] अभिधम्मत्थसंगहो – चैत्तिसिक संग्रह विभाग, पृ. 10–31

[44] जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 464

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सहेतुक चित्त तीन प्रकार का होता है – 1. अकुशल, 2. कुशल और 3. अव्यक्त। इनमें लोभ, द्वेष और मोह –ये तीन अकुशलचित्त के प्रेरक होने से ये तनावयुक्त चित्त है। जब अलोभ, अद्वेष और अमोह से परोपकार में प्रवृत्त होता है तो वह कुशलचित्त कहा जाता है। कुशलचित्त में दूसरों के प्रति परोपकार की भावना या दूसरों के हित की चिंता तो होती ही है, अतः यह भी सहेतुक होता है, इसमें उत्पन्न तनाव यद्यपि कम तीव्र होते हैं। अव्यक्त चित्त दो प्रकार का होता है – 1. विपाक सहेतुक चित्त और 2 क्रिया सहेतुक चित्त। जब सहेतुक चित्त की प्रवृत्ति पूर्वकृत कर्म के फल भोग के रूप में मात्र वेदनात्मक (विपाक–चेतना या कर्मफल–चेतना के रूप में) होती है, तो वह विपाक सहेतुक चित्त होता है। इस चित्त में मात्र वेदनात्मक प्रवृत्ति होने से यह तनावयुक्त चित्त है। इसी के विपरीत तनावमुक्ति प्राप्त करने के लिए या वीतराग, वीतृष्ण एवं अर्हत् पद की प्राप्ति के लिए जिसमें क्रिया–व्यापार की जो चेतना है, वह 'क्रिया सहेतुक चित्त' कहा जाता है। यद्यपि क्रिया–सहेतुक चित्त में क्रिया के प्रेरक अलोभ, अद्वेष और अमोह के तत्त्व तो उपस्थित रहते हैं, तथापि तृष्णा के अभाव के कारण व्यक्ति तनावग्रस्त नहीं होता। इस प्रकार जहाँ सहेतुक कुशलचित्त में अलोभ, अद्वेष और अमोह भी तनाव (कर्म) के प्रेरक होते हैं, क्योंकि उसमें कहीं–न–कहीं पर के प्रति हितबुद्धि के कारण सूक्ष्म रागभाव तो होता है। सहेतुक अव्यक्त चित्त में अलोभ, अद्वेष और अमोह के कर्म–प्रेरक तो होते हैं, लेकिन उसमें तृष्णा (रागभाव) का अभाव होता है, अतः सहेतुक अव्यक्त चित्त तनावमुक्त होता है। इन तीन सहेतुक चित्तों के बावन चैत्तसिक धर्म (चित्त अवस्थाएँ) माने गए हैं। जिनमें तेरह अन्य समान, चौदह अकुशल और पच्चीस कुशल होते हैं। उनका विवरण इस प्रकार है –

(अ) अन्य समान चैत्तसिक –

जो चैत्तसिक कुशल, अकुशल और अव्यक्त सभी में समान रूप से रहते हैं, वे अन्य समान कहे जाते हैं। अन्य समान चैतसिक भी दो प्रकार के हैं –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(क) साधारण अन्य समान चैत्तसिक – जो प्रत्येक चित्त में सदैव उपस्थित रहते हैं, वे सात हैं – 1. स्पर्श, 2. वेदना, 3. संज्ञा, 4. चेतना, 5. एकाग्रता (आंशिक), 6 जीवितेन्द्रिय और 7. मनोविकार

(ख) प्रकीर्ण अन्य समान चैत्तसिक – जो प्रत्येक चित्त में यथावसर उत्पन्न होते रहते हैं, ये छह हैं – 1. वितर्क, 2. विचार, 3. अधिमोज्ञ (आलम्बन में स्थिति), 4. वीर्य (साहस), 5. प्रीति (प्रसन्नता) और 6. छन्द (इच्छा)

उपर्युक्त छह में से एकाग्रता को छोड़कर शेष सभी चित्त को विचलित करने वाले हेतु हैं। यहाँ एकाग्रता भी आंशिक ही होती है।

(ब) अकुशल चैत्तसिक –

ये चौदह हैं – 1. मोह, 2. निर्लज्जता, 3. अभीरूता (पाप करने में भय नहीं खाना) 4. चंचलता, 5. लोभ, 6. मिथ्यादृष्टि, 7. मान, 8. द्वेष, 9. ईर्ष्या, 10. मात्सर्य, (कष्ट), 11. कौकृत्य (पश्चाताप या शोक), 12. स्त्यान (चित्त का तनाव) 13. मृध्द (चैत्तसिकों का तनाव) और 14. विचिकित्सा (संशयालुपन)

(स) कुशल चैत्तसिक –

ये पच्चीस हैं – 1. श्रृद्धा, 2. स्मृति (अप्रमत्तता), 3. पापकर्म के प्रति लज्जा, 4. पापकर्म के प्रति भय, 5. अलोभ (त्यागभाव), 6. अद्वेष (मैत्री), 7. तत्र मध्यस्थता (अनासक्ति, उपेक्षा या समभाव), 8. काय–प्रश्रब्धि (प्रसन्नता), 9. चित्त–प्रश्रब्धि, 10. काय–लघुता (अहंकार का अभाव), 11. चित्त–लघुता, 12. काय–विनम्रता, 13. चित्त–विनम्रता, 14. काय–सरलता, 15. चित्त–सरलता, 16. काय–कर्मण्यता, 17. चित्त–कर्मण्यता, 18. काय–प्रागुण्य (समर्थता), 19. चित्त –प्रागुण्य, 20. सम्यक–वाणी, 21. सम्यक्–कर्मण्यता, 22. सम्यक्–जीविका, 23. करुणा, 24. मुदिता, और 25. प्रज्ञा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध धर्मदर्शन में जो इन 52 चैत्तसिकों का जो उल्लेख मिलता है, वह यहाँ मुख्यतः अकुशल चैत्तसिक, कुशल चैत्तसिक और अव्यक्त चैत्तसिक – ऐसे तीन वर्गों में विभाजित किया गया है। अकुशल चैतसिक चित्त की मलिन अवस्था है, अतः वह तनावयुक्त अवस्था है। व्यक्ति के कुशल चैत्तसिक मुख्यतः तनाव के हेतु न होकर तनावमुक्ति की प्रक्रिया के साधन रूप हैं। जहाँ तक अव्यक्त चैत्तसिकों का प्रश्न है, वस्तुतः वे ज्ञाता–द्रष्टाभाव की स्थिति कहे जा सकते हैं और जो ज्ञाता–द्रष्टा भाव की स्थिति है वह तनाव के हेतुओं के अभाव की स्थिति है। ज्ञाता–द्रष्टाभाव में विकल्प नहीं होते और जहाँ विकल्पों का अभाव होता है, वहाँ तनाव नहीं होता। तनावों का जन्म विकल्पों में ही संभव है, क्योंकि तनाव चाह या इच्छा का परिणाम हैं, और चाह और इच्छा विकल्प रूप ही हैं। बौद्ध दर्शन में यह माना गया है कि शब्द विकल्पजन्य है और विकल्प शब्दों के माध्यम से अभिव्यक्त होते हैं। अतः बौद्धदर्शन के अनुसार तनावमुक्ति के लिए विकल्पों से मुक्ति आवश्यक है। विकल्प वह आधारभूमि है, जिसमें इच्छा या आकांक्षा जन्म लेती है और व्यक्ति की चेतना को तनावग्रस्त बनाती है। अतः बौद्धदर्शन के अनुसार भी तनावों से मुक्त रहने के लिए विकल्पों से उपर आना आवश्यक है। संक्षेप में बावन चैत्तसिकों में जो विकल्पयुक्त हैं, वे तनावयुक्त हैं और जो विकल्पमुक्त हैं, वे तनावमुक्त हैं।

———————000———————

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मदर्शन में तनाव प्रबंधन

अध्याय-4 जैनधर्म दर्शन की विविध अवधारणाएँ और तनाव

1. जैनदर्शन में आत्मा की अवस्थाएँ और तनाव से उनका सह-सम्बन्ध
2. त्रिविध आत्मा की अवधारणा और तनावों से उनका सह-सम्बन्ध
3. त्रिविध चेतना और तनाव (ज्ञानचेतना, कर्मचेतना और कर्मफल चेतना)
4. जैनदर्शन में मन की विविध अवस्थाएँ और तनावों से उनका सह-सम्बन्ध
5. राग व द्वेष तनाव के मूलभूत हेतु
6. इच्छा एवं आकांक्षाओं का तनाव से सह-सम्बन्ध
7. कषायचतुष्क और तनाव
8. षट् लेश्याएँ और तनाव
9. उत्तराध्ययनसूत्र के अनुसार लेश्याओं का स्वरूप और तद्जन्य तनावों का स्वरूप
10. भगवती एवं कर्मग्रन्थों के आधार पर कषायों की चर्चा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–4

जैनदर्शन की विविध अवधारणाएँ और तनाव से उनका सम्बन्ध

(अ) त्रिविध आत्मा की अवधारणा और तनाव –

जैनदर्शन अध्यात्मवादी दर्शन है। उसमें आत्मा की विशुद्धि को प्राथमिकता दी गई है। अध्यात्म का अर्थ आत्मा की सर्वोपरिता है। आत्मा का निर्मलतम या विशुद्धतम अवस्था में होना ही अध्यात्म का लक्षण हैं और यह अवस्था ही पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है। जैनदर्शन के अनुसार आत्मिक विकास तनावमुक्ति की एक सहज प्रक्रिया है। जैसे–जैसे आत्मा के आध्यात्मिक गुणों का विकास होगा, वैसे–वैसे व्यक्ति तनाव से मुक्त होता जाएगा।

हम यह भी कह सकते हैं कि जैसे–जैसे व्यक्ति तनावमुक्त होगा वह आत्मा की विशुद्धतम अवस्था की ओर अग्रसर होता जाएगा, क्योंकि जैनदर्शन में आत्म विशुद्धि का अर्थ है –आत्मा का राग–द्वेष और तज्जन्य कषायों से मुक्त होना है। क्रोधादि कषायों से मुक्त होना ही तनावमुक्ति है। जैनदर्शन में आत्मा के आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से तीन अवस्थाएँ कही गई है[1] – 1. बहिरात्मा, 2. अन्तरात्मा और 3. परमात्मा।

इन तीनों अवस्थाओं के लक्षणों के द्वारा यह जाना जा सकता है कि व्यक्ति तनाव की किस अवस्था में है। इन तीनों अवस्थाओं को मनोविज्ञान की दृष्टि से क्रमशः 1. तनावयुक्त, 2. तनावमुक्ति की ओर अभिमुखता और 3. पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था कह सकते हैं।

बहिरात्मा एवं तनाव –

संसार में राग–द्वेष और तज्जन्य कषायों से युक्त व्यक्ति तनावयुक्त अवस्था को प्राप्त करता है। यही बहिरात्मा रूप प्रथम अवस्था है। बहिरात्मा

---

[1] अ) मोक्खपाहुड, 4

ब) योगावतार, द्वात्रिंशिका, 17–18

स) अध्यात्ममत परीक्षा, गा. 125

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देहात्मा बुद्धि और मिथ्यात्व से युक्त होता है।[2] यह अवस्था आत्मा की संसार में अनुरक्तता की या उसकी विभाव–दशा की सूचक है और विभाव–दशा ही तनावयुक्त दशा है, अतः तनावमुक्ति के लिए सर्वप्रथम बहिरात्मा के लक्षण व स्वरूप को समझकर उन्हें त्यागना आवश्यक है, क्योंकि जो बहिरात्मा के लक्षण हैं, वे ही तनाव के मुख्य कारक हैं। उन कारक तत्त्वों को समझकर त्यागने से ही व्यक्ति साधक बन सकता है और साधना से परमात्मा की अवस्था को प्राप्त कर सकता है। जैनदर्शन के अनुसार तनाव का मुख्य कारण पर–पदार्थों में राग–द्वेष भाव रखना है, यह तनावयुक्त अवस्था में होता है, क्योंकि यदि वांछित वस्तु उपलब्ध नहीं है तो उसकी प्राप्ति की चाह से तनाव उत्पन्न होगा। यदि वह प्राप्त है तो उसका वियोग न हो इसकी चिन्ता रहेगी। ऐसी आत्मा की तनावयुक्त अवस्था को ही बहिरात्मा कहते हैं, क्योंकि जैन आचार्यों के अनुसार जो सांसारिक विषयभोगों में रत रहते हैं और पर–पदार्थों में अपनेपन का आरोपण कर राग–द्वेष का भाव रखते हैं, उन्हें ही बहिरात्मा कहा जाता है। साध्वी प्रियलताश्री ने भी अपने शोध–प्रबन्ध में शोध कर यही वर्णित किया है कि –"जो सांसारिक विषयभोगों में रत रहते हैं और उन्हें ही अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य समझते हैं और उन पर–पदार्थों में अपनेपन का आरोपण कर उनके भोग में जो आसक्त बने रहते हैं, उन्हें ही बहिरात्मा कहा जाता है।[3]

चाहे बहिरात्मा हो या आत्मा की तनावयुक्त अवस्था हो, दोनों का ही स्वरूप एवं लक्षण व्यक्ति की जीवनदृष्टि पर ही आधारित होते हैं। जो अपनी आत्मा के शुद्ध स्वरूप को भूलकर इन्द्रिय, मन और बाह्य पदार्थों को अपना मानती है, वही बहिरात्मा है और जो इन इन्द्रियों के विषयों आदि में आसक्त होकर उन से उत्पन्न कामनाओं को पूर्ण करने में ही अपने जीवन का यापन करते हैं, एवं उसी में भ्रान्तिवश सुख का अनुभव करते हैं, वस्तुतः यह व्यक्ति की

---

[2] मोक्खपाहुड – 5, 8, 10, 11

[3] त्रिविध आत्मा की अवधारणा – साध्वी प्रियलताश्री, पृ. 179

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तनाववयुक्त अवस्था ही होती है। तनाववयुक्त व्यक्ति स्वयं भी दुःखी रहता है व दूसरों को भी दुःख (तनाव) देता है।[4]

जैनधर्म में इन्द्रियादि की भोगाकांक्षा ही संसार–चक्र का कारण है[5] और यह संसार ही दुःख (तनाव) की खान है। तनावमुक्ति के लिए संसार–सागर को पार करना होगा, किन्तु बहिरात्मा संसार में ही आसक्त होती है और जो संसार में ही आसक्त है वह कभी तनावमुक्त नहीं हो सकता। विषयातुर मनुष्य अपने भोगों के लिए संसार में वैर (तनाव) बढ़ाता रहता है।[6] उत्तराध्ययनसूत्र में लिखा है कि सभी काम–भोग अन्ततः दुःखावह (दुःखद) ही होते हैं।[7] जो व्यक्ति बाह्य–पदार्थों में अपनेपन का आरोपण करता है, जो अपना नहीं है, उसे अपना मानता है वह तनावग्रस्त हो जाता है, क्योंकि जैनदर्शन के अनुसार आत्मा के सिवाय सभी बाह्य वस्तुएँ नश्वर हैं, नष्ट होने वाली हैं और जब किसी प्रिय वस्तु या व्यक्ति के नष्ट होने का बोध होता है तो व्यक्ति के मन को आघात पहुंचता है और वह दुःखी हो जाता है, या तनावग्रस्त बन जाता है।

व्यक्ति की दैहिक वासना कभी शांत नहीं होती। वह वासनाओं की पूर्ति हेतु स्व को भूलकर पर–पदार्थों में ममत्व बुद्धि का आरोपण करता है और उनको ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य मानता है। वस्तुतः ये वासनाएँ ही व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाती हैं।

वासनाओं की पूर्ति एक ऐसा लक्ष्य है जो कभी पूर्ण नहीं किया जा सकता, क्योंकि एक इच्छा पूर्ति होते ही दूसरी इच्छा या कामना जन्म ले लेती है। व्यक्ति इन वासनाओं के जाल में इतना मग्न हो जाता है कि उसे आत्मा के स्वरूप का भान ही नहीं रहता है। वह शरीर और शारीरिक मांगों की पूर्ति को ही सर्वस्व मान लेता है। हम यहाँ तक भी कह सकते हैं कि वह देह और आत्मा

---

[4] आतुरा परितावेति – आचारांगसूत्र – 1/1/6

[5] जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे – आचारांगसूत्र – 1/1/5

[6] वेरं वड्ढेइ अप्पणो – आचारांगसूत्र, 1/2/5

[7] सव्वे कामा दुहावहा – उत्तराध्ययनसूत्र, 13/16

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को एक ही मानता है। दैहिक सुख--सुविधा को ही आत्मसुख मान लेता है। ऐसी मिथ्यादृष्टि रखने वाला व्यक्ति तनावयुक्त अवस्था को प्राप्त होता है और जो भी तनावयुक्त अवस्था को प्राप्त होता है, वह बहिरात्मा है, क्योंकि जैनाचार्यों के अनुसार जो सम्यक्दृष्टि नहीं है वह बहिरात्मा है। 'कुन्दकुन्द की दृष्टि में जिस आत्मा की सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन एवं सम्यक्चारित्र -- इन रत्नत्रय की साधना में श्रद्धा नहीं होती, वह बहिरात्मा है।'[8] योगिन्दुदेव बहिरात्मा के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि --जो रागादिभाव हैं, वे कषायरूप हैं और जब तक अनन्तानुबन्धी कषाय का उदय रहता है, तब तक व्यक्ति मिथ्यादृष्टि होता है। मिथ्यादृष्टि ही बहिरात्मा है।'[9] यह मिथ्यादृष्टि ही व्यक्ति को तनावग्रस्त कर देती है। वस्तुतः जैन आचार्यों ने बहिरात्मा के जो लक्षण कहें हैं, मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि में वही तनाव के मुख्य कारण हैं।

अन्तरात्मा एवं तनावमुक्ति का प्रयास --अन्तरात्मा आत्मा की वह अवस्था है, जिसमें व्यक्ति साधक बन जाता है और पूर्णतः तनावमुक्ति के लिए प्रयत्न करने लगता है। अन्तर्मुखी आत्मा देहात्म बुद्धि से रहित होता है, क्योंकि वह आत्मा और शरीर अर्थात् स्व और पर की भिन्नता को भेदविज्ञान के द्वारा जान लेता है।[10] जो बहिर्मुख आत्मा है वह बहिरात्मा है और इसके विपरीत जो बहिर्मुखता से विमुख आत्मा है, वही अन्तरात्मा है। बहिरात्मा के लक्षण ही तनाव के मुख्य कारण हैं तो अन्तरात्मा बनना ही तनावमुक्ति का हेतु है।

समयसार नाटक (साध्यसाधक द्वार) में लिखा है कि जिसके हृदय में मिथ्यात्वरूपी अन्धकार का नाश हो गया है, जिनकी मोह--निद्रा समाप्त हो गई है, जो संसार दशा से विरक्त हो गए हैं, वे ही आत्माएँ अन्तरात्मा है।[11] यह

---

[8] नियमसार, गाथा-- 149, 150

[9] परमात्मप्रकाश -- 2/41

[10] मोक्खपाहुड -- 5, 9

[11] समयसार नाटक -- बनारसीदासजी, 4

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्तरात्मा ही तनावमुक्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। जो आत्मा शरीरादि बाह्य पदार्थों में आसक्त नहीं होती है अथवा संसार में रहते हुए भी अलिप्त भाव से रहती है वही अन्तरात्मा होती है। ऐसी ही आत्मा तनाव के कारणों को समझकर तनावमुक्ति का अनुभव करने लगता है। उसे इस बात का अनुभव होने लगता है कि बहिरात्मा या बहिरात्म भाव होने के कारण ही वह तनाव में है, तब वह तनावों से मुक्ति पाने का प्रयत्न करने लगता है। जैनदर्शन की भाषा में कहें तो आत्मा की इस दूसरी अवस्था में व्यक्ति साधक बन जाता है और साधना के द्वारा परमात्मा अर्थात् पूर्णतः तनावमुक्त अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न करने लगता है। इस अवस्था में साधक सम्यग्दृष्टि होता है। वह 'स्व' तथा 'पर' के भेद को जानता है। वह सत्यता को समझता है व उसके अनुरूप ही अपना आचरण करता है अर्थात् पर पदार्थों पर रागादि भाव नहीं रखता है।

तनाव का मुख्य कारण दुःख है और दुःख का कारण, इच्छाओं या आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं होना है। शरीर, इन्द्रियों एवं मन की मांगे पूरी नहीं होने पर जो दुःख होता है, या उनकी पूर्ति करते समय जो बाधाएँ उत्पन्न होती हैं, वे ही तनाव की स्थिति होती हैं। अन्तरात्मा ऐसी स्थिति में दुःख नही करती, अपितु दुःख के निराकरण हेतु साधना करती है। वह समझती है कि इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं, इसलिए इन्द्रियादि की, इच्छाओं की पूर्ति नहीं करके उनका शमन कर देती है। ध्यानदीपिका–चतुष्पदी में भी यही वर्णित है कि –"अन्तरात्मा वही होती है जो इन्द्रिय–विषयों के राग–द्वेष का त्याग करती हैं।"[12] अन्तरात्मा के स्वरूप व लक्षणों को स्पष्ट करते हुए आचार्य कुन्दकुन्ददेव मोक्षप्राभृत में लिखते हैं –"जिसने भेदविज्ञान के द्वारा स्व–पर और आत्म–अनात्म का विवेक उपलब्ध कर लिया है, वही अन्तरात्मा है।"[13] स्व और पर का भेद समझने पर व्यक्ति सम्यग्दृष्टि हो जाता है और 'पर पदार्थों' से मोह हटाकर स्व

---

[12] ध्यान–दीपिका चतुष्पदी – 4/8/3–6

[13] "णियदेहसरिस्सं पिच्छिऊण परतिग्गहं पयत्तेण
अच्चेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभाएणं।।9।। मोक्षप्राभृतम्

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में रमण करता है। जैनदर्शन में कर्म–बंध का कारण मोहनीय कर्म को माना गया है और यही मोहनीय कर्म तनावग्रस्तता का कारण भी है। वस्तुतः अन्तरात्मा को चारित्रमोहनीय कर्म का उदय विद्यमान रहने से वह विषयोपभोग में प्रवृत्ति तो करता है, किन्तु उसमें लिप्त या आसक्त नहीं होता। अन्तरात्मा संसार में रहकर सांसारिक कार्यों से विरक्त होकर तप–संयम को ग्रहण करती है और पूर्व कर्मों की निर्जरा व नये कर्मों का संवर करती हुई चार घातीकर्म का क्षय करके परमात्मा हो जाती है।

व्यक्ति के अंदर वासना और विवेक दोनों ही विद्यमान रहते हैं। वासनाएँ तनाव उत्पन्न करती हैं तो विवेक वासनाओं को शांत करने का प्रयत्न करता है। ये वासनाएँ ही व्यक्ति में कषायादि प्रवृत्तियाँ लाती हैं। कषायरूपी आत्मा का चित्त कभी भी शांत नहीं रहता। अन्तरात्मा वह होती है, जिसमें वासनाओं और कषायों का पूर्णतः अभाव होता है, उसमें विवेक जागृत हो जाता है, जो व्यक्ति को तनावमुक्ति के लिए अग्रसर करता है। तनावमुक्त व्यक्ति सदैव यही प्रयत्न करता है कि उसे कभी तनावग्रस्तता का अनुभव नहीं हो, इसलिए वह तनावमुक्त अवस्था के हेतु प्रयत्न करता रहता है। वह यही चाहता है कि वह पूर्णतः तनावमुक्त हो जाए और कभी तनावग्रस्त न रहे।

अन्तरात्मा भी वही होती है, जो परमात्म स्वरूप की उपलब्धि में सतत् रूप से साधनारत् रहती है। विवेकयुक्त आत्मा राग–द्वेष से ग्रस्त नहीं होता। जहाँ राग–द्वेष नहीं, वहाँ सुख–दुःख या संयोग–वियोग में हर्ष–विषाद भी नहीं होता है और ऐसा व्यक्ति तनावमुक्त होता है।

परमात्मा का स्वरूप व तनावमुक्ति – त्रिविध आत्मा में अंतिम आत्मा को परमात्मा कहा गया है। आत्मा की यही तीसरी अवस्था पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है। प्रारम्भ में ही कहा गया है कि पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था ही मोक्ष की अवस्था है। जैनदर्शन के अनुसार परमात्मा इच्छा–आकांक्षा, राग–द्वेष से रहित होते हैं। अन्तरात्मा में व्यक्ति साधक होता है और परमात्म–स्वरूप की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्धि के लिए साधना करता है। यही परमात्म स्वरूप की उपलब्धि पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है, क्योंकि यह वीतराग दशा है।

जैनदर्शन में त्रिविध आत्मा की जो अवधारणा दी गई है, वे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से तनाव, तनावमुक्ति के प्रयास एवं तनावमुक्ति की अवस्थाएँ हैं। जो व्यक्ति तनावयुक्त है, वह बहिरात्मा है, जो तनाव के कारणों को समझकर उसके निराकरण का प्रयास करता है वह अन्तरात्मा की अवस्था में आ जाता है। इसी क्रम में जब अन्तरात्मा तनावों के कारणों का निराकरण कर उन्हें पुनः उत्पन्न नहीं होने देता है तो वही परमात्मा बनने का प्रयास होता है और यही प्रयास सफल होने पर पूर्णतः तनावमुक्त परमात्म–अवस्था प्राप्त होती है।

त्रिविध चेतना और तनाव

जैनदर्शन में आत्मा की सक्रिय स्थिति को चेतना कहा गया है। जैन आचार्यों ने इसे भी तीन भागों में बांटा हैं[14]

1. ज्ञान–चेतना, 2. कर्म–चेतना, और 3. कर्म–फल–चेतना

ज्ञान–चेतना एवं तनावमुक्ति :

ज्ञानचेतना का तात्पर्य होने वाली विविध संवेदनाओं की अनुभूति है। यह चेतना श्वास प्रेक्षा से लेकर शरीर की संवेदनाओं की चेतना तक मानी जा सकती है। इसमें विविध प्रकार के संवेदन होतें हैं, इनको देखा जाता है या उनकी प्रेक्षा की जाती है। चेतन शरीर का जब बाह्य जगत से इन्द्रियों के माध्यम से सम्पर्क होता है तो उसके परिणामस्वरूप उसमें विविध प्रकार की संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। उन संवेदनाओं के प्रति सजगता ही ज्ञान चेतना है। जब व्यक्ति में संवेदनाओं के प्रति सजगता आती है तो वह तनाव को उत्पन्न

---

[14] अ) प्रवचनसार, गाथा– 123–125

ब) "ज्ञानाऽस्या चेतना बोध ; कर्माख्याद्विष्टरक्ता।
जन्तोः कर्मफलाऽख्या, सा वेदना व्यपदिश्यते।। – अध्यात्मसार, आत्मनिश्चयाधिकार –45

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करने वाली स्थिति को वहीं रोक देता है और शुद्ध स्वभाव में परिणमन करने लगता है। यह शुद्ध स्वभाव ही तनावमुक्ति की अवस्था है।

कर्मचेतना एवं तनाव –

जब विभिन्न प्रकार के पदार्थ इन्द्रियों के सम्पर्क में आते हैं, तो उनके निमित्त से अनेक प्रकार की अनुभूति या संवेदनाएं जन्म लेती हैं। इन संवेदनाओं और अनुभूतियों को सजगता पूर्वक अनुभव करना या देखना ज्ञान चेतना है, किन्तु जब इन अनुभूतियों के प्रति अनुकूलता या प्रतिकूलता का भाव जागृत होता है तो उन्हें पाने या दूर करने की इच्छा का जन्म होता है। यह इच्छा या संकल्प ही कर्मचेतना कही जाती है। इसके अन्तर्गत ऐसा हो, ऐसा न हो, यह मिले, यह न मिले, इसका पुनः–पुनः संवेदन हो, इसका संवेदन कभी न हो, आदि चित्तवृत्तियाँ होती हैं। ये ही कर्मचेतना कहलाती हैं। वस्तुतः ज्ञान चेतना प्राणी के बंधन का कारण नहीं होती, किन्तु जब वह ज्ञान–चेतना, इच्छा या आकांक्षा का रूप ले लेती है तो वह कर्म चेतना बन जाती है। यह कर्म चेतना विकल्प रूप होने के कारण बंधन का हेतु होती है। जो बंधन का हेतु है, वही तनाव का भी हेतु है। इस प्रकार ज्ञान चेतना विशुद्ध आत्म चेतना है तो कर्मचेतना विकल्पित होने के कारण नए कर्म का बंध करती है। ज्ञान चेतना में मात्र इर्यापथिक आश्रव होता है, जबकि कर्म चेतना से साम्परायिक आश्रव होता है और यह साम्परायिक आश्रव ही कर्म बंध और तनावों का हेतु बनता है। कर्म चेतना तनाव को जन्म देती है। अतः यदि तनाव से मुक्त होना है तो हमें अपनी चेतना को ज्ञान चेतना तक ही सीमित रखना होगा। वह विशुद्ध अनुभूति मात्र रहे, उसके साथ इच्छाएँ, आकांक्षाएँ आदि के संकल्प विकल्प न जुड़े, क्योंकि संकल्प विकल्प ही तनावों के मूलभूत कारण हैं। अतः तनावमुक्ति के साधक को अनुभूति को शुद्ध रूप में देखना चाहिए। उनके साथ अनुकूल–प्रतिकूल, सुखद–दुःखद, अच्छा–बुरा ऐसे विकल्प नहीं जोड़ना चाहिए। संकल्प–विकल्पों से मुक्त शुद्ध अनुभूतियों की चेतना तनावमुक्त चेतना है तो उन अनुभूतियों से उत्पन्न

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विकल्प की चेतना कर्म–चेतना हो जाती है। इसे तनावग्रस्त चेतना भी कह सकते हैं। यह कर्मचेतना ही नवीन आश्रवों को जन्म देती है और रागभाव या कषायभाव, जो तनाव के मूल हेतु हैं, के कारण बंध का भी हेतु बनती है।

कर्मफलचेतना एवं तनावमुक्ति –

व्यक्ति के जो भी पूर्व कर्म संस्कार होते हैं, उनसे उत्पन्न होने वाली अनुभूतियाँ कर्मफलचेतना कही जाती है। कर्म अनुभूतियों से जन्म लेते हैं, किन्तु जब पूर्व संस्कार से उत्पन्न अनुभूतियों में राग–द्वेष व कषाय का तत्त्व नहीं होता तो उनसे उत्पन्न होने वाली चेतना कर्मफल चेतना है। विविध कर्मों से उत्पन्न सुखद व दुःखद अनुभूति रूप यह कर्मफल चेतना ही कभी ज्ञान चेतना तक सीमित रहती है तो कभी कर्म चेतना के रूप में बदल जाती है, किन्तु जो साधक पूर्व कर्म संस्कारों के कारण उत्पन्न होने वाली इन अनुभूतियों में कोई नवीन संकल्प नहीं करता है। उन अनुभूतियों की अनुभूति मात्र करता है तो उसकी यह चेतना कर्मफलचेतना कही जाती है। जिस प्रकार ज्ञानचेतना मात्र अनुभूति है उसी प्रकार कर्मफलचेतना भी मात्र अनुभूति है। अनुभूति जब अपनी यथार्थ स्थिति में होती है और संकल्पों–विकल्पों से मुक्त होती है तो ऐसी अनुभूतियाँ कर्मफल चेतना होती है। इसी सम्बन्ध में श्रीमद् राजचन्द्र ने सद्गुरू के लक्षण बताते हुए कहा है कि जो कर्म के उदय में भी उनके प्रति संकल्प विकल्प न कर मात्र साक्षीभाव से जीता है, वही शुद्ध कर्मफल चेतना की अनुभूति से युक्त होता है। यह शुद्ध अनुभूति कर्मबंधन का हेतु नहीं है और इससे भी तनावों का सर्जन नहीं होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ज्ञानचेतना अबंधक है किन्तु कर्म चेतना बंधक है। जहाँ तक कर्मफलचेतना का सम्बन्ध है यदि साधक उसके प्रति संकल्प– विकल्प नहीं करता है तो यह कर्मफलचेतना अबंधक रहती है, किन्तु जब साधक कर्मफल चेतना की अवस्था में उन दुःखद अनुभूतियों के निराकरण या सुखद अनुभूतियों की प्राप्ति की इच्छा करता है, तो उसके साथ संकल्प जुड़

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाता है और वह कर्मचेतना बन जाती है। इस प्रकार ज्ञानचेतना या विशुद्ध अनुभूति तनावों का कारण नहीं होती, किन्तु उस अनुभूति की दशा में यदि चेतना राग–द्वेष से युक्त बनती है तो वह ज्ञानचेतना कर्मचेतना में बदल जाती है और इससे नियमतः तनाव उत्पन्न होते हैं। जहाँ तक कर्मफलचेतना का प्रश्न है, जब साधक निरपेक्ष होकर उसके प्रति द्रष्टाभाव रखता है, तब तक वह बंधक नहीं होता है और उससे तनाव भी उत्पन्न नहीं होता है। राग–द्वेष से युक्त कर्मफल चेतना की स्थिति नए कर्म चेतना को जन्म भी देती है और तनाव भी उत्पन्न करती है। इसी दृष्टि से समयसार नाटक में बनारसीदासजी ने कहा है कि –ज्ञानचेतना मुक्ति बीज है और कर्मचेतना संसार का बीज है। इन तीनों चेतनाओं में ज्ञानचेतना को परमात्मा, कर्मफल चेतना को अन्तरात्मा का और कर्मचेतना को बहिरात्मा का विशेष लक्षण कहा जा सकता है।[15] इसी आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि –व्यक्ति तनावमुक्त तभी होता है, जब ज्ञान–चेतना होती है, क्योंकि उसमें संकल्प–विकल्प नहीं होते, वह मात्र ज्ञाताभाव है, परमात्मदशा है। कर्मचेतना में कर्त्ताभाव होने के कारण तनावयुक्त अवस्था है, क्योंकि इसमें इच्छाएँ जाग्रत होती रहती हैं।

कर्मफलचेतना में संकल्प–विकल्प न होने पर वह अन्तरात्मा की अवस्था है, अर्थात् तनावमुक्ति के लिए प्रयास है। यद्यपि प्रत्येक साधक इन तीनों प्रकार की चेतनाओं में मात्र साक्षीभाव या द्रष्टाभाव रखे और संकल्प–विकल्प से युक्त न बने, तो ज्ञानचेतना और कर्मफलचेतना दोनों अबंधक रहती है, तनावों को जन्म नहीं देती है, अतः साधक को चाहिए कि वह ज्ञानचेतना और कर्मफलचेतना में मात्र साक्षीभाव से जीने का प्रयास करे और कर्मचेतना से बचे, तभी वह तनावों से मुक्त रह सकता है और तनावों से मुक्त रहकर नए कर्मों का बंध न करके एक दिन विशुद्ध ज्ञाता–द्रष्टा बन जाता है। यही तनावमुक्ति की शुद्ध अवस्था है।

---

[15] 'समयसार नाटक' – अधिकार 10, गा. 85, 86

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन में मन की अवस्थाएँ और तनाव –

भारतीय चिन्तन का एक सामान्य सिद्धान्त रहा है कि प्राणी कर्मों से बंधन को प्राप्त होता है और ज्ञान से मुक्ति को प्राप्त होता है, किन्तु ज्ञान और कर्म दोनों की जन्मभूमि मानव मन है और इसलिए यह कहा गया है कि –'मन ही मनुष्यों के बन्धन और मुक्ति का हेतु है।'[16] जैन कर्म सिद्धान्त यह मानता है कि मन से युक्त व्यक्ति ही घनीभूत कर्मों का बंध कर सकता है और मन से युक्त व्यक्ति ही मुक्ति को प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार मन ही मनुष्य के बंधन और मुक्ति का मूलभूत हेतु है। मन के विषय ही दुःख (तनाव) के हेतु होते हैं।[17] दूसरे शब्दों में कहें तो तनाव उत्पन्न भी मन से ही होता है और तनावों से मुक्ति भी मन से ही सम्भव है। उत्तराध्ययनसूत्र के तेईसवें अध्ययन में केशीस्वामी गौतम–स्वामी से पूछते हैं कि आप एक दुष्ट अश्व पर सवार हैं, वह आपको कुमार्ग पर क्यों नहीं ले जाता ? उत्तर में गौतम स्वामी कहते हैं[18] –

मणो साहस्सिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई।
तं सम्मं तु निगिण्हामि, धम्मसिक्खाइं कन्थगं।।

अर्थात् मैंने उस दुष्ट अश्व को सूत्र रूपी रस्सी से नियमन करना सीख लिया है, अतः वह मुझे कुमार्ग पर नहीं ले जाता। मैं धर्मशिक्षा रूपी लगाम से उस घोड़े को अच्छी तरह से वश में किए रहता हूँ। गीता में अर्जुन श्रीकृष्ण से कहता है कि –यह मन अत्यंत चंचल, विक्षोभ उत्पन्न करनेवाला और बड़ा बलवान है, इसका निरोध करना तो वायु को रोकने के समान अत्यन्त दुष्कर है।[19] कृष्ण कहते हैं – निस्संदेह मन का निग्रह कठिनता से होता है, फिर भी

---

[16] अ) मैत्राण्युपनिषद, 4/11
ब) ब्रह्मबिन्दूपनिषद्, 2

[17] उत्तराध्ययनसूत्र, 32/100

[18] उत्तराध्ययनसूत्र, 23/55

[19] गीता, 6/34

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास और वैराग्य के द्वारा इसका निग्रह सम्भव है।[20] आचार्य हेमचन्द्र कहते हैं कि --आँधी की तरह चंचल मन मुक्ति के इच्छुक एवं तप करने वाले मनुष्य को भी कहीं का कहीं ले जाकर पटक देता है। जो पुरुष मन का निरोध नहीं कर पाता, उसके कर्मों की अभिवृद्धि होती रहती है। अतएव जो मनुष्य तनावों से अपनी मुक्ति चाहते हैं, उन्हें समग्र विश्व में भटकने वाले लम्पट मन को रोकने का प्रयत्न करना चाहिए।[21]

यह निश्चय है कि सभी प्रकारों के तनावों का जन्मस्थान मन है, किन्तु अगर इस मन को सम्यक् प्रकार से नियंत्रित किया जाए तो यह विमुक्ति का मार्ग भी खोल देता है।

जैनदर्शन में हेमचन्द्राचार्य ने मन की चार अवस्थाएँ मानी हैं[22] –

1. विक्षिप्त मन, 2. यातायात मन, 3. श्लिष्ट मन और 4. सुलीन मन।

1. विक्षिप्त मन :– यह मन की चंचल अवस्था है, इसमें वह विषयों में भटकता रहता है। यह मन की अस्थिर अवस्था है। इस अवस्था में मानसिक शान्ति नहीं रहती है, क्योंकि यह सदैव ही विषयों के प्रति आसक्त बना रहता है। यह चित्त सदैव बाह्य पदार्थों से जुड़ा होता है, जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति तनावग्रस्त रहता है।

2. यातायात मन :– यह चित्त आवागमन से युक्त है, कभी वह बाहर जाता है, कभी अन्दर जाता है। जब वह बाहर से जुड़ता है तो तनावों को जन्म देता है और जब वह अंतर्मन से जुड़ता है तो वह तनावों से मुक्ति की ओर जाता है, किन्तु पूर्वाभ्यास के कारण वह पुनः संकल्प–विकल्प में उलझ जाता है। जब–जब वह स्थिर होता है तनावमुक्ति का अनुभव करता है और जब–जब बाहर की ओर दौड़ता है, तनावयुक्त होता है।

---

[20] वही, 6/35

[21] योगशास्त्र, 4/36–39

[22] योगशास्त्र – 12/2

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3. **श्लिष्ट मन** – यह मन की तनावमुक्त अवस्था है, क्योंकि यह मन स्थिर होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो यह चित्त की अन्तर्मुखी अवस्था है। इस अवस्था में तनावों की उत्पत्ति नहीं होती। इसमें तनाव का अभाव होता है। मन का स्वभाव चंचलता है, वह बाहर जाता तो है, किन्तु साधक उसे स्थिर बनाए रखता है। इस स्थिरता में शांति का अनुभव होता है और साधक पूर्णतः तनावमुक्ति के लिए प्रयत्नशील होता है।

4. **सुलीन मन** – यह पूर्णतः शांति व तनावमुक्ति की अवस्था है, जिसमें संकल्प–विकल्प एवं मानसिक वृत्तियों का लय हो जाता है। इस अवस्था में तनाव उत्पन्न करने वाली सभी वासनाओं का विलय हो जाता है। यह परमानन्द की अवस्था है।

इस प्रकार मन की जो चार अवस्थाएँ हैं, उनमें प्रथम दो अवस्थाएँ तनावयुक्त अवस्थाएँ हैं, तीसरी तनावों को समाप्त करने की होती है और चौथी में तनाव समाप्त हो जाता है।

उत्तराध्ययनसूत्र में महावीर कहते हैं कि –मन के संयमन से एकाग्रता आती है, जिससे साधक तनावमुक्ति की दिशा में अग्रसर होता जाता है।

राग व द्वेष तनाव के मूलभूत हेतु –

संसार में दो तरह के पदार्थ हैं। एक चेतन (जीव) और दूसरा अचेतन (अजीव)। चेतन पदार्थ वे होते हैं, जिन्हें सुख–दुःख की संवेदनाएँ होती है और अजीव तत्त्व में अनुभव करने की या जानने की शक्ति नहीं होती और न उसे सुख–दुःख की वेदना होती है। वस्तुतः सभी जीवों के सुख–दुःख को अनुभव करने की क्षमता अलग–अलग होती है। जीव–जाति की अपेक्षा एक होते हुए भी व्यक्तित्त्व की अपेक्षा सब अलग–अलग हैं। सभी जीवों में तनावमुक्त होने की उत्कृष्ट संभावना विद्यमान है। जैन शब्दावली में कहें तो प्रत्येक भव्य जीव में परमात्मा बनने की क्षमता है। जीव का परमात्म अवस्था अर्थात् तनावमुक्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवस्था की ओर अग्रसर होने का सहज स्वभाव है। तनावमुक्त होना अथवा तनावग्रस्त होना, दोनों ही व्यक्ति के स्वयं के पुरुषार्थ पर निर्भर करता है। यह जान लेना जरूरी है कि मनुष्य जीवन ही वह विशेष स्थिति है, जहाँ से जीव आत्मोन्नति कर मोक्ष अर्थात् तनावमुक्त दशा प्राप्त कर सकता है अथवा आत्म–अवनति की ओर अग्रसर हो नारकीय जीवन जीने के लिए विवश हो सकता है।

मनुष्य में आत्मोन्नति की उत्कृष्ट संभावना निहित है, फिर भी हम देखते हैं कि व्यक्ति दुःखी है, तनावयुक्त है। विश्व का प्रत्येक प्राणी सुखी होना चाहता है, उसके सभी प्रयत्न सुख–प्राप्ति के लिए ही होते हैं, किन्तु सुख प्राप्ति के सम्यक् मार्ग से अनजान होने के कारण उसके प्रयत्न सम्यक् दिशा नहीं होते हैं, जिसके फलस्वरूप वह तनावग्रस्त हो जाता है। जैनधर्म के अनुसार व्यक्ति में तनाव का कारण यही है कि वह सम्यक् सोच को छोड़, राग–द्वेष को ही तनावमुक्ति का मार्ग समझ लेता है। वस्तुतः तनाव का मुख्य कारण राग–द्वेष ही हैं बन्धन के दो प्रकार हैं – प्रेम (राग) का बन्धन और द्वेष का बंधन, जो निषेध रूप होता है।[23] राग और द्वेष, ये दो कर्म के बीज हैं। कर्म मोह से उत्पन्न होता है। कर्म ही जन्म–मरण का मूल है और जन्म–मरण ही वस्तुतः दुःख हैं।[24] देवताओं सहित समग्र संसार में जो भी दुःख (तनाव) हैं, वे सब कामासक्ति के कारण ही हैं।[25] कामासक्ति को हम राग कह सकते हैं। मन एवं इन्द्रियों के विषय, रागी आत्मा को ही दुःख के हेतु होते हैं।[26]

कामभोग–शब्दादि विषय न तो स्वयं में समता के कारण होते हैं और न विकृति के ही, किन्तु जो उनमें द्वेष या राग करता है, वह उनमें मोह से

---

[23] दुविहे बंधे –पेज्जबंधे चे दोसबंधे चेव। – स्थानांगसूत्र – 2/4

[24] उत्तराध्ययनसूत्र – 32/7

[25] उत्तराध्ययनसूत्र – 32/19

[26] वही – 32/100

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राग–द्वेष रूप विकार को उत्पन्न करता है।[27] समयसार में भी आचार्य कुन्दकुन्द लिखते हैं कि –"रत्तो बंधदि कम्मं", अर्थात् जीव रागयुक्त होकर कर्म बांधता है।[28] आगे लिखते हैं –"ण य वत्थुदो दु बंधो, अज्झवसाणेण बंधोत्थि", कर्म बंध वस्तु में नहीं, राग और द्वेष के अध्यवसाय–संकल्प से होता है।[29] राग की जैसी मंद, मध्यम और तीव्र मात्रा होती है, उसी के अनुसार मंद, मध्यम और तीव्र कर्मबंध होते हैं।[30] दूसरे शब्दों में कहें तो तनाव स्तर इसी पर आधारित होता है।

उपर्युक्त आधारों पर हम यह कह सकते हैं कि तनाव का मुख्य कारण राग–द्वेष ही हैं वस्तुतः जैनधर्म के अनुसार जो कर्मबंध के या दुःख के कारण हैं, मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से वे ही तनाव के हेतु हैं।

राग व द्वेष दोनों ही जीवन रूपी सिक्के के दो पहलु हैं। जहाँ राग है, वहाँ द्वेष है और ये दोनों ही जीवन की सुख–शांति को भंग करते रहते हैं। प्रत्येक जीव में राग–द्वेष पाये जाते हैं। जो वस्तु हमें प्रिय लगती है उस पर राग और अप्रिय पर द्वेष के कारण व्यक्ति स्वयं को तनावग्रस्त बना लेता है। आज व्यक्ति ही क्या, अपितु पूरा विश्व ही तनावों से ग्रस्त है। इसका मुख्य कारण राग–द्वेष ही है। राग दृष्टि व्यक्ति को इसलिए तनावयुक्त बनाती है, क्योंकि उसमें किसी भी वस्तु या व्यक्ति की प्राप्ति की चाह या ममत्त्व–भाव उत्पन्न होते हैं। वह प्रिय को पकड़कर रखना चाहता है और जब तक व्यक्ति 'स्व' को विस्मृत कर 'पर' को पकड़ना चाहता है, वह तनावरहित नहीं हो सकता, क्योंकि उसे सदैव प्रिय के वियोग की चिंता या भय रहेगा और उसे खोने पर दुःख होगा। इसलिए जहाँ चाह है, वहाँ तनाव है। अगर नाविक कहे कि किनारा नहीं छोड़ूंगा, तो वह कभी भी नदी पार नहीं कर सकता है, उसी

---

[27] वही – 32/101

[28] समयसार – 150

[29] वही – 265

[30] जतिभागगया मत्ता, रागादीणं तहा चयो कम्मे – (अ) नि.भा. 5164 (ब) बृह.भा. 2515

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तरह तनावरहित होने के लिए तो ममत्त्ववृत्ति छोड़ना ही पड़ेगी, क्योंकि ममता में चाह है। जहाँ चाह है, वहाँ चिन्ता है और जहाँ चिन्ता है, वहाँ तनाव है। अतः राग–द्वेष के सर्वथा क्षय होने से ही जीव एकान्तरूप या तनावमुक्त अवस्था को प्राप्त करता है। **'मुंचदि जीवो विरागसंपत्तो'**, जीव राग से विरक्त होकर कर्मों (तनाव) से मुक्त होता है।[31]

जिसका राग जितना ज्यादा होगा वह उतना ही दुःखी और तनावग्रस्त रहेगा। ऐसे व्यक्ति के, जो भी कार्य होते हैं, वे पाप–रूप ही होते हैं। पर के प्रति ममत्ववृत्ति या अपनेपन का भाव ही मिथ्यादृष्टि है, नासमझी है और यह मिथ्यादृष्टि या गलत समझ ही तनाव पैदा करती है। रागयुक्त व्यक्ति अपने दुःख (तनाव) से मुक्त होने के लिए क्या--क्या नहीं करता, फिर भी तनावमुक्त नहीं हो पाता, क्योंकि उसकी राग–द्वेष की वृत्ति समाप्त नहीं होती है। यद्यपि यह कहा जाता है कि कामना पूरी होने पर व्यक्ति कुछ समय के लिए स्वयं को तनावमुक्त अनुभव कर लेता है, किन्तु सदैव के लिए तनावमुक्त नहीं होता, क्योंकि उसकी कामनाएँ (इच्छाएँ) सदैव ही अपूर्ण रहती हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है –**"इच्छा हु आगाससमा अणंतिया"**, इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं।[32] इसलिए व्यक्ति इच्छाओं को कम करे व जो प्रिय मिला है, उस पर न राग करे न ही अप्रिय पर द्वेष करे, क्योंकि अत्यन्त तिरस्कृत समर्थ शत्रु भी उतनी हानि नहीं पहुंचाता, जितनी हानि अनिगृहीत राग–द्वेष पहुंचाते हैं।

कषाय चतुष्टय और तनाव

जैनदर्शन में मनोवृत्तियों के विषय में दो प्रमुख सिद्धांत हैं –1. कषाय–सिद्धांत, और 2. लेश्या–सिद्धान्त।

---

[31] समयसार – 150

[32] उत्तराध्ययनसूत्र – 9/36

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषाय–सिद्धान्त में तनाव उत्पन्न करने वाली अशुभ मनोवृत्तियों का प्रतिपादन है, जबकि लेश्या–सिद्धान्त का सम्बन्ध तनाव उत्पन्न करने वाले और तनावमुक्ति की दिशा में ले जाने वाले भावों, दोनों से है। यहाँ हम कषायों के स्वरूप एवं तनाव से उनके सह–सम्बन्ध के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

कषाय मात्र किसी वस्तु या व्यक्ति के प्रति आसक्ति नहीं है। कषाय वे प्रवृत्तियाँ हैं जो 'पर' पर ममत्व बुद्धि से, व्यक्ति के चित्त में उत्पन्न अशुभ भावों के रूप में होती हैं, इसलिए इन्हें अशुभ चित्तवृत्ति कहा जाता है। कषायवृत्ति तनाव का हेतु है, अधोगति में ले जाने वाली है। अतएव शान्ति मार्ग के पथिक साधक व्यक्ति के लिए कषाय का त्याग आवश्यक है। दशवैकालिकसूत्र में कहा गया है कि –अनिग्रहित क्रोध, मान, माया तथा लोभ --ये चार संसार बढ़ाने वाली कषायें पुनर्जन्म रूपी वृक्ष का सिंचन करती हैं। दुःख (तनाव) का कारण है, अतः शान्ति या तनावमुक्ति के लिए व्यक्ति उन्हें त्याग दे।"[33] 'कषाय' जैनदर्शन का पारिभाषिक शब्द है। बौद्ध और हिन्दू परम्परा में भी कषाय शब्द का प्रयोग अशुभ चित्तवृत्तियों के अर्थ में हुआ है।[34] कषाय शब्द की व्युत्पत्ति 'कष + आय' अर्थात् 'कण' धातु में 'आय' प्रत्यय से हुई है। कष का अर्थ 'कसना' अर्थात् बांधना और आय का अर्थ है 'लाभ' (*Income*) या प्राप्ति। जैनदर्शन के अनुसार कषाय शब्द का अर्थ है --वे चित्तवृत्तियां जिनसे कर्म का बंध होता है। दूसरे शब्दों में जो वृत्तियां कर्म बंध में या संसार परिभ्रमण में वृद्धि करें, वे कषाय हैं।

मनोवैज्ञानिकों की भाषा में कहें तो कषाय वे मनोभाव हैं, जो व्यक्ति की तनावग्रस्त अवस्था के सूचक हैं। हर व्यक्ति तनावमुक्ति चाहता है, किन्तु उसके मन में रहे हुए अशुभ मनोभाव (कषाय) उसे तनावमुक्त करने के विपरीत उसे तनावग्रस्त बना देते हैं।

---

[33] दशवैकालिकसूत्र – 8/40

[34] बौद्ध परम्परा मे --धम्मपद – 223, हिन्दू परम्परा में – छान्दोग्योपनिषद् – 7/26/2

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन में जहां कषाय को कर्म–बंध का हेतु एवं दुःख का कारण बताया है, वहीं मनोवैज्ञानिकों ने उसे तनावग्रस्तता का कारण बताया है।

तनाव का सम्बन्ध हमारे मन से है, किन्तु मन में ऐसा क्या है, जो व्यक्ति के जीवन को तनावयुक्त बना देता है ? मन का स्वभाव है, चंचलता और चंचलता का कारण है कषाय–वृत्तियां। कषाय वृत्तियों के चार स्तर कहे गए हैं –अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्जवलन। ये चार स्तर ही तनाव के भी स्तर हैं।

कषाय की चार वृत्तियाँ हैं –क्रोध (आवेश), मान (अहंकार), माया (कपटवृत्ति) और लोभ। ये कषाय की वृत्तियाँ राग–द्वेष से उत्पन्न होती हैं और मन विचलित कर देती हैं। कषाय रूपी वृत्तियाँ चित्त को कैसे विचलित करती हैं यह जानने से पूर्व हमें कषाय के प्रकारों को जानना होगा। स्थानांगसूत्र में स्पष्ट रूप से कहा है कि –पापकर्म (तनाव) की उत्पत्ति के दो स्थान हैं –राग–द्वेष। राग से लोभ का और लोभ से माया का जन्म होता है, दूसरी ओर द्वेष से क्रोध का और क्रोध से मान का जन्म होता है।[35]

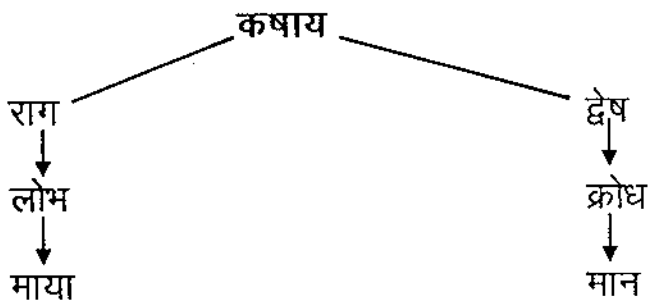

वैसे क्रोध का निमित्त लोभ और मान भी होते हैं। अहंकार पर चोट पड़ने पर या लोभ की पूर्ति में बाधा होने पर भी क्रोध आता है। इसी प्रकार मिथ्या अहंकार के पोषण हेतु भी मायाचार किया जाता है। अतः सापेक्ष रूप से इन चारों में अन्तः सम्बन्ध है।

---

[35] अ) स्थानांगसूत्र– 2/4

ब) नि.चू–132 माया –लोभेहिंतो रागो भवति। कोह – माणेहिंतो दोसो भवति।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राग–द्वेष तनाव के मूल कारण हैं और कषाये व्यक्ति की तनायुक्त स्थिति में वृद्धि करती हैं। कषाय से युक्त व्यक्ति तनावग्रस्त होता है और तनावग्रस्त व्यक्ति की सम्यक् बुद्धि अर्थात् विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है। वह तनावमुक्त होने के लिए भी कषाय की वृत्तियों का पोषण करने लगता है, तब व्यक्ति में कषाय की वृत्तियाँ अधिक बढ़ जाती हैं तो ये कषाय की वृत्तियाँ मन को चंचल या अस्थिर बना देती हैं मन की अस्थिरता तनाव का लक्षण है।

भगवतीसूत्र व कर्मग्रन्थों के आधार पर कषायों की चर्चा –

तनाव की उत्पत्ति के प्रमुख रूप में तीन कारण होते हैं –1. बाह्य परिस्थिति, 2. व्यक्ति की मनोवृत्ति और 3. बाह्य परिस्थिति और मनोभाव के संयोग से उत्पन्न चैत्तसिक अवस्थाएँ। इनमें बाह्य परिस्थितियाँ पूर्णतः व्यक्ति के अधिकार में नहीं होती हैं, अतः उनसे उत्पन्न तनावों का निराकरण तो उन परिस्थितियों के निवारण से ही सम्भव है और यह पूर्णतः व्यक्ति के अधिकार में नहीं है, किन्तु जहाँ तक मानसिक कारणों का प्रश्न है वे मूलतः इच्छाओं, आकांक्षाओं और अपेक्षाओं अथवा उनकी पूर्ति न होने के कारण होते हैं। इनके मूल में कहीं–न–कहीं क्रोध, मान, माया और लोभ की वृत्ति भी कार्य करती है। इसे भी यदि संक्षिप्त करके कहें, तो उनमें भी राग व द्वेष ये दो ही मूल कारण हैं। राग की उपस्थिति में द्वेष का जन्म होता है और राग व द्वेष की वृत्तियों से क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कंषाय जन्म लेती हैं ये कषायें ही मूलतः तनाव वृद्धि और लेश्या के कारण होती हैं। जैन धर्मदर्शन में इन कषायों को ही दुःख का मूलभूत कारण माना गया है। ये व्यक्ति की आध्यात्मिक क्षमताओं को क्षीण कर देती हैं और व्यक्ति तनावग्रस्त बन जाता है। अतः तनावों की इस विवेचना में कषायों के स्वरूप को समझना भी आवश्यक है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैन आगम साहित्य में कषायों की विस्तार से चर्चा भगवतीसूत्र और कर्म साहित्य के ग्रंथों में मिलती है। आगे इन दोनों ग्रन्थों के आधार पर उन्हें स्पष्ट करेंगे।

भगवतीसूत्र में कषायों की चर्चा एवं तनाव –

भगवतीसूत्र में कषायों की चर्चा करते हुए उनके विभिन्न पर्यायवाची नाम दिए गए हैं। उसमें चारों कषायों के पयार्यवाची नाम निम्नरूप से उपलब्ध होते हैं– भगवतीसूत्र में क्रोध के निम्न दस समानार्थक नाम दिए हैं[36] –

1. **क्रोध** – आवेग की उत्तेजनात्मक अवस्था क्रोध है।
2. **कोप** – क्रोध से उत्पन्न स्वभाव की चंचलता कोप है। यह चित्तवृत्ति प्रणय और ईर्ष्या से उत्पन्न होती है। भगवतीवृत्ति के अनुसार क्रोध के उदय को अधिक सघन अभिव्यक्ति न देकर उसे दीर्घकाल तक बनाए रखना कोप है।[37] इस अवस्था में व्यक्ति मन ही मन तनावग्रस्त होता जाता है।
3. **रोष** – शीघ्र शांत नहीं होने वाला क्रोध रोष है।[38] रोष आने पर व्यक्ति लम्बे समय तक तनावग्रस्त रहता है, क्योंकि इस अवस्था में क्रोधाभिव्यक्ति लम्बे समय तक बनी रहती है।
4. **दोष** – स्वयं पर या दूसरे पर दोष थोपना।[39] कुछ व्यक्ति क्रोध अवस्था में अपना दोष दूसरे पर थोपकर उसे भी तनावग्रस्त कर देते हैं।
5. **अक्षमा** – दूसरों के अपराध को सहन न करना अक्षमा है।[40] जैसे कोई धुले हुए कपड़ों पर पैर रखकर निकल जाए तो तुरन्त उसे थप्पड़ या

---

[36] भगवतीसूत्र, श. 12, उ. 5, सू.2

[37] भगवतीसूत्र, अभयदेवसूरि वृत्ति, श.12, उ.5, सू.2

[38] वही, अभयदेवसूरि वृत्ति, श.12, उ.5, सू.2

[39] वही,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाँटा मारने वाले कई अभिभावक होते हैं, जबकि यह बात प्रेम से भी समझाई जा सकती है।

6. **संज्वलन** – क्रोध से बार–बार आग–बबूला होना संज्जवलन है।[41] यहाँ संज्वलन का अर्थ संज्वलन–कषाय से भिन्न है।

7. **कलह** – क्रोध में अत्यधिक अनुचित शब्द या अनुचित भाषण करना कलह है। कलह से तनाव उत्पन्न होता है।

8. **चाण्डिक्य** – क्रोध में उग्र रूप धारण करना, सिर पीटना, बाल नोंचना, आत्महत्या करना क्रोध की परिस्थितियाँ चाण्डिक्य हैं। इस अवस्था में तनाव इतना अधिक बढ़ जाता है कि व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खो देता है।

9. **मण्डन** – दण्ड, शस्त्र आदि से युद्ध करना मंडन है।[42] क्रोध में आकर व्यक्ति दूसरे के प्राणों का हनन करने में तनिक भी संकोच नहीं करता है।

10. **विवाद** – परस्पर विरूद्ध वचनों का प्रयोग करते हुए उत्तेजित हो जाना विवाद है।

उपर्युक्त सभी प्रकार क्रोध के रूप ही हैं, क्योंकि क्रोध आने पर व्यक्तियों की अलग–अलग अभिव्यक्तियाँ होती हैं।

मान के विभिन्न रूपों का विवेचन इसी अध्याय में पूर्व में कर चुके हैं।

माया के विभिन्न रूप – भगवतीसूत्र में माया के पन्द्रह समानार्थक नाम देए गए हैं।[43] माया स्वयं को तो तनावग्रस्त करती ही है, इससे ज्यादा अधिक उस व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाती है, जिसको ठगा गया है या जिसके साथ

---

[0] वही,

[1] वही,

[2] वही,

[3] भगवतीसूत्र, श.12, उ.5, सू.4

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माया की गई है, धोखा दिया गया है। माया के ये निम्न पन्द्रह नाम हैं, जो माया के ही रूप हैं, और व्यक्ति को तनावग्रस्त करते हैं –

1. **माया**-- कपटाचार
2. **उपधि** – ठगने के उद्देश्य से व्यक्ति के निकट जाना।
3. **निकृति** – विश्वासघात करना।
4. **वलय** – वचन और व्यवहार में वलय के समान वक्रता हो।
5. **गहन** – ठगने के लिए अत्यन्त गूढ़ भाषण करना।
6. **न्यवम्** – नीचता का आश्रय लेकर ठगना।
7. **कल्क** – हिंसादि पाप भावों से ठगनां।
8. **कुरूक** – निन्दित व्यवहार करना।
9. **दम्भ** – शक्ति के अभाव में स्वयं को शक्तिमान मानना।
10. **कूट** – असत्य को सत्य बताना।
11. **जिम्ह** – ठगी के अभिप्राय से कुटिलता का आलम्बन लेना।
12. **किल्विषि** – माया से प्रेरित होकर किल्विषी जैसी निम्न प्रवृत्ति करना।
13. **अनाचरणता** – ठगने के लिए अच्छा आचरण करना।
14. **गूहनता** – मुखौटा लगाकर ठगना।
15. **वंचनता** – छल–प्रपंच करना।

लोभ –

लोभ का तनाव से क्या सम्बन्ध है, यह हम इस अध्याय के पूर्व में बता चुके हैं। यहाँ हम भगवतीसूत्र के आधार पर लोभ के विभिन्न रूपों की चर्चा करेंगे जो भिन्न–भिन्न रूप में होकर व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भगवतीसूत्र की अभयदेवसूरि की वृत्ति के अनुसार लोभ के निम्न पयार्यवाचियों की व्याख्या की गई है[44] –

1. **लोभ** – मोहनीयकर्म के उदय से चित्त में उत्पन्न होने वाली संग्रह करने की वृत्ति लोभ है।

2. **इच्छा** – इष्ट की प्राप्ति की कामना, अभिलाषा या परद्रव्यों को पाने की चाह या भावना, इच्छा है।[45]

3. **मूर्च्छा** – तीव्र संग्रह–वृत्ति मूर्च्छा कहलाती है, अथवा पदार्थ के संरक्षण में होने वाला अनुबंध या, प्रकृष्ट मोहवृत्ति मूर्च्छा है।[46]

4. **कांक्षा** – अप्राप्त पदार्थ की आशंसा या जो नहीं है, भविष्य में उसे पाने की इच्छा कांक्षा है।[47]

5. **गृद्धि** – जो वस्तु प्राप्त हो गई है उस पर आसक्ति या उसके अभिरक्षण की वृत्ति गृद्धि कहलाती है।

6. **तृष्णा** – प्राप्त पदार्थों का व्यय या वियोग न होने की इच्छा तृष्णा है।

7. **भिध्या** – इष्ट वस्तु के खो जाने का भय या अमुक वस्तु कभी न खोए, ऐसी इच्छा भिध्या है।

8. **अभिध्या** – विषयों के प्रति होने वाली विरल एकाग्रता या निश्चय से डिग जाना अभिध्या है।

9. **आशंसना** – इच्छित वस्तु की प्राप्ति के लिए दिया जाने वाला आशीर्वाद आशंसना है।

---

[44] अहं भंते। लोभे, इच्छा, मुच्छा, कांखा, गेही, तण्हा, विज्झा, अभिज्झा, आसासणया, पत्थणया, लालप्पणया, कामासा, भोगासा, जीवियास, मरणासा, नंदिरागे.....। भगवतीसूत्र, श.12, उ.5, सू.106

[45] इच्छाभिलाषस्त्रैलोक्यविषयः। – तत्त्वार्थसूत्र भाष्यवृत्ति – 8/10

[46] मूर्च्छा प्रकर्षप्राप्ता मोहवृद्धिः। – तत्त्वार्थसूत्र भाष्यवृत्ति – 8/10

[47] भविष्यत्कालोपादानविषयाकांक्षा। ..... वही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

10. **प्रार्थना** – प्रार्थना करके मांगना, याचना करना अर्थात् इच्छित वस्तु के लिए याचना करना प्रार्थना है।

11. **लालपनता** – इष्ट वस्तु के न मिलने पर बार–बार प्रार्थना करना लालपनता है।

12. **कामाशा** – काम की इच्छा कामाशा है।

13. **भोगाशा** – कामाशा में शब्द एवं रूप की कामना होती है। गंध, रस, और स्पर्श से युक्त पदार्थों को भोगने की इच्छा भोगाशा है।

14. **जीविताशा** – जीवित रहने की जो इच्छा बनी रहे वह जीविताशा है। जीवित रहने की यह इच्छा अन्तकाल तक बनी रहती है। जीवित रहने की यह इच्छा ही जीविताशा है।

लोभ का आधार इच्छा है और इच्छा या आकांक्षा ही तनाव उत्पत्ति का कारण है।

उपर्युक्त चार कषाय का विवेचन भगवतीसूत्र में इसी दृष्टि से किया है कि ये कषायों के विभिन्न रूप हैं, इनमें से किसी भी रूप को अपनाने से दुःख मिलता है और ये सभी तनाव उत्पत्ति के कारक तत्त्व हैं।

कर्मग्रन्थ में कषाय का स्वरूप –

कर्मग्रंथ में कषाय को चारित्रमोहनीय का भेद कहा है। चारित्रमोहनीय के दो भेद कषाय मोहनीय व नो कषायमोहनीय है। उनमें से कषाय मोहनीय के अनन्तानुबन्धी आदि सोलह और नोकषायमोहनीय के नौ भेद कहे गए हैं।[48] अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन। इनके क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार–चार भेदों का विस्तार से विवेचन इसी अध्याय में पहले कर चुके हैं, अतः इनके विस्तार में न जाकर यहाँ हम नौ कषायों की चर्चा करेंगे।

---

[48] कर्मग्रंथ भाग–1, गा.17, मुनि श्री मिश्रीमल जी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समवायांगसूत्र[49], विशेषावश्यकभाष्य[50] आदि में भी कषाय के चार प्रकार बताए हैं – क्रोध, मान, माया, लोभ। ये चार प्रधान कषाय हैं और इन प्रधान कषायों के सहचारी भाव अथवा उनकी सहयोगी मनोवृत्तियाँ नोकषाय कही जाती हैं। यह भी कह सकते हैं कि ये कषाय के कारण एवं परिणाम दोनों हैं। नोकषाय से कषाय उत्पन्न होते हैं। कषाय की उत्पत्ति के कारण जिन नोकषाय को कहा गया है, वे निम्न हैं[51]–

1. **हास्य** – सुख की अभिव्यक्ति हास्य है। यह मान का कारण है। जब अहंकार बढ़ जाता है तो दूसरों पर हँसी आती है और इस अहंकार से क्रोध भी उत्पन्न हो जाता है।

2. **शोक** – इष्ट वियोग और अनिष्टयोग से सामान्य व्यक्ति में जो मनोभाव जाग्रत होते हैं, वे शोक कहे जाते हैं।[52] जिस वस्तु या व्यक्ति की हमें चाह हो और वह नहीं मिले तो हम दुःखी हो जाते हैं, और जिस व्यक्ति, वस्तु की चाह नहीं है और मजबूरी में हमें उसे ग्रहण करना पड़े तो भी हमें दुःख का अनुभव होता है और यही शोक हमें तनाव में ले जाता है। यह भी क्रोध का कारण है।

3. **रति** – इन्द्रिय–विषयों में चित्त की अभिरतता ही रति है। वर्त्तमान युग में अधिकतर लोग इन्द्रियों के वश में होते हैं, जो इन्द्रियों की रूचि है, वही मिलने की चाह करते हैं। इन्द्रियों के विषयों की जब पूर्ति नहीं होती तो हम तनाव में घिर जाते हैं और इन्द्रियों की जरूरत को पूरा करने के लिए कुछ भी करने को तत्पर हो जाते हैं, फिर चाहे उससे हानि ही क्यों न उठानी पड़े। रति के कारण ही आसक्ति व लोभ की भावनाएँ प्रबल होती हैं।

---

[49] समवाओ / समवाय –4 / सूत्र–1

[50] विशेषावश्यकभाष्य, गाथा–2985

[51] कर्मग्रंथ –भाग–1, गाथा 21–22

[52] विशेषावश्यकभाष्य, गाथा–2985

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

4. **अरति** – यह नोकषाय रति का विपरीत है। इन्द्रिय–विषयों में अरूचि ही अरति है। अरूचि का भाव ही विकसित होकर घृणा और द्वेष बनता है।

5. **घृणा या जुगुप्सा** – अरूचि का ही विकसित रूप घृणा है। जब कोई वस्तु या व्यक्ति अरूचिकर लगता है, तो वह अरति होता है, किन्तु जब किसी वस्तु से नफरत सी हो जाती है, तो वह घृणा या जुगुप्सा होती है। जुगुप्सा हमारे मन–मस्तिष्क में होती है और हमारे मानसिक संतुलन को बिगाड़ देती है और मानसिक संतुलन बिगड़ना अर्थात् तनाव का पैदा होना है। यह भी क्रोध कषाय का कारण है।

6. **भय** – किसी वास्तविक या काल्पनिक तथ्य से आत्मरक्षा के निमित्त बच निकलने की प्रवृत्ति ही भय है। क्रोध के आवेग में आक्रमण का प्रयत्न होता है, किन्तु भय के आवेग में आत्मरक्षा का प्रयत्न होता है। भय भी एक प्रकार का तनाव है। जब तक मन में काल्पनिक भय या डर बना हुआ रहता है तब तक व्यक्ति किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर पाता और साथ ही अपना आत्मविश्वास खो देता है। एक हारा हुआ व्यक्ति तनाव में रहकर अपने जीवन को व्यर्थ ही गंवा देता है।

जैनागमों में भय सात प्रकार के कहे गए हैं। जैसे –

1. **इहलोक भय** – इसका अर्थ इस लोक या संसार से नहीं है। इसका अर्थ जाति से है, अर्थात् मनुष्यों के लिए मनुष्यों से उत्पन्न होने वाला भय।

2. **परलोक भय** – यहां परलोक से अर्थ स्वर्ग या नरक न होकर अन्य जाति या विजातियों से है। जैसे मनुष्य को पशुओं से भय।

3. **आदानभय** – जब कोई दूसरा हमें भावनात्मक दुःख देता है तब हम सबसे ज्यादा तनाव में रहने लगते हैं। दूसरों से मिलने वाले दुःख का भय ही आदान भय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

4. **अकस्मात् भय** – अकस्मात् का अर्थ होता है अचानक, अर्थात् जिसकी हमने कल्पना भी ना की हो, और अचानक कुछ हो जाए, उसे अकस्मात भय कहते हैं।

5. **आजीविका भय** – जीवन जीने में जो जरूरतें हैं, उनके खो देने या समाप्त होने का भय आजीविका भय है।

6. **मरणभय** – मृत्यु का भय मरणभय कहलाता है।

7. **अपयश भय** – हमारी मान–प्रतिष्ठा अथवा कीर्ति को ठेस पहुंचने का भय या अपमानित होने का भय अपयश भय है।

भय भी व्यक्ति में तनाव उत्पत्ति के मुख्य कारणों में से एक है। प्रश्नव्याकरण सूत्र में भी कहा है कि –**"भीतो अन्नं पि हु भेसेज्जा"** अर्थात् स्वयं डरा हुआ व्यक्ति दूसरों को भी डरा देता है।[53] **"भीतो अबितिज्जओ मणुस्सो। भीतो भूतेहिं घिप्पई, भीतो तवसंजमं पि हु मुएज्जा। भीतो य भरं न नित्थरेज्जा।"**[54] अर्थात् भयभीत मनुष्य किसी का सहायक नहीं हो सकता। भयाकुल व्यक्ति ही भूतों का शिकार होता है। भयभीत व्यक्ति तप और संयम की साधना छोड़ बैठता है। भयभीत व्यक्ति किसी भी गुरुतर दायित्व को नहीं निभा सकता है।

7. **स्त्रीवेद** – स्त्री की पुरुष के साथ रमण करने की जो इच्छा होती है, उसे स्त्रीवेद कहते हैं।

8. **पुरुषवेद** – पुरुष को स्त्री के साथ रमण करने की जो इच्छा होती है, उसे पुरुषवेद कहते हैं।

---

[53] प्रश्नव्याकरणसूत्र – 2/2

[54] वही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

9. **नपुंसकवेद** – स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करने की इच्छा को नपुंसकवेद कहते हैं।

उपर्युक्त तीनों वेदों के अभिलाषा रूपी भावों को क्रमशः करीषाग्नि, तृणाग्नि और नगरदाह के समान बताया गया है।[55] इन तीनों वेदों का सम्बन्ध कामवासना से है। इन वासनाओं के उदय में इनकी पूर्ति न होने पर तनाव की उत्पत्ति होती है। यद्यपि ये वासनाएँ शरीरजन्य हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध मनोवृत्तियों से भी है।

भगवतीसूत्र के इन चारों कषायों के इन पर्यायवाची नामों से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनमें से प्रत्येक कषाय का क्षेत्र अतिव्यापक है और ये विभिन्न रूपों में प्रकट होती हैं। इनके इन पर्यायवाची नामों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ये व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाने में प्रमुख रूप से कार्य करती हैं।

जहाँ तक कर्म साहित्य के ग्रन्थों का प्रश्न है, उनमें सोलह कषायों और नव नोकषायों को मोहकर्म का ही एक विभाग माना गया है। अनंतानुबंधी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन –ये कषायों के चार भेद तनाव के स्तर को भी सूचित करते हैं। कषाय के प्रकार और स्तर के आधार पर कर्म साहित्य के ग्रंथों में कर्म बंध की तीव्रता और मंदता का विचार किया गया है। जैन कर्म सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि कषायों की अवस्था जितनी तीव्र या मन्द होगी, उसी के आधार पर कर्मबंध भी तीव्र या मंद होगा अथवा दीर्घकालिक या अल्पकालिक होगा। इस प्रकार कषायों के स्तर को तनावों के स्तर के समान मान सकते हैं। चाहे कर्मों के बंध या उदय का प्रश्न हो, उनमें मुख्य रूप से कषायों का स्तर ही काम करता है। अतः जैन कर्म सिद्धांत का संक्षेप में निष्कर्ष यही है कि यदि तनावों से मुक्ति पाना है तो व्यक्ति को कषायों से मुक्त होना होगा।

---

[55] कर्मग्रंथ, भाग–1, गाथा –22

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषाय के विभिन्न प्रकारों या स्तरों का तनाव से सह–सम्बन्ध –

अनन्तानुबन्धी कषाय –

अनन्तानुबन्धी कषाय तनाव की वह प्रतिक्रिया युक्त तीव्रतम स्थिति है, जिसमें व्यक्ति तनावमुक्ति के बारे में सोच भी नहीं सकता है। वह मिथ्यादृष्टि से युक्त, घोर पापकर्म या दुष्ट प्रवृत्ति करने वाला अनन्तकाल तक संसार में भ्रमण करता है और सदैव तनावयुक्त बना रहता है। अनन्तानुबंधी कषाय का उदय होने पर व्यक्ति का तनाव स्तर अत्यधिक होता है। यह तनाव की वह स्थिति है, जिससे व्यक्ति आजीवन चिंतित एवं अशांत बना रहता है। निमित्त मिलने पर क्रोधादि की प्रवृत्ति बढ़ती जाती है और जैसे–जैसे कषाय की वृद्धि होती है प्रतिक्रियाएँ भी बढ़ती जाती है, और तनाव का स्तर भी बढ़ जाता है।

श्वेताम्बर ग्रन्थों में अनन्तानुबन्धी कषाय का काल जीवन–पर्यन्त बताया गया है अर्थात् व्यक्ति जीवन–पर्यन्त तनावग्रस्त रहता है।[56] अनन्तानुबन्धी का अर्थ है, जो अनन्तकाल से अनुबन्धित है अर्थात् जो अनन्तकाल तक संसार में भ्रमण का कारण है, वह अनन्तानुबन्धी कषाय है। अनन्तानुबन्धी कषाय एक बार उत्पन्न होने पर इतनी प्रगाढ़ होती है कि व्यक्ति को तीव्रतम तनाव से ग्रस्त बना देती है जिससे उभर पाना बहुत मुश्किल होता है। तनाव की यह स्थिति व्यक्ति के पागल होने की स्थिति है। जिस प्रकार एक चुम्बक के दो टुकड़े होने पर वह अलग दिशार्थी बन जाते हैं, अर्थात् कभी जुड़ नहीं सकते उसी प्रकार अनन्तानुबंधी कषाय युक्त व्यक्ति भी मिथ्यात्व दशा में ही सुख की या तनावमुक्ति की खोज करता है। वह दिशा ही बदल देता है और उसी ओर अग्रसर होता है, जहां मानसिक संतुलन का अभाव होता है। वह निरन्तर प्रतिक्रिया करता रहता है।

अनन्तानुबंधी कषाय वाला व्यक्ति अतृप्त कामना वाला होता है और जहाँ अतृप्त कामना होती है, वहां व्यक्ति में क्रोध, मान, माया और लोभ की प्रवृत्ति

---

[56] जावज्जीवाणुगमिणो – विशेष. गाथा–2992

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इतनी गहरी होती है कि उसकी दृष्टि सम्यक् होने में अनन्त भव लग जाते हैं। अनन्तानुबंधी कषायें सम्यक्दर्शन की विघातक होती हैं।[57]

तनाव के मुख्य कारणों में से एक कारण सुखों की अतृप्त कामना ही है और यह अतृप्त कामना ही अनन्तानुबन्धी कषाय है। व्यक्ति अपनी कामना को प्राप्त करने में बाधक तत्त्वों पर क्रोध करता है। मनोज्ञ पदार्थों पर अधिकार प्राप्त होने पर गर्व अर्थात् मान करता है। अधिकार न मिलने पर अहं के लिए माया (कपटवृत्ति) का आश्रय लेता है। अनेक पदार्थों या व्यक्तियों पर इष्टानिष्ट भाव रखते हुए सुख की प्राप्ति के लिए सदैव चिंतित रहता है और प्रिय वस्तु या व्यक्ति का संयोग नहीं मिलने पर अपना मानसिक संतुलन खो देता है।

अप्रत्याख्यानी कषाय –

अप्रत्याख्यानी का अर्थ होता है, जिसे व्यक्ति पूरी तरह से छोड़ नहीं पाते हैं, अर्थात् कहीं न कहीं से निमित्त मिलने पर वह भले ही प्रतिक्रिया नहीं करे, किन्तु अपने मनोभावों को रोक नहीं पाता है। इसे हम तनाव की वह स्थिति कह सकते हैं, जहां व्यक्ति बाह्यस्तर पर व्यक्त प्रतिक्रियाएं न कर संतुलन बनाने का प्रयत्न तो करता है, किन्तु मानसिक स्तर पर संतुलन या समभाव नहीं बना पाता है अर्थात् व्यक्ति पागल तो नहीं होता पर तनावयुक्त तो रहता है।

इसे हम तनावों की अल्पता का द्वितीय स्तर भी कह सकते हैं। कषायों के स्तर की दृष्टि से अप्रत्याख्यानी कषाय अनन्तानुबन्धी कषाय से कुछ ऊपर उठना है। इसमें व्यक्ति बाह्य प्रतिक्रियाएं रोकता भी है। अप्रत्याख्यानी कषाय में व्यक्ति बाह्य प्रतिक्रियाएं तो नहीं करता है, किन्तु अन्तर्मन में राग–द्वेष के भावों की अग्नि जलती रहती है। कुछ तनाव ऐसे भी होते हैं, जो व्यक्ति की आदत बन जाते हैं और जो आदत बन जाते हैं उनको सहज निराकृत नहीं किया जा सकता। वह प्रतिक्रिया तो रोक लेता है पर आंतरिक मन में शांति का अनुभव नहीं कर सकता। मनोभावों के स्तर पर चिंतित, अशांत व तनावग्रस्त रहता है।

---

[57] कषाय – हेमप्रभाश्री – पृ. 40

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसकी बाह्य प्रतिक्रियाएं तो रूकती हैं, किन्तु चैत्तसिक प्रतिक्रियाएं चलती रहती हैं। इस स्तर पर व्यक्ति का मानसिक तनाव बढ़ता तो नहीं है, परन्तु समाप्त भी नहीं हो पाता है। व्यक्ति समझता तो है कि वह तनावग्रस्त है और उसका कारण क्या है, किन्तु उससे मुक्त भी नहीं हो पाता। वह प्रयत्न करता है कि उसका मानसिक संतुलन बना रहे, किन्तु निमित्त मिलने पर वह फिर तनाव में आ जाता है। उसके मन में संकल्प–विकल्प चलते रहते हैं। बाह्य प्रतिक्रियाएँ तो रूक जाती है, किन्तु चैत्तसिक स्तर पर वासना और विवेक का आन्तरिक युद्ध तो चलता रहता है और चित्त अशांत बना रहता है।

अप्रत्याख्यानी कषाय में भी क्रोध, मान, माया व लोभ की प्रवृत्ति तो होती है, किन्तु इनकी तीव्रता की स्थिति अनन्तानुबंधी कषाय की अपेक्षा से कम ही होती है।

अप्रत्याख्यानी कषाय में दूसरे के अहित की भावना तो कम होती है, किन्तु अपनों के प्रति राग भाव तीव्र होता है। व्यक्ति का अपने प्रिय–परिजनों के प्रति मोह इतना अधिक प्रगाढ़ होता है कि वह अतिरागभाव के कारण उनके लिए सदैव चिंतित रहता है। उनके सुख के लिए या उनका वियोग न हो इस भय से कई पापकर्म भी करता है, जो उसे तनावग्रस्त बना देते हैं।

प्रत्याख्यानावरण कषाय –

तनाव का वह स्तर है, जहां बाह्य निमित्तों से उत्पन्न क्रोध, मान, माया आदि की प्रतिक्रियाओं को आन्तरिक एवं बाह्य दोनों स्तरों पर रोका जा सकता है, प्रत्याख्यानावरण है। इसमें व्यक्ति पूर्ण रूप से तनाव से मुक्त नहीं होता, किन्तु तनाव को कम जरूर कर लेता है, क्योंकि प्रत्याख्यानावरण कषाय में अनन्तानुबन्धी एवं अप्रत्याख्यानी की अपेक्षा से भी तीव्रता कम होती है। 'जिस कषाय के उदय से सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान प्राप्त नहीं होता, उसे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्याख्यानावरण कषाय कहते हैं।'[58] 'प्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय पूर्ण रूप से ऐन्द्रिक विषयभोगों से विरत नहीं होने देता।'[59]

तनाव का कारण कारण भोग–उपभोग की इच्छाएं हैं। जब भोगासक्ति कम होगी तो तनाव भी कम होगा। इसमें व्यक्ति परिस्थिति आने पर बाह्य व आंतरिक रूप से कषाय की प्रतिक्रियाओं को रोक लेता है, अर्थात् तनाव के कारणों व उससे उत्पन्न प्रतिक्रियाओं को तो रोक सकता है, किन्तु उनके उत्पन्न होने की स्थिति पर उसका पूर्ण नियन्त्रण नहीं होता है। 'कपिल के सत्य कथन को सुनकर जब राजा ने मनचाहा इनाम मांगने को कहा, तो कपिल ने लोभ कषाय का उदय होने से पचास सोने की मोहर लेकर पूरा राज्य तक मांग लेने का विचार कर लिया। तब चिंतन करते–करते विचारों में परिवर्तन आया और लोभ का प्रत्याख्यान कर दिया। भोग की इच्छा को तनाव का कारण जान कर दीक्षित भी हो गया, किन्तु अंतकरण में कषाय उद्वेलित करती रही।

बाहुबली ने अपने भ्राता भरत को हराने, मारने के लिए हाथ उठाया, किन्तु चिंतन करते हुए क्रोध की प्रतिक्रिया को रोक लिया और पंचमुष्ठि लोच कर लिया। जिस मान की पूर्ति के लिए युद्ध कर रहे थे, क्रोध की अग्नि में जलते हुए भाई को हराकर ही शांत होना चाहते थे, वहीं क्रोध की प्रतिक्रिया को रोक कर प्रत्याख्यानावरण क्रोध को क्षय करके दीक्षित हो गए, किन्तु अन्तर में छोटे भाइयों को नमन नहीं करने पर संज्जवलन मान बना रहा, अतः कैवल्य को उपलब्ध नहीं कर सके।

संज्जवलन कषाय –

यह वह स्थिति है, जहां व्यक्ति को अवचेतन स्तर पर तनाव की मन्दतम परिणति होती है। इस स्थिति में भी अव्यक्त तनाव तो होता है, किन्तु उससे

---

[58] कर्म–विज्ञान, भाग–4, पृ. 132

[59] विशेषावश्यक, गाथा–2992

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति की चेतना पर दबाव नहीं बनता, क्योंकि वह अवचेतना स्तर पर होता है। व्यक्ति बाह्य व आन्तरिक दोनों ही प्रकार की प्रतिक्रियाओं को रोक लेता है। संज्वलन कषाय का उदय रहने पर भी व्यक्ति में काषायिक–भावों की परिणिति मन्दतम होती है। व्यक्ति हिंसादि पापों से विरक्त होकर, इष्टानिष्ट भावो से परे होकर तथा समभावपूर्वक साधना मार्ग पर चलता है। इस स्तर पर उसका मानसिक संतुलन बना रहता है। संज्वलन कषाय वाला व्यक्ति विवेक, क्षमा, सहजता, शांति, सहनशीलता आदि गुणों से युक्त होता है। संज्वलन कषाय के लिए व्यक्ति को दिग्भ्रमित करता है। जैसे प्रसन्नचंद्र राजा दीक्षा के बाद मन ही मन में भावों से युद्ध कर रहे हैं, यद्यपि उस समय उनके चैतसिक स्तर पर कषाय भावों का उदय हुआ किन्तु जैसे ही युद्ध करने में मुकुट को शस्त्र बनाने के लिए सिर पर हाथ रखा तो अपने मुनि होने का एहसास हुआ और अपनी सोच पर पश्चाताप करते हुए संज्ज्वलन कषाय को भी समाप्त कर सिद्ध–बुद्ध मुक्त हो गए। 'जिस कषाय का उदय होने पर जीव अति अल्प समय के लिए अवचेतन स्तर पर उससे अभिभूत होता है, उसे संज्वलन कषाय कहते हैं।'[60] जितने अल्प समय के लिए संज्वलन कषाय का उदय होता है, उतने ही अल्प समय के लिए व्यक्ति तनावग्रस्त होता है ओर क्षण भर में उस तनाव से मुक्त भी हो जाता है। भगवान् महावीर ने अपना निर्वाण समय निकट जानकर गौतम गणधर को उनके अपने प्रति रहे हुए राग भाव को दूर करने के लिए अन्यत्र भेज दिया। जब प्रभु निर्वाण को प्राप्त हो गए तो गौतम गणधर को कुछ समय के लिए राग के कारण शोक हुआ, किन्तु, उसी शोक की अवस्था में विचार करते–करते जब उन्होंने प्रभु की वीतरागता को समझा तो स्वयं उन्होंने भी प्रभु के प्रति उस प्रशस्त रागभाव का त्याग कर दिया और प्रशस्त राग भाव संज्जवलन कषाय के क्षय होते ही केवलज्ञान को प्राप्त हो गए। अल्प समय का यह शोक रूप तनाव संज्वलन कषाय के उदय के परिणामस्वरूप ही था।

---

[60] कर्म विज्ञान – भाग–4, पृ. 132

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषायों के ये चार भेद कषायों के स्तर को ही बताते हैं। तीव्रतम, तीव्र, मंद और मन्दतम की अपेक्षा से ही कषायों के ये चार भेद किए गए हैं और ये ही चार स्तर तनाव के भी होते हैं। कषाय जितना तीव्रतम होगा, व्यक्ति के तनाव का स्तर भी उतना ही ज्यादा होगा।

क्र.	कषाय	कषाय का स्तर	तनाव का स्तर
1.	अनन्तानुबंधी	तीव्रतम	तीव्रतम (व्यक्ति का मानसिक संतुलन खो जाना)
2.	अप्रत्याख्यानी	तीव्र	तीव्र (मानसिक संतुलन का विकृत होना)
3.	प्रत्याख्यानावरण	मन्द	मानसिक संतुलन को बनाए रखने का प्रयास
4.	संज्जवलन	मन्दतम	तनाव बिल्कुल मन्दतम (मानसिक संतुलन बना रहता है।)

कषायों के विभिन्न प्रकार और तनाव --

(अ) क्रोध --

क्रोध एक मानसिक आवेग है, जो शारीरिक गतिविधियों द्वारा प्रकट होता है। क्रोध व्यक्ति की तनावग्रस्तता का सूचक कहा जाता है, क्योंकि तनावग्रस्त व्यक्ति के मनोभावों की अभिव्यक्ति क्रोध के माध्यम से होती है। क्रोध में व्यक्ति विवेकशून्य हो जाता है। तनावग्रस्त व्यक्ति जितना क्रोध करता है, उतना ही उसक तनाव बढता जाता है। क्रोध एक ऐसा मनोविकार है, जिसके उत्पन्न होने पर शारीरिक एवं मानसिक दोनों ही संतुलन विकृत हो जाते हैं। व्यक्ति को इतना भी विवेक नहीं रहता है कि वह क्या कर रहा है, या क्या बोल रहा है ? क्रोध भी तभी उत्पन्न होता है जब व्यक्ति की इच्छाओं आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं होती अथवा उनकी पूर्ति में बाधा उपस्थित की जाती है या फिर जब उसके

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अहंकार को कोई ठेस पहुंचती है। ऐसी स्थिति में भी उसका मानसिक संतुलन भंग हो जाता है, जिसकी अभिव्यक्ति क्रोध से होती है। हम यह भी कह सकते हैं कि क्रोध तनाव की एक स्थिति है। क्रोध की उपस्थिति ही स्वयं अपने आप में एक तनाव है। 'जैन–विचारणा में सामान्यतया क्रोध के दो रूप माने हैं – 1. द्रव्यक्रोध एवं 2 भाव क्रोध।'[61] शारीरिक स्तर पर जो क्रोध होता है, वह द्रव्य क्रोध है एवं विचारों या मनोभावों के स्तर पर जो क्रोध होता है वह भाव क्रोध है। द्रव्य क्रोध शारीरिक तनाव उत्पन्न करता है, तो भाव क्रोध मानसिक तनाव को पैदा करता है। इनमें प्रथम–द्रव्य क्रोध शारीरिक–तनावों का हेतु है तो दूसरा भाव क्रोध मानसिक तनाव का परिचायक है। वस्तुतः शारीरिक तनाव का प्रभाव भी मन पर पड़ता है, किन्तु इसकी संभावना भाव क्रोध की अपेक्षा से कम ही होती है। मानसिक क्रोध या तनाव शरीर और मन दोनों को तनावग्रस्त कर देता है। योगशास्त्र में आचार्य हेमचन्द्र ने क्रोध का स्वरूप वर्णित करते हुए कहा है –"क्रोध शरीर और मन को संताप देता है, क्रोध वैर का कारण है, क्रोध दुर्गति की पगडण्डी है और मोक्षमार्ग में अर्गला के समान है।"[62] तनावमुक्ति में क्रोधरूपी तनाव बाधक है। क्रोध में अन्धा हुआ व्यक्ति सत्य, शील और विनय का नाश कर डालता है।[63] क्रोध और तनाव की एकरूपता हम इस प्रकार भी समझ सकते हैं –क्रोध और तनाव दोनों ही 'पर' के निमित्त से होते हैं, इसमें 'पर' को नष्ट करने के भाव उत्पन्न होते हैं, किन्तु हम दूसरे को तनावग्रस्त बना पाए या नहीं, पर स्वयं की शांति तो भंग हो ही जाती है। इसी आशय वाला कथन ज्ञानार्णव में भी मिलता है। ज्ञानार्णव में क्रोध से हानि बताते हुए शुभचन्द्र लिखते हैं कि –"क्रोध में सर्वप्रथम स्वयं का चित्त अशान्त होता है, भावों में कलुषता छा जाती है, विवेक का दीपक बुझ जाता है। क्रोधी व्यक्ति दूसरे को अशान्त कर

---

[61] भगवतीसूत्र – 12/5/2

[62] योगशास्त्र, प्रकाश–4, गा.–9

[63] प्रश्नव्याकरणसूत्र – 2/2

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाए या नहीं पर स्वयं तनावग्रस्त हो जाता है।"[64] हम यह भी कह सकते हैं कि तनावयुक्त (क्रोधी) व्यक्ति दीपक की बाती के समान होता है, जो दूसरे को जला पाए या नहीं पर स्वयं तो जलती है।

'मनोविज्ञान में क्रोध को संवेग कहा गया है।'[65] जब संवेग अधिक उत्तेजित होते हैं तो शरीर में परिवर्तन घटित होते हैं। 'क्रोध आने पर शक्ति का ह्रास होता है, ऊर्जा नष्ट होती है, बल क्षीण होता है।'[66] क्रोध जितना तीव्र होगा, व्यक्ति के तनाव की स्थिति भी उतनी अधिक तीव्र होगी। आवेग जितने मन्द होंगे, व्यक्ति के तनाव का स्तर भी उतना ही मन्द होगा और तनावमुक्त स्थिति को पाने में सफल होगा। क्रोध के आवेग की तीव्रता एवं मन्दता के आधार पर चार भेद किए हैं और इन्हीं से व्यक्ति के तनावयुक्त स्तर को भी समझना चाहिए।

1. अनन्तानुबन्धी क्रोध –

यह क्रोध की तीव्रतम स्थिति है। पत्थर में पड़ी दरार के समान किसी के प्रति एक बार क्रोध उत्पन्न होने पर जीवन भर शांत नहीं होता है। क्रोध की इस स्थिति में व्यक्ति कभी भी शांति का अनुभव नहीं कर पाता है। मन में क्रोध रूपी अग्नि जलती रहती है, जिससे तनावमुक्ति के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं। व्यक्ति का यह क्रोध उसे इतना तनावग्रस्त कर देता है कि वह जीवन पर्यन्त तनावमुक्त नहीं हो सकता है।

जैसा कि पूर्व में कहा गया है कि क्रोध का होना स्वयं अपने आपमें तनाव है, तो भी प्रश्न उठता है कि क्रोधजन्य तनाव जब उत्पन्न होता है तो क्रोध की बाह्य प्रतिक्रियाएं प्रारम्भ हो जाती हैं। शरीर, स्वजन, सम्पत्ति आदि में व्यक्ति की आसक्ति प्रगाढ़ होती है। उसे प्रिय के संयोग की प्राप्ति में बाधक तत्त्व अप्रिय

---

[64] ज्ञानार्णव, सर्ग–19, गाथा–6

[65] शिक्षा–मनोविज्ञान, प्रो. गिरधारीलाल श्रीवास्तव, पृ. 181

[66] कषाय : एक तुलनात्मक अध्ययन, साध्वी हेमप्रभा, पृ. 17

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लगते हैं और उनके प्रति अनन्तानुबंधी क्रोध पैदा होता है।[67] ऐसा व्यक्ति सिर्फ अपने छोटे से स्वार्थ या सुख के लिए दूसरों को अधिकतम दुःख देता है, दूसरों की पीड़ा को देखकर खुश होता है। वह स्वयं भी तनावयुक्त रहता है व दूसरों को भी तनावग्रस्त बनाता है। उसकी अपनी विवेक शक्ति नष्ट हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप वह कभी भी तनावमुक्त नहीं हो पाता है। तनाव के इस स्तर पर उसके सोचने–समझने की क्षमता प्रायः समाप्त हो जाती है। वह क्रोध में प्रतिक्रियाएं भी करता रहता है और उसकी चित्तवृत्ति क्रोध से आक्रान्त बनी रहती है।

2. अप्रत्याख्यानी क्रोध –

जब क्रोध चैत्तसिक स्तर पर तीव्रतर होता है तो वह अप्रत्याख्यानी क्रोध है। इसमें व्यक्ति क्रोध की बाह्य प्रतिक्रियाएं तो कम करता है, किन्तु चित्त क्रोध से पूरी तरह आक्रान्त रहता है। दूसरों के प्रति ईर्ष्या, जलन, और विद्वेष की भावना इसके प्रमुख लक्षण हैं। वह केवल लोक–लाज से बाह्य प्रतिक्रियाओं को रोकता है किन्तु अन्तस्थ में तो तनावग्रस्त रहता है। यह स्थिति चैत्तसिक स्वास्थ्य के लिए अधिक खतरनाक होती है, क्योंकि इसमें 'दमन' की ही मुख्यता होती है। अप्रत्याख्यानी क्रोध का मूल कारण मोह या राग है। तनाव उत्पत्ति में भी मुख्य हेतु राग ही होता है। जब किसी अपने या प्रिय का कोई अपमान करता है, तो उसके चित्त में जो विक्षोभ उत्पन्न होता है, वह अप्रत्याख्यानी क्रोध होता है।

अप्रत्याख्यानी क्रोध में पर के प्रति रागात्मकता अधिक होती है। यह राग–भाव उसके मन में तनाव उत्पन्न करने का मुख्य तत्त्व होता है। जहां राग होगा वहां क्रोध होना स्वाभाविक है। अप्रत्याख्यानी क्रोध आदि में तनाव की सत्ता मानसिक स्तर पर ही होती है। बाह्य प्रतिक्रियाएं कम होती हैं। व्यक्ति को क्रोध तो आता है, किन्तु वह उसकी बाह्य प्रतिक्रिया नहीं करता है, मात्र मानसिक

---

[67] कषाय : साध्वी हेमप्रज्ञाश्री, पृ. 45

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्तर पर दूसरे के प्रति क्रोध से आक्रान्त बना रहता है। वह मन ही मन क्रोधित होता है, अर्थात् तनाव में रहता है और यह तनाव दीर्घकाल तक बना रहता है। जिस प्रकार गीली मिट्टी में सूखने के बाद दरारें पड़ जाती है, अगले वर्ष की वर्षा आने तक नहीं भरती, उसी प्रकार एक बार किसी पर क्रोध आ जाए तो दीर्घकाल तक मन में क्रोध रूपी तनाव की अग्नि जलती रहती है जो उसे क्षण भर के लिए भी तनावमुक्त या शांति का अनुभव नहीं करने देती है।[68]

3. प्रत्याख्यानावरण क्रोध –

यह क्रोध अल्पकालिक और नियन्त्रण योग्य होता है। 'बालू रेत में बनी रेखा के समान प्रत्याख्यानावरण क्रोध है।'[69] जैसे बालू में खिंची लकीर हवा के झोंकों से धीरे–धीरे मिट जाती है, उसी प्रकार प्रत्याख्यानी क्रोध भी धीरे–धीरे शांत हो जाता है। अप्रत्याख्यानी कषायों में भी मानसिक तनाव होता है और वह दीर्घकाल तक बना रहता है। जबकि प्रत्याख्यानावरण में उसकी अवधि अल्प होती है। व्यक्ति का तद्जन्य मानसिक तनाव अल्प समय में ही शांत हो जाता है।

4. संज्जवलन क्रोध –

यह क्रोध मन के अवचेतन स्तर पर क्षणभर के लिए आता है और शांत हो जाता है। जिस प्रकार पानी में खिंची लकीर उसी क्षण मिट जाती है, उसी प्रकार जब किसी के प्रति क्रोध का भाव आ जाए, किन्तु उसी क्षण उसकी निरर्थकता जानकर उससे विरत हो जाए, वह संज्वलन क्रोध है। यह चैत्तसिक स्तर पर अवचेतन में आकर समाप्त हो जाता है। इसमें तनाव भी क्षणिक काल के लिए ही होता है।

व्यक्ति को क्रोध आना स्वाभाविक है, किन्तु उस पर प्रतिक्रिया करना या नहीं करना यह व्यक्ति के मनोबल पर आधारित है। मानसिक चेतना जितनी

---

[68] प्रथम कर्मग्रन्थ / या / कषाय – पृ. 44

[69] प्रथम कर्मग्रन्थ /या / कषाय – पृ. 44

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सजग व शक्तिशाली होगी उसमें क्रोध की प्रवृत्ति के नियंत्रण की शक्ति भी अधिक होगी और वह तनावग्रस्त भी कम होगी।

अनन्तानुबंधी क्रोध में व्यक्ति का मनोबल हीन होता है। अप्रत्याख्यानी क्रोधी के मनोबल में केवल इतनी ही शक्ति होती है कि वह क्रोध की बाह्य प्रतिक्रियाएं नहीं करता है है, परन्तु उसका मन तनावों से ग्रस्त रहता है।

प्रत्याख्यानावरण क्रोध एवं संज्जवलन क्रोध में व्यक्ति का मनोबल अपेक्षाकृत अधिक शक्तिशाली होता है, इसलिए वह क्रोध की बाह्य अभिव्यक्ति पर पूर्ण नियन्त्रण कर पाता है। प्रत्याख्यानावरण क्रोध कुछ समय के लिए चेतना का स्पर्श मात्र करता है, उसकी बाह्य अभिव्यक्ति नहीं होती है, जबकि संज्जवलन कषाय में क्रोध मात्र अचेतन या अवचेतन स्तर पर मात्र सत्ता रूप होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोध तीव्रतम, प्रतिक्रियायुक्त एवं जीवनपर्यन्त बना रहता है और अप्रत्याख्यानी क्रोध केवल चैत्तसिक स्तर पर होता है। उसमें बाह्याभिव्यक्ति या प्रतिक्रियाएँ रूकती हैं, किन्तु चैत्तसिक प्रतिक्रियाएँ या संकल्प–विकल्प चलते रहते हैं। प्रत्याख्यानी कषाय में बाह्य एवं चैत्तसिक प्रतिक्रिया तो रूकती है, किन्तु चित्त उससे कुछ समय के लिए प्रभावित अवश्य होता है। जितनी अधिक क्रोध की प्रतिक्रियाएं उतना ही अधिक तनाव और जितनी कम क्रोध की प्रतिक्रियाएं उतना ही कम तनाव होगा।

2. मानकषाय –

'मान एक ऐसा मनोविकार है, जो स्वयं को उच्च एवं दूसरों को निम्न समझने से उत्पन्न होता है।'[70] सामान्यतः मान दूसरों से हमें मिलने वाले आदर, इज्जत या सम्मान–सत्कार की आकांक्षा को कहते हैं। वस्तुतः यहां मान से तात्पर्य उस मनोविकार से है, जिसमें स्वयं को सर्वश्रेष्ठ एवं दूसरों को निम्न

---

[70] कषाय : एक तुलनात्मक अध्ययन, साध्वी हेमप्रभाश्री, पृ. 23

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कोटि का समझा जाता है। अपनी आन–बान–शान पर या अपनी उपलब्धियों पर गर्व या घमण्ड करना ही मान है।

मान के कई समानार्थी शब्द होते हैं। जैन आगमों में मान को निम्न बारह रूपों में स्पष्ट किया गया है [71]–

मान –

अपने किसी गुण पर अहंवृत्ति का होना मान है। जब व्यक्ति के समक्ष उससे अधिक कुशल व्यक्ति आ जाता है तो तब उसके मन में, जो ईर्ष्या का भाव उत्पन्न होता है, उसे मान कषाय या तनाव की स्थिति कहते हैं। व्यक्ति अपने को सर्वश्रेष्ठ स्थान पर रखने के लिए दूसरों की निंदा करता है, उसके दोषों को उजागर करता है, यह भी मान कषाय ही है।

मद –

शक्ति का अंहकार मद कहलाता है। अपनी शक्ति का प्रदर्शन करने हेतु व्यक्ति बिना कोई विचार किए दूसरों को चुनौतियाँ देता है। समवायांगसूत्र में मद के आठ भेद बताए हैं।[72]

1. **जाति मद** – जातियाँ चार हैं, जो मनुष्य कर्म के आधार पर निर्मित हुई हैं। जैसे अध्ययन–अध्यापन करनेवाला ब्राह्मण, सबकी रक्षा करने वाला क्षत्रिय, व्यापार करने वाला –वैश्य एवं सबकी सेवा करने वाला –शूद्र है। यह मात्र कार्यों के आधार पर किया गया विभाजन है, किन्तु मनुष्य ने इन वर्णों में उच्च एवं नीच की अवधारणा बना ली है। उच्च कहलाने वाली जति में जन्म लेने पर उसका अहंकार करना जाति–मद है। कोई निम्न जाति का व्यक्ति जैसे शूद्र अगर उच्च जाति के अधीन न रहे तो उच्च जाति वाले उसे अपना अपमान समझते हैं।

---

[71] भगवतीसूत्र – 12/43

[72] समवाओ/समवाय – 8/सू.–1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. **कुल मद** – जिस कुल में सुसंस्कार, सम्पन्नता, विशिष्टता होती है, वह कुल श्रेष्ठ कहलाता है। ऐसे कुल में जन्म लेने पर अहंकार करना कुल मद कहलाता है।

3. **रूप मद** – शारीरिक सौन्दर्य का अहंकार करना रूप मद है।

4. **बल मद** – अपने शौर्य या ताकत (शक्ति) का अहंकार करना बल मद है।

5. **श्रुत मद** – अपने ज्ञान का अहंकार करना ज्ञान या श्रुत मद है।

6. **तप मद** – अपनी तपस्या पर गर्व करना तप मद है।

7. **लाभ मद** – योग प्रबल होते हैं, जिससे व्यक्ति को पग–पग पर उपलब्धियाँ, ऋद्धियाँ या धन–वैभव मिलता रहता है, इन पर घमण्ड करना लाभ मद है।

8. **ऐश्वर्य मद** – मैं अतुल वैभव सम्पन्न हूँ, ऐसा अभिमान ऐश्वर्य–मद कहलाता है।[73]

उपर्युक्त आठों मद व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करते हैं। उनके मन में यह भय होता है कि कहीं कोई हमसे श्रेष्ठ न आ जाए। अपनी श्रेष्ठता को बनाए रखने के लिए सदैव चिंतित रहता है, दूसरों की निन्दा करना, उन्हें नीचा दिखाना, स्वयं का गुणगान करना आदि अनुचित व्यवहार है। ऐसे घमण्ड में चूर व्यक्ति के समक्ष जब कोई उससे भी अधिक श्रेष्ठ व्यक्ति आ जाता है, तो उसे गहरा आघात पहुंचता है, जो उसे तनावग्रस्त बना देता है।

मान कषाय के निम्न पर्यायवाची शब्द हैं –

दर्प – उत्तेजनापूर्ण अहंभाव अर्थात् गर्व में चूर होकर क्रोध पूर्वक दुष्ट कार्य करना दर्प है।

---

[73] कषाय : एक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 28

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्तम्भ – खम्बे की तरह अकड़ कर रहना अर्थात् स्वयं की गलती होने पर भी झुकना नहीं, स्तम्भ कहलाता है।

गर्व – स्वयं के ज्ञान, कला या शक्ति का घमण्ड होना गर्व कहलाता है।

अति–आक्रोश – दूसरे व्यक्तियों से तुलना कर स्वयं को सर्वश्रेष्ठ मानना अति–आक्रोश है।

परपरिवाद – अठारह पाप स्थान में सोलहवां पापस्थान परपरिवाद है। इस पाप में व्यक्ति स्वयं को श्रेष्ठ बताने के लिए दूसरों की निन्दा करता है, अर्थात् दूसरे के दोषों को बतलाता है।

उत्कर्ष – अपनी कीर्ति, ऐश्वर्य, ऋद्धि का स्वयं ही गुणगान करना या उसका प्रदर्शन करना उत्कर्ष कहलाता है।

अपकर्ष – दूसरों को नीचा दिखाने के लिए उनकी आलोचना या निन्दा करना अपकर्ष मान है।

उन्नतमान – स्वयं से अधिक गुणवान व्यक्ति के आ जाने पर भी उसके समक्ष नहीं झुकना, वन्दनीय को वंदन नहीं करना, उन्नतमान है।

उन्नत – स्वयं को ऊँचा एवं दूसरों को तुच्छ समझना।

पुर्नाम – गुणी व्यक्ति जिस आदर के हकदार हैं, उन्हें वह आदर नहीं देना, पुर्नाम कहलाता है।

अभिमानी व्यक्ति सिर्फ अपने बारे में ही सोचता है। वह इतना स्वार्थी होता है कि स्वयं के मान के पोषण में दूसरों का अपमान करने से भी नहीं चूकता है। सूत्रकृतांग में कहा गया है कि अभिमानी अहं में चूर होकर दूसरों को परछाई के समान तुच्छ समझता है।[74]

---

[74] अण्णं जणं पस्सति, बिंबभूयं, सूत्रकृतांग, अध्याय–13, गाथा–8

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानकषाय और तनाव का सह–सम्बन्ध –

मान नशे के समान है। जिस प्रकार नशे में धुत्त व्यक्ति स्वयं के शारीरिक हिस्सों को नष्ट करता हुआ लड़खड़ा कर चलते हुए धरती पर गिर पड़ता है, उसी प्रकार मद के वशीभूत व्यक्ति भी स्वयं की मानसिक शांति एवं अपने ज्ञान को नष्ट करता हुआ तनावग्रस्त हो जाता है। 'अभिमान करना अज्ञानी का लक्षण है।'[75] मान के वशीभूत व्यक्ति स्वार्थी हो जाता है। वह अपने फायदे के लिए दुष्कर्म करने से भी पीछे नहीं हटता। उसके मनोपटल पर स्वयं की प्रशंसा कैसे हो और दूसरों को नीचा कैसे दिखाए, यही विचार चलते रहते हैं। जब व्यक्ति दूसरों से मिलने वाले आदर, सम्मान, इज्जत, प्रशंसा से फूला नहीं समाता है, तो उसे स्वयं के कार्य पर गर्व होने लगता है और उसे दूसरों के सभी कार्य व्यर्थ लगने लगते हैं। सूत्रकृतांग में भी यही कहा है कि अन्नं जणं परसति बिंबभूयं अर्थात् अभिमानी अपने अहंकार में चूर होकर दूसरों को सदा बिंबभूत अर्थात् परछाई के समान तुच्छ मानता है।[76] वह स्वयं को सर्वश्रेष्ठ व अन्य सभी को हीन समझने लगता है और इस स्तर पर उसका मन विचलित हो जाता है, अर्थात् तनावयुक्त हो जाता है। निम्न भय उसकी मानसिक शांति को भंग कर देते हैं –

1. कहीं कोई मुझसे सर्वश्रेष्ठ न हो जाए।
2. कहीं कोई मेरे अवगुणों को उजागर न कर दे।
3. मेरी ख्याति समाप्त न हो जाए।
4. कहीं कोई मेरे मान को ठेस न पहुंचा दे।

उपर्युक्त भयों के कारण वह विचार करने लगता है कि ऐसा क्या किया जाए जिससे अपनी मिथ्या प्रशंसा बनी रहे। वह अपने मान की रक्षा करने व भयमुक्ति हेतु दोहरा व्यवहार करता है। किन्तु वह इस बात से अनजान रहता है

---

[75] सूत्रकृतांग – बालजणो पगब्भई, – 1/10/20

[76] सूत्रकृतांग – 1/13/14

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि ऐसा व्यवहार उसके मिथ्या अहंकार का पोषण करेगा और मान–कषाय का पोषण जितना अधिक होगा उसका तनाव स्तर भी उतना ही बढ़ेगा।

व्यक्ति अपनी मान–प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए दूसरों की निंदा करता है, अपनी गलती कभी भी स्वीकार नहीं करता है, उसके मस्तिष्क में हलचल मची रहती है, मन सदैव विचलित रहता है। उपर्युक्त सभी स्थितियाँ तनाव उत्पन्न करने वाली हैं और तनावयुक्त अवस्था में, मान से ग्रस्त वह व्यक्ति विनय, स्वाभिमान, सदाचार, ईमानदारी सरलता आदि गुणों को भूल जाता है। मान कषाययुक्त व्यक्ति की मनोवृत्तियाँ दूषित हो जाती है, अर्थात् उसका मन मलिन हो जाता है। वह फरेब, बेईमानी, दूसरों का अपमान करना, उन्हें दुःख देना आदि दुराचरण अपना लेता है। ऐसा व्यक्ति न तो स्वयं तनावमुक्त हो सकता है, न ही दूसरों को तनावमुक्त रहने देता है। मान कषाय से युक्त व्यक्ति दूसरों को अपने अधीन रखना चाहता है। स्वयं को स्वाधीन मानकर दूसरों पर अत्याचार करता है। मान कषाय व्यक्ति के विनय, सद्बुद्धि, सरलता आदि गुणों को घात करने वाला है।

ज्ञानार्णव में शुभचन्द्राचार्य का कथन है –"अभिमानी विनय का उल्लंघन करता है और स्वेच्छाचार में प्रवर्तन करता है।"[77] योगशास्त्र में हेमचन्द्राचार्य ने मानजन्य हानियाँ बताई हैं – मान विनय, श्रुत और सदाचार का हनन करने वाला है। मान कषाय धर्म, अर्थ और काम का घातक है। विवेकरूपी चक्षु को नष्ट करने वाला है।[78] जहाँ व्यक्ति में विवेकशून्यता आ जाती है, वहां तनाव में वृद्धि हो जाती है। व्यक्ति जितना अधिक अहंकारग्रस्त होगा, वह उतना ही अधिक तनावग्रस्त होता चला जाएगा। उसकी मानग्रस्तता की तीव्रता व मंदता की अवस्था के आधार पर प्रथम कर्मग्रन्थ में मान कषाय के निम्न चार स्तर बताए हैं –

---

[77] ज्ञानार्णव, सर्ग–9, गाथा–53

[78] योगशास्त्र – प्र. 4, गाथा–12

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनन्तानुबन्धी मान – विनयदान व्यक्ति ही तनावमुक्त होता है। अनन्तानुबन्धी मान वाले व्यक्ति में विनयगुण नाम मात्र को भी नहीं रहता है। पत्थर के खम्बे के समान जो झुकता नहीं, चाहे टूट जाए, उसमें विवेक, करूणा, स्नेह आदि गुण नहीं होते हैं, वह व्यक्ति अनन्तानुबन्धी मान कषाय से युक्त होता है।[79] विवेक शून्य होने के कारण वह आजीवन तनावों से ग्रस्त बना रहता है और साथ ही साथ मान के वशीभूत होकर ऐसे कर्म करता है, जिसके परिणामस्वरूप भविष्य में भी तनावग्रस्त ही रहता है।

अप्रत्याख्यानी मान – जो मान आजीवन तो नहीं, किन्तु लम्बे समय तक व्यक्ति को तनाववयुक्त रखता है, उसे अप्रत्याख्यानी मान कहते हैं। अप्रत्याख्यानी मान जीवित व्यक्ति की हड्डी के समान होता है जो विशेष प्रयत्न करने पर ही लम्बे समय के बाद झुकती है, टूटती नहीं है। बाहुबली को लम्बी तपस्या करने के पश्चात् भी केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, किन्तु जब बाह्मी व सुन्दरी ने आकर उद्‌बोधन दिया कि भाई मान रूपी हाथी से नीचे उतरो, तो बाहुबली ने मान कषाय का त्याग कर केवलज्ञान प्राप्त किया।

प्रत्याख्यानी मान – बांस के छिलके के समान जो सामान्य प्रयत्न से भी झुक जाए उसे प्रत्याख्यानी मान कहते हैं। प्रत्याख्यानी मान चेतना की वह स्थिति है, जिसमें अहंभाव का उदय तो होता है, किन्तु व्यक्ति की चेतना उससे प्रभावित नहीं होती। व्यक्ति उससे जुड़ता नहीं है और इस कारण से प्रत्याख्यानी कषाय के उदय होने पर तनाव में किसी प्रकार की तीव्रता नहीं होती। संक्षेप में कहें तो इस अवस्था में स्वाभिमान तो रहता है, पर अभिमान नहीं रहता, व्यक्ति में मूल्यात्मक चेतना प्रसुप्त नहीं होती है।

संज्वलन मान – संज्वलन कषाय चेतना की वह स्थिति है, जिसमें अवचेतन स्तर पर कषाय की सत्ता तो होती है, किन्तु उसकी अभिव्यक्ति नहीं

---

[79] सेलथंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे
काल करेइ षोरइएसु उववज्जति – स्थानांगसूत्र, 4/2

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होती, जैसे गोबर के कण्डे की अग्नि राख से ढंकी रहती है, उसी प्रकार संज्जवलन मान में व्यक्ति अहंकार से मुक्त विनयशीलता से युक्त तो होता है, किन्तु उसके अन्तस् में अहंकार का भाव पूरी तरह से समाप्त नहीं होता है, मात्र तनाव का आवेग अव्यक्त रूप से चेतना में अपना अस्तित्व रखते हैं। इस संज्जवलन मान में व्यक्ति अपनी विनयशीलता को प्रकट तो करता है, किन्तु उस विनय के पीछे उसमें अपने को विनीत दिखाने और कहलाने की भावना छिपी होती है। दूसरे शब्दों में मान की अपेक्षा तो रहती है, किन्तु उसके लिए अभिव्यक्ति नहीं करता। इस अवस्था में मान छद्म रूप में विनय का लबादा ओढ़े बैठा रहता है। इस प्रकार इस अवस्था में चेतना में तनाव की उपस्थिति तो नहीं रहती, किन्तु प्रसंग आने पर या निमित्त पाकर तनावग्रस्त होने की आंशिक सम्भावना बनी रहती है।

माया – कषाय रूप मनोवृत्तियाँ मानसिक विकारों के कारण उत्पन्न होती हैं और तनाव का कारण बनती हैं। इन कषायों को व्यक्ति अपनी इच्छा पूर्ति के लिए व्यवहार में लाता है। अपनी इच्छा पूर्ति के लिए व्यक्ति सबसे अधिक उपयोग माया कषाय का करता है। माया शब्द मा + या से ना है। 'या' का अर्थ 'जो' तथा 'मा' का अर्थ 'मत या नहीं' है। इस प्रकार जो नहीं है, उसको प्रस्तुत करना माया है। दूसरे शब्दों में कहें तो कपटाचार, धोखा, विश्वासघात आदि माया है और माया करनेवाले को मायावी कहते हैं। अणगार–धर्मामृत में मायावी का निम्न स्वरूप बताया गया है – 'जो मन में होता है, वह कहता नहीं, जो कहता है वह करता नहीं, वह मायावी होता है।'[80] आचारांग में कहा गया है – मायावी और प्रमादी बार–बार जन्म लेता है, उसका संसार–परिभ्रमण कभी समाप्त नहीं होता। कितनी भी साधना हो, पर यदि माया–रूपी मनोभाव कृश

---

[80] थो वाचा स्वमपि स्वान्तं ..... –धर्मामृत, अ.6, गा.19

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हुए, तो सम्पूर्ण साधना निरर्थक है।[81] माया गति को ही नहीं माया सौभाग्य को भी नष्ट कर दुर्भाग्य को जन्म देती है।[82]

जैनदर्शन के अनुसार माया कपट वृत्ति है। चार कषायों में यह भी एक प्रमुख कषाय है। इसे दूसरों को धोखा देने की वृत्ति कही जाती है। एक दृष्टि से माया द्वेष का ही एक रूप है। दूसरों को मिथ्या जानकारी देना, अपने दुर्गुणों को छिपाना और दूसरों के दुर्गुणों को व्यक्त करना भी कपटवृत्ति का ही एक रूप है। इससे जीवन में दोहरापन आता है। व्यक्ति करता कुछ है, और दिखाता कुछ है, बस इसी में तनाव का जन्म होता है। व्यक्ति को सदैव यह भय बना रहता है कि उसकी यथार्थता कहीं उजागर न हो जाए, अतः वह सदैव ही उस दोहरेपन को या कपटवृत्ति को ओढ़े रहता है और इस कारण तनावग्रस्त बना रहता है। जब व्यक्ति कपटवृत्ति या माया रूपी कषाय से युक्त होगा तब वह अनिवार्य रूप से तनावग्रस्त होगा, क्योंकि जहाँ भी यथार्थता को छुपाने की वृत्ति होती है, वहाँ उसके उजागर होने का भय बना रहता है और जहां भय है, वहां अनिवाय्र रूप से तनाव रहता ही है।

इस प्रकार माया या कपटवृत्ति तनाव का ही हेतु है और तनावों से मुक्त होने के लिए कपटवृत्ति का त्याग आवश्यक है।

माया केवल स्वयं को ही तनावग्रस्त नहीं करती वरन् उसे भी तनावग्रस्त कर देता है जिसके साथ कपट किया है। दशवैकालिक सूत्र में इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है कि –माया की मित्रता से अच्छे सम्बन्धों का नाश होता है।[83] जब मित्र को, परिजनों को या सम्बन्धियों को यह पता चलता है कि उसी के किसी अपने ने उसे धोखा दिया है तो उनको बहुत चोट या आघात पहुंचता है।

---

[81] माई पमाई पुण एइ गब्भं ..... –आचारांगसूत्र –1/3/1

[82] दुर्भाग्यजननी माया, माया दुर्गतिकारणम् – विवेकविलास

[83] दशवैकालिकसूत्र – 8/38

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरे माया या कपटवृत्ति को एक अन्य अपेक्षा से चौर्य कर्म भी कहा गया है और चौर्य कर्म करने वाला व्यक्ति सदा भयभीत रहता है और सदा तनावग्रस्त रहता है, इसमें कोई वैमत्य नहीं है। अतः माया रूपी कषाय भी तनाव का हेतु है।

माया के चार प्रकार –

अनंतानुबन्धी माया – यह तीव्रतम कपटाचार की स्थिति है। जितनी गहरी कपटवृत्ति होगी उतना ही अधिक विश्वासघात होगा और उतना ही अधिक तनाव होगा। यह माया बांस की जड़ के समान होती है, जो कभी भी सीधी नहीं होती है। इस माया की स्थिति तीव्रतम होने कारण तद्जन्य तनाव भी तीव्रतम स्थिति का होता है।

अप्रत्याख्यानी माया – ऐसी माया भैंस के सींग के समान कुटिल होती है। ऐसी माया में तनाव का स्तर अनन्तानुबन्धी की अपेक्षा कुछ कम होता है, क्योंकि ऐसी माया तीव्रतर होती है अतः तनाव भी तीव्रतर ही होगा।

प्रत्याख्यानी माया – गोमूत्र की धारा के समान कुटिल माया प्रत्याख्यानी माया है। इस स्तर की माया में तनाव भी अपेक्षाकृत कम तीव्र ही होता है।

संज्वलन माया – अल्प कपटाचार होने के कारण इससे तनाव तो होता है, किन्तु उसका स्तर भी मंद ही होता है। जिस प्रकार बांस का छिलका आसानी से मुड़ जाता है, उसी प्रकार ऐसी माया मे विवाद आसानी से सुलझ जाते है।

अतः तनावमुक्ति के लिए व्यक्ति को माया कषाय से उपर उठना होता है। वस्तुतः जहाँ मान और लोभ कषाय प्रमुख बनते हैं, वहां स्वतः कपट या माया वृत्ति आ जाती है। इसलिए जैनधर्म में कहा गया है कि माया पर विजय सरलता या आर्जव गुण से ही सम्भव है। यदि मानव को तनावमुक्त होना है तो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसे माया या कपट वृत्ति का त्याग करना होगा और अपने जीवन व्यवहार में सरलता और सहजता लानी होगी।

लोभ –

लोभ शब्द लुभ् + धञ् के संयोग से बना है, जिसका अर्थ लोलुपता, लालसा, लालच, अतितृष्णा आदि है।[84] धन आदि की तीव्र आकांक्षा या गृद्धि लोभ है।[85] बाह्य पदार्थों में जो 'यह मेरा है' –इस प्रकार की अनुराग बुद्धि का होना ही लोभ कहलाता है।[86]

लोभ एक मनोवृत्ति है। यह ऐसी मनोवृत्ति के जिससे मन में रहे हुए सारे गुण (विवेकादि) या बुद्धि की कार्य करने की क्षमता या निर्णय क्षमता को नष्ट कर देती है। लोभ कषाय को क्रोध, मान व माया कषायों का जन्मदाता भी कह सकते हैं, क्योंकि जब लोभ या लालच होता है तो उसकी पूर्ति करने के लिए कभी क्रोध का तो कभी मान का और कभी माया का सहारा लेना ही पड़ता है। जब मन इन कषायों से युक्त होता है तो नियमतः वह तनाव उत्पन्न करता है। ऐसे में तनाव का स्तर भी तीव्रतम होता है। लोभ के उदय से चित्त में पदार्थों की प्राप्ति के लिए वासना उत्पन्न होती है।[87] यह वासना जब तक पूरी नहीं होती, व्यक्ति का मन विचलित रहता है। लोभ का स्वरूप बताते हुए आचारांगसूत्र में कहा गया है –सुख की कामना करने वाला लोभी बार–बार दुःख को प्राप्त करता है।[88] प्रशमरति में लोभ को सब विनाशों का आधार, सब व्यसनों का राजमार्ग बताया है।[89]

---

[84] संस्कृत–हिन्दी कोश, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 886

[85] अनुग्रह प्रवणद्रव्याधभिकाङ्क्षावेशो लोभः। –राजवार्तिक, 8/9/6/574/32

[86] ब्राह्यार्थेषु ममेदं बुद्धिर्लोभः। – धवला, 12/4

[87] अभिधानराजेन्द्रकोश, भाग–6, पृ. 755

[88] सहट्ठी लालप्पभाणे सएण दुक्खेण मूढ़े विप्परियासमुवेति...। – आचारांगसूत्र, अ.2, उ.6, सु. 151

[89] सर्व विनाशाश्रायिण .....। –प्रशमरति, गाथा–29

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वस्तुतः लोभ कषाय एक प्रकार से किसी की प्राप्ति की इच्छा है और जहां प्राप्ति की इच्छा है या चाह है, वहां चिंता है और जहां चिंता है, वहां तनाव रहता ही है। इस प्रकार लोभ वृत्ति भी व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाती है। लोभ वृत्ति के कारण व्यक्ति अपने में अपूर्णता का बोध करता है और जहां अपूर्णता का बोध है, वहां तनाव अवश्य होता है। जब तक व्यक्ति लोभ अथवा इच्छाओं का निरोध नहीं करता है, तब तक वह तनाव में रहता है, क्योंकि वह अपने में एक कमी का अनुभव करता है और बाह्य जगत से उसकी पूर्ति की अपेक्षा रखता है। यह दोनों ही स्थितियाँ तनाव को जन्म देती हैं। कमी की अनुभूति में पूर्ति की चाह उत्पन्न होती है, जो तनाव का कारण बनती है। क्योंकि सामान्य रूप से भी यह माना जाता है कि जहां इच्छा या लालसा होती है वहां जब तक उसकी पूर्ति न हो जाए, चिंता रहती है और चिंता का अर्थ ही है मन का अस्थिर होना अथवा विचलित या परेशान होना और मन की यह स्थिति तनाव ही है। अतः लोभ कषाय भी तनाव का ही कारण है। लोभ भी चार प्रकार का कहा गया है[90] –

अनंतानुबंधी लोभ, अप्रत्याख्यानी लोभ, प्रत्याख्यानी लोभ, संज्वलन लोभ

अनन्तानुबन्धी लोभ – इस लोभ को किरमिची के रंग की उपमा दी गई। वस्त्र फट जाता है, पर किसी भी उपाय या प्रयत्न से किरमिची या पक्का रंग नहीं छूटता, उसी प्रकार अत्यधिक लोभी या तीव्रतम लोभ की इच्छा रखने वाला व्यक्ति किसी भी उपाय से अपनी लोभ की मनोवृत्ति को नहीं छोड़ता। ऐसी तीव्रतम लोभ की मनोवृत्ति लोभी व्यक्ति को इतना अधिक तनावग्रस्त कर देती है कि वह चाहकर भी तनाव से मुक्त नहीं हो पाता, क्योंकि लोभ उसे सदैव तनावग्रस्त बनाए रखता है।

अप्रत्याख्यानी लोभ – गाड़ी के पहिए के औगन के समान मुश्किल से छूटने वाला लोभ अप्रत्याख्यानी लोभ है। ऐसा लोभी व्यक्ति कोई चोट पड़ने के बाद

---

[90] स्थानांगसूत्र –4/87

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही इस मनोवृत्ति को छोड़ते हैं। ऐसे व्यक्ति को कितना भी समझाया जाए पर लोभ की चाह उसकी बुद्धि को भ्रष्ट कर देती है और जब लोभ का परिणाम सामने आता है तब उसे लोभ के दुर्गुणों की अनुभूति होती है। इस प्रकार जब लोभ से व्यक्ति को तनाव उत्पन्न होता है तो वह तनावमुक्ति की ओर अग्रसर होता है।

प्रत्याख्यानी लोभ – इस लोभ को कीचड़ के धब्बे की उपमा दी गई है। जिस प्रकार प्रयत्न करने से कीचड़ साफ हो जाता है, उसी प्रकार दिन–रात मन को समझाने के प्रयत्न करने से जो व्यक्ति अपनी लोभवृत्ति छोड़ दे, तो वह प्रत्याख्यानी लोभ के स्तर पर आ जाता है, अर्थात् उसको तनाव तो होता है, किन्तु प्रयास करने पर वह तनावमुक्त स्थिति को भी प्राप्त कर सकता है।

संज्जवलन लोभ – जो लोभ निमित्त मिलने पर पल भर में शांत हो जाए या नष्ट हो जाए, वह संज्वलन लोभ है। संज्वलन लोभ को हल्दी के लेप की उपमा दी गई है। जिस प्रकार हल्दी का लेप शीघ्रता से साफ हो जाता है, उसी प्रकार शीघ्रता से दूर हो जाने वाला लोभ तद्जन्य तनाव को भी शीघ्रता से दूर कर देता है।

इस प्रकार लोभ कषाय भी तनाव का ही कारण है। लोभ की वृत्ति आने पर वह बढ़ती ही जाती है। लोभ की यह मनोवृत्ति मन को मलिन कर देती है, बुद्धि को नष्ट कर देती है और तनाव उत्पन्न करती है, अतः तनावमुक्ति के लिए लोभ कषाय का त्याग करना आवश्यक है।

इच्छाएं और आकांक्षाए –

तनाव का मुख्य कारण राग–द्वेष हैं। इन राग–द्वेष भाव से ही व्यक्ति में इच्छाओं या आकांक्षाओं का जन्म होता है। वस्तुतः अभिलाषा, तृष्णा, चाह, कामना आदि इच्छा के ही पर्यायवाची शब्द हैं, किन्तु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से इनमें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मामूली सा अंतर हो सकता है, फिर भी भारतीय दर्शन में इनमें एक क्रम माना जा सकता है।

तनाव के कारणों में इच्छाओं व आकांक्षाओं का प्रमुख स्थान है। जैनधर्म के अनुसार सम्पूर्ण जगत् में जो कायिक, वाचिक और मानसिक कर्म (दुःख/तनाव) हैं, वह काम भोगों की अभिलाषा से उत्पन्न होता है।[91] अंगुत्तरनिकाय में लिखा है –भूतकाल, भविष्यकाल और वर्त्तमानकाल के विषयों के सम्बन्ध में, जो इच्छा है, वही कर्मों (तनाव) की उत्पत्ति का कारण है।[92] आचारांग में लिखा है कि –जिसकी कामनाएँ (इच्छाएँ) तीव्र होती है, वह मृत्यु से ग्रस्त होते हैं और जो मृत्यु से ग्रस्त होता है, वह शाश्वत सुख से दूर रहता है।[93] यहाँ मृत्यु से तात्पर्य दुःख, जन्म–मरण या संसार भ्रमण से है और शाश्वत सुख का अर्थ है मोक्ष अर्थात् पूर्णतः तनावमुक्ति।

कार्तिकेयानुप्रेक्षा में लिखा है कि –**"संकप्पमओ जीओ, सुखदुक्खमयं हवेइ संकप्पो"** अर्थात् जीव संकल्पमय है और संकल्प (इच्छा) सुख–दुःखात्मक है। जब हम इच्छाओं और आकांक्षाओं को तनावग्रस्तता का हेतु बताते हैं तो हमारे सामने एक प्रश्न खड़ा होता है कि इच्छाएं और आकांक्षाएं व्यक्ति को कैसे तनावग्रस्त बनाती हैं। इन्द्रियों के बहिर्मुख होने से जीव की रूचि बाह्य विषयों में होती है और इसी से उनको पाने की कामना और संकल्प का जन्म होता है।[94] वस्तुतः इन्द्रियों के विषयों से सम्पर्क होने पर व्यक्ति को कुछ विषय अनुकूल और कुछ विषय प्रतिकूल प्रतीत होते हैं। अनुकूल विषयों की पुनः–पुनः प्राप्ति हो और प्रतिकूल विषयों को दूर रखने की इच्छा जाग्रत होती है। जब तक व्यक्ति की यह इच्छा पूर्ण नहीं होती है, वह तनावग्रस्त हो जाता है। जैनाचार्यों ने भी मन और इन्द्रियों के अनुकूल विषयों की पुनः प्राप्ति की प्रवृत्ति को ही इच्छा कहा

---

[91] उत्तराध्ययनसूत्र, 32/19

[92] अंगुत्तरनिकाय, 3/109

[93] गुरू से कामा, तओ से मारस्स अंतो,
जओ से मारस्स अंतो, तओ से दूरे। – आचारांगसूत्र–1/5/1

[94] कार्तिकेयानुप्रेक्षा – 184

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है।[95] भविष्य में इन्द्रियों के विषयों की प्राप्ति की अभिलाषा का अतिरेक ही इच्छा है। जब सुखद अनुभूति को पुनः–पुनः प्राप्त करने की यह लालसा या इच्छा तीव्र हो जाती है तो वह गाढ़ राग का रूप ले लेती है। ये राग नियमतः तनाव का हेतु है।

प्रत्येक व्यक्ति सुख प्राप्त करना चाहता है और दुःखद अनुभूतियों से बचना चाहता है। जब उसकी यह चाहत पूरी होती है, तब वह स्वयं में तनावमुक्त एवं शांति का अनुभव करता है, किन्तु उसकी यह तनावमुक्त अवस्था चिरकाल तक नहीं रहती है, क्योंकि व्यक्ति की एक इच्छा पूरी होते ही, कुछ ही समय में दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है। दूसरी इच्छा पूर्ण हुई नहीं कि तीसरी इच्छा अपनी जगह बना लेती है। यह सिलसिला ऐसे ही चलता रहता है, क्योंकि इच्छाओं का कोई पार नहीं है। वे आकाश के समान अनन्त हैं।[96] जब कोई एक इच्छा पूरी नहीं होती तो मन दुःखी होता है और उस इच्छा को पूर्ण करने के लिए कई प्रकार के संकल्प–विकल्प करने लगता है। इसी को तनावयुक्त अवस्था कहते हैं। एक इच्छा पूर्ण हो जाए तो भी दूसरी इच्छा जन्म ले लेती है, या फिर जिस कामना के पूरी होने से जो अनुभूति हुई है, उसे पुनः–पुनः प्राप्त करने की इच्छा होती है। कई बार ऐसा भी होता है कि किसी वस्तु या व्यक्ति को प्राप्त करने की इच्छा पूर्ण होने पर व्यक्ति सुखद अनुभव करता है, किंतु कुछ ही क्षण बाद उसके नष्ट होने का या वियोग होने का भय सताने लगता है और यह भय भी तनाव उत्पत्ति का एक रूप ही है।

अतः तनावमुक्ति के लिए इच्छा–निरोध आवश्यक है। भगवान् महावीर ने भी कहा है कि –**"छंद निरोहेण उवेइ मोक्खं।"**[97] अर्थात् इच्छाओं को रोकने से ही मोक्ष (मुक्ति) प्राप्त होता है और मोक्ष तभी प्राप्त होता है, जब व्यक्ति की

---

[95] अभिधानराजेन्द्रकोश, खण्ड–2, पृ. 575

[96] इच्छा हु आगाससमा अणंतिया। – उत्तराध्ययनसूत्र –9/48

[97] उत्तराध्ययनसूत्र – 4/8

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सारी इच्छाऐं या आकांक्षाऐं समाप्त हो जाती हैं। व्यक्ति जितेन्द्रिय होकर शांति का अनुभव करता है। वस्तुतः मोक्ष की अवस्था ही पूर्णतः तनावमुक्त अवस्था है।

लेश्याओं का स्वरूप –

उत्तराध्ययनसूत्र के चौंतीसवें अध्याय में लेश्याओं के स्वरूप की चर्चा उपलब्ध होती है। जैन–विचारकों के अनुसार लेश्या की परिभाषा यह हे कि जिसके द्वारा आत्मा कर्मों से लिप्त होती है या बन्धन में आती है, वह लेश्या है।[98] वस्तुतः लेश्या मनोभावों की एक अवस्था है। जैनागमों में लेश्या दो प्रकार की मानी गई हैं – 1. द्रव्य लेश्या और 2. भाव लेश्या।

द्रव्य पक्षों में लेश्याओं के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श आदि की चर्चा की गई है, जबकि भाव पक्ष में किसी विशेष लेश्या के मनोभावों का उल्लेख किया गया है और उसके आधार पर व्यक्ति की लेश्या बताई गई है। इन दोनों पक्षों की विस्तृत चर्चा हम इसी अध्याय में आगे करेंगे, अतः इसके विस्तार में न जाकर यहाँ सर्वप्रथम हम केवल उत्तराध्ययनसूत्र में उनके जो लक्षण बताए गए हैं, उसके आधार पर तनावों की चर्चा करेंगे। व्यक्ति के मनोभाव मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं –शुभ व अशुभ। पुनः अशुभ के तीन स्तर होते हैं, अशुभतम, अशुभतर, अशुभ। उसी तरह शुभ के तीन स्तर होते हैं – शुभ, शुभतर और शुभतम। वस्तुतः लेश्याओं में जो शुभ और अशुभ मनोभाव होते हैं, वही तनाव के कारण बनते हैं। अशुभ मनोभावों में दूसरे के अहित का चिंतन होने के कारण वे तनाव के हेतु बनते हैं और शुभ मनोभावों में दूसरे के हित का चिंतन के कारण किसी स्थिति में वे भी तनाव के कारण बनते हैं। शुभ और अशुभ के जो तीन–तीन स्तर हैं, उन्हीं के आधार पर जैन आचार्यों ने लेश्याओं के निम्न छह नाम दिए हैं –

1. कृष्ण, 2. नील, 3. कापोत, 4. तेजस, 5. पदम् और 6. शुक्ल

---

[98] अभिधान राजेन्द्र, खण्ड–6, पृष्ठ 675

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इनमें प्रथम तीन अशुभ व अन्तिम तीन शुभ मानी गई हैं।

1. कृष्ण लेश्या --

इस अशुभतम मनोभाव से युक्त व्यक्तित्व के निम्न लक्षण पाए जाते हैं जो उसे तनावयुक्त बनाते हैं[99] –

1. व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक क्रियाओं पर नियन्त्रण नहीं कर पाता है।

2. भोग--विलास में आसक्त हो, वह उनकी पूर्ति के लिए हिंसा, असत्य, चोरी आदि दुष्कर्म करता है।

3. अपने स्वार्थ के लिए दूसरों का बड़े–से–बड़ा अहित करने में वह संकोच नहीं करता। ऐसा व्यक्ति क्षण भर के लिए भी शांति का अनुभव नहीं करता है।

2. नील लेश्या –

यह मनोभाव पहले की अपेक्षा कुछ ठीक होता है, लेकिन होता अशुभ ही है। उत्तराध्ययन के अनुसार ऐसा व्यक्ति ईर्ष्यालु, असहिष्णु, असंयमी, अज्ञानी, कपटी, निर्लज्ज, लम्पट, द्वेष–बुद्धि से युक्त, रसलोलुप एवं प्रमादी होता है।[100]

3. कपोत लेश्या –

यह भी अशुभ मनोवृत्ति ही है। इस मनोभाव वाले के निम्न लक्षण पाए जाते हैं[101] –

1. व्यक्ति का व्यवहार मन, वचन, कर्म से एकरूप नहीं होता।

2. उसकी करनी और कथनी भिन्न होती है।

3. मन में कपट और अहंकार होता है।

---

[99] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/21–22

[100] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/23–24

[101] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/25–26

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

4. अपने हित के लिए दूसरे का अहित करने वाला होता है।

4. तेजो लेश्या –

यहाँ मनोदशा पवित्र होती है। उत्तराध्ययन में इस लेश्या के लक्षण बताते हुए लिखा है – इस मनोभूमि में स्थित प्राणी पवित्र आचरणवाला, नम्र, धैर्यवान्, निष्कपट, आकांक्षारहित, विनीत, संयमी एवं योगी होता है।[102] इस मनोभूमि में दूसरे का अहित तो सम्भव होता है, लेकिन केवल उसी स्थिति में जबकि दूसरा उसके हितों का हनन करने पर उतारू हो जाए।

5. पद्म–लेश्या –

इस मनोभूमि में पवित्रता की मात्रा पिछली भूमिका की अपेक्षा अधिक होती है। इस शुभतर मनोवृत्ति से युक्त व्यक्ति में निम्न लक्षण पाए जाते हैं[103] –

1. क्रोध, मान, माया एवं लोभ रूप अशुभ मनोवृत्तियाँ अतीव अल्प हो जाती हैं।
2. व्यक्ति संयमी तथा योगी होता है।
3. वह अल्पभाषी, उपशांत एवं जितेन्द्रिय होता है।
4. वह आत्मजयी एवं प्रफुल्लित चित्त होता है।

6. शुभ–लेश्या –

यह शुभतम् मनोवृत्ति है। पिछली मनोवृत्ति के सभी शुभ गुण इस अवस्था में भी वर्तमान रहते हैं, लेकिन उनकी विशुद्धि की मात्रा अधिक होती है। इस लेश्या में निम्न लक्षण पाए जाते हैं –

1. व्यक्ति जितेन्द्रिय एवं प्रसन्नचित्त होता है।
2. उसके जीवन का व्यवहार इतना मृदु होता है कि अपने हित के लिए दूसरों को तनिक भी कष्ट नहीं देना चाहता है।
3. मन–वचन–कर्म से एकरूप होता है।

---

[102] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/27–28

[103] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/29–30

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

4. बिना किसी अपेक्षा के वह मात्र स्वकर्त्तव्य के परिपालन में सदैव जागरूक रहता है।

5. सदैव स्वधर्म एवं स्वस्वरूप में निमग्न रहता है।

लेश्या और तनाव –

उपर्युक्त वर्गीकरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अशुभ मनोवृत्तियाँ तीव्र तनाव का हेतु हैं और शुभ मनोवृत्तियाँ अल्प तनाव की अवस्था है। वस्तुतः इन छह लेश्याओं में अंतिम तीन लेश्या ऐसी हैं, जिनमें तनाव अल्प मात्रा में ही उत्पन्न होते हैं। विशेष रूप से शुक्ल लेश्या में व्यक्ति केवल साक्षीभाव में स्थिर रहता है, वह ज्ञाता–द्रष्टाभाव में रहता है, उसके राग–द्वेष के भाव क्षीण हो जाते हैं। उसका 'पर' से सम्बन्ध नहीं रहता है, अतः उसकी वृत्ति केवल इतनी ही होती है कि मैं किसी का अहित न करूँ, अतः वह प्रायः तनावमुक्त रहता है।

उत्तराध्ययनसूत्र में जो लेश्या की चर्चा है, उसके आधार पर हम इतना ही कह सकते हैं कि शुक्ल लेश्या वाला व्यक्ति तनावमुक्त रहता है, बाकी में तनाव की तरमता होती है। कृष्ण लेश्या वाला व्यक्ति सबसे अधिक तनावग्रस्त रहता है, उसकी ऊपर की लेश्याओं में क्रमशः तनावों में कमी होती जाती है और शुक्ल लेश्या तनावरहित अवस्था होती है।

लेश्या मनुष्य की वैचारिक तथा मानसिक परिणामों की अभिव्यक्ति है। आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार –'लेश्या हमारी चेतना की रश्मि हैं।' जिस प्रकार सूर्य की रश्मियाँ होती हैं, जो सूर्य की अभिव्यक्ति रूप होती हैं, उसी प्रकार लेश्या हमारी चेतना की रश्मि हैं, जो चेतना के आध्यात्मिक विकास के स्तर को अभिव्यक्त करती हैं। चेतना अदृश्य हैं, परन्तु उसकी अभिव्यक्ति शरीर के आभा मण्डल के माध्यम से बाहर भी होती है, ठीक उसी प्रकार जिस तरह स्विच ऑन करने पर अदृश्य करंट की अभिव्यक्ति ट्यूबलाईट के प्रकाश के द्वारा होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन के परिणाम ही हमें तनावयुक्त बनाते हैं। शुभ मनोभाव तनावमुक्त और अशुभ मनोभाव तनावयुक्त करते हैं। तनाव से मुक्त और तनाव से युक्त मनोभावों के निमित्त से लेश्या भी शुभ और अशुभ दोनों प्रकार की होती हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि शुभ लेश्या वाला व्यक्ति तनावमुक्ति की ओर अग्रसर है, और अशुभ लेश्या वाला तनावयुक्त व्यक्ति है।

लेश्याओं का नामकरण रंगों के आधार पर किया जाता है। वर्णों के माध्यम से मनुज–मन की शुभ या अशुभ स्थिति को जाना जा सकता है। इसलिए लेश्या के सिद्धांत को वर्णों पर आधारित किया गया है।

लेश्या की परिभाषा – जैनदर्शन ने लेश्या का सम्बन्ध केवल मनुष्य से नहीं, अपितु सभी प्रकार के जीवों के साथ माना गया है। लेश्याओं के समानांतर कुछ मान्यताओं का वर्णन हमें प्राचीन श्रमण परम्पराओं में मिलता है, जिसकी चर्चा पूर्व में कर चुके हैं, यहाँ लेश्या की परिभाषा पर विचार करेंगे।

षट्खण्डागम में लिखा है कि –जो आत्मा और कर्म का सम्बन्ध कराने वाली है, वही लेश्या है।'[104] कर्मों का बंध तभी होता है, जब व्यक्ति रागद्वेष के कारण तनाव युक्त होता है। वस्तुतः तनावग्रस्तता के वशीभूत व्यक्ति ऐसे अनेक कार्य करता है जो उसके गाढ़ कर्मबंध का कारण होते हैं और जिनके परिणामस्वरूप व्यक्ति स्वयं के व्यक्तित्व का सम्यक विकास नहीं कर पाता है।

तनाव व्यक्ति की लेश्या को प्रभावित करते हैं और लेश्या व्यक्ति के व्यक्तिव को प्रभावित करती है। जिस तरह पूर्व में बंधे हुए कर्म उदय में आते हैं और उनके विपाक की स्थिति में नये कर्मों का बंध भी होता रहता है, उसी प्रकार लेश्या का उदय होने पर तनाव उत्पन्न भी होता है और तनाव के कारण लेश्या की संरचना होती है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि किसी व्यक्ति में अशुभ लेश्या का उदय होगा तो वह किसी दूसरे को कष्ट देने का विचार करेगा और जब भी किसी के अहित की बात हमारी चेतना में आती है तो हम

---

[104] अ) लेश्या और मनोविज्ञान –मु. शांता जैन, पृ. 7, ब) अभिधानराजेन्द्र खण्ड–6, पृ.675

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तनावग्रस्त हो जाते हैं। अशुभ वृत्तियों में तनाव ग्रस्तता की मात्रा अधिक होती है। जबकि बिना राग–द्वेष की भावना के हित की बात आती है तो वहां शुभ लेश्या होती है, तब इतना अधिक तनाव भी उत्पन्न नहीं होता है। अशुभ लेश्या अधिक तनावग्रस्त बनाती है और शुभ लेश्या तनावों को अल्प कर शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शान्ति प्रदान करती है। अशुभ लेश्या के कारण तनाव उत्पन्न होता है, क्योंकि इस लेश्या वाले व्यक्ति का व्यवहार, उसका स्वभाव, उसकी भावना आदि सम्यक् नहीं होती। उत्तराध्ययनसूत्र में लिखा है –कृष्ण, नील और कपोत – ये तीनों अधर्म या अशुभ लेश्याएं हैं, इनके कारण जीव दुर्गतियों में उत्पन्न होता है।[105]

इसके विपरीत तेजो, पद्म और शुक्ल – ये तीन शुभ लेश्याएँ हैं, इनके कारण तनाव कम होते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में लिखा है कि –तेज, पद्म और शुक्ल ये तीन धर्म या शुभ लेश्याएं हैं। इनके कारण व्यक्ति तनावमुक्ति का प्रयास करता है। जब शुभ लेश्या का उदय होता है, तो तनावमुक्ति की प्रक्रिया शुरू हो जाती है और यह तनावमुक्ति की प्रक्रिया धीरे–धीरे तेजो लेश्या से शुक्ल लेश्या की ओर अग्रसर होती है। शुक्ल लेश्या में व्यक्ति पूर्णतः तनावमुक्त स्थिति का अनुभव करता है।, इस स्थिति में देह का त्याग करने पर जीव विविध सुगतियों में उत्पन्न होता है।[106]

सुगति में वही व्यक्ति जा सकता है, जिसका व्यवहार और स्वभाव निर्मल हो, जिसका मानसिक संतुलन स्थिर हो, विवेकशील और सभी से आत्मवत् वात्सल्यभाव रखता हो। यहाँ हमने अशुभ तथा शुभ लेश्याओं के स्वरूप को और उनका तनाव से सह–सम्बन्ध को बताया है। लेश्याओं के विभिन्न प्रकारों का वर्णन और उनका तनाव के साथ सह–सम्बन्ध आगे दिया जाएगा।

---

[105] उत्तराध्ययनसूत्र –34/56

[106] वही, 34/57

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यह व्यक्ति की प्रवृत्ति पर ही निर्भर है, कि वह तनावयुक्त है या तनावमुक्त। व्यक्ति की प्रवृत्ति ही उसकी लेश्या बनती है। व्यक्ति जब कभी अच्छी प्रवृत्ति करता है, अच्छा चिन्तन, अच्छे भाव, अच्छे कार्य करता है, उस समय उसकी शुभ लेश्या होती है, या यह कहा जाए कि तनावों की अतिअल्पता की स्थिति होती है। व्यक्ति जब कभी बुरी प्रवृत्ति करता है, बुरा चिन्तन, बुरे भाव और बुरे कार्य करता है तो उस समय उसको अशुभ लेश्या उदय में आती है या नई अशुभ लेश्या निर्मित हो जाती है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति तनावयुक्त हो जाता है।

मन की चंचलता तनाव पैदा करती है और मन की चंचलता से ही लेश्या भी निर्मित होती है। मन में जैसे भाव हैं, वैसी ही हमारी लेश्या होगी। मनोभाव बार–बार बदलते रहते हैं। विचार बार–बार बदलते रहते हैं और शुभाशुभ भावों के उतार–चढ़ाव में व्यक्ति कभी स्वयं को तनावमुक्त और कभी तनावग्रस्त अनुभव करता है। इन्हीं भावों के आधार पर व्यक्ति के तनाव का स्तर लेश्याओं के द्वारा जाना जा सकता है।

लेश्या के प्रकार एवं तनाव का स्तर –

जैनागमों में लेश्या दो प्रकार की मानी गई हैं[107] – 1. द्रव्य लेश्या और 2. भाव–लेश्या

1. द्रव्य लेश्या – द्रव्य लेश्या को उसके वर्ण, गंध, रस आदि के पौद्गलिक आधार पर छः भागों में बांटा गया है। द्रव्य लेश्या पौद्गलिक है। "द्रव्य–लेश्या सूक्ष्म भौतिक तत्त्वों से निर्मित वह आंगिक रचना है जो हमारे मनोभावों का सापेक्ष रूप में कारण अथवा कार्य बनती है।"[108] जिस प्रकार पित्त द्रव्य की विशेषता से स्वभाव में क्रोधीपन आता है और क्रोध के कारण पित्त का निर्माण बहुल रूप में होता है, उसी प्रकार इन सूक्ष्म भौतिक तत्त्वों से मनोभाव बनते हैं

---

[107] भगवतीसूत्र – 15 शतक, 5 उ.

[108] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन –भाग 1, पृ. 512

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और मनोभाव के होने पर इन भौतिक सूक्ष्म संरचनाओं का निर्माण होता है, जिसे हम द्रव्य लेश्या कहते हैं। द्रव्य लेश्या का सम्बन्ध शरीर से है। अगर शारीरिक संरचना में असंतुलन होता है तो उसका असर मन पर भी पड़ता है, क्योंकि द्रव्य मन भी एक प्रकार की शारीरिक संरचना है, अतः वह भी असंतुलित अथवा विचलित हो जाता है। अतः द्रव्य लेश्या से मनोभाव बनते हैं और मनोभावों से द्रव्य लेश्या। इसका उदाहरण हम पूर्व में दे चुके हैं।

2. भाव–लेश्या – वैसे तो द्रव्य लेश्या के बिना भाव लेश्या और भाव लेश्या के बिना द्रव्य लेश्या नहीं होती। दोनों ही एक–दूसरे से प्रभावित होती हैं, फिर भी भावलेश्या का स्वरूप द्रव्य लेश्या से बिल्कुल भिन्न है। "जहाँ द्रव्य लेश्या पौद्गलिक वर्गनाएँ हैं, वहाँ भावलेश्या चैत्तसिक परिणमन है।[109] जिस प्रकार वर्णों के आधार पर छः लेश्याओं का विभाजन किया गया है उसी प्रकार मनोभाव के स्तर के अनुसार भी उन छः लेश्याओं के पौद्गलिक स्वरूप को समझाया गया है। जैसे भावलेश्या का आवेगों के अपेक्षा तीव्रतम, तीव्रतर, तीव्र, मन्द, मन्दतर और मन्दतम स्तर होगा, वैसा ही व्यक्ति के मानसिक तनावों का स्तर होगा।

मनोभावों की अशुभ से शुभ की ओर या तनावों की तीव्रता से मन्दतम की ओर बढ़ने की स्थितियों के आधार पर ही उन लेश्याओं के विभाग किए गए हैं। "उत्तराध्ययनसूत्र में निम्न छह लेश्याओं के नाम वर्णित हैं[110] – 1. कृष्ण, 2. नील, 3. कापोत, 4. तेज, 5. पद्म, 6. शुक्ल

अब हम पृथक्–पृथक रूप से इन छह लेश्याओं का तनाव के साथ क्या सह–सम्बन्ध है, इसकी चर्चा करेंगे।

विविध लेश्याएँ और तनाव –

1. कृष्ण लेश्या :

---

[109] लेश्या और मनोविज्ञान – भू. डॉ. शान्ता जैन, पृ. 39

[110] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/3

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कृष्ण लेश्या वाला व्यक्ति तनाव से कभी भी मुक्त नहीं होता। इस अवस्था में व्यक्ति के विचार, उसकी भावनाएँ अत्यन्त निम्न कोटि की और क्रूर होती हैं। 'कृष्ण लेश्या में व्यक्ति का वासनात्मक पक्ष उसके जीवन के सम्पूर्ण कर्मक्षेत्र पर हावी रहता है।'[111] व्यक्ति अपनी शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक क्रियाओं पर नियंत्रण रखने में सक्षम नहीं होता। वह अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं रख पाता है। इन्द्रियों के विषयों की पूर्ति हेतु, बिना विचाए किए, क्रूर कार्य करने के लिए तत्पर रहता है। अपने स्वार्थ के लिए दूसरों को तकलीफ देने, उनका अहित करने और हिंसा, असत्य, चोरी, व्याभिचार और संग्रहवृत्ति में लगा रहता है। उसका स्वभाव निर्दयी, क्रोधी और कठोर होता है। जिस व्यक्ति में घृणा और विद्वेष हो, जिसका स्वभाव अत्यधिक क्रूर हो, वह व्यक्ति कभी शांत नहीं रह सकता। उसके बाहरी जीवन में भी अशांति होती है और आंतरिक मन में भी अशांति होती है। वह तनाव से इतना अधिक ग्रस्त रहता है कि अपने ही स्वभाव के कारण अपने सहनशीलता, सांमजस्य, करूणा, दया, आत्मविश्वास आदि गुणों को नष्ट कर देता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं भी तनावग्रस्त रहता है और दूसरों को भी तनावग्रस्त करता है। कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति की मानसिक स्थिति असंतुलित होती है। ऐसी स्थिति में वह कभी भी स्वयं को एक क्षण के लिए भी शांति नहीं दे पाता है। उत्तराध्ययनसूत्र में भी कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति के लक्षण बताते हुए कहा गया है कि –"इस लेश्या से युक्त व्यक्ति तीन गुप्तियों से अगुप्त, षट्कायिक जीवों के प्रति असंयमी, हिंसा आदि में परिणत और क्रूर होता है।"[112] वह सदैव तनावग्रस्त रहता है। गोम्मटसार जीवकाण्ड में लिखा है –"स्वभाव की प्रचण्डता, वैर की मजबूत गाँठ के कारण वह झगड़ालू वृत्ति का तथा करूणा व दया से शून्य होता है, वह दुष्ट, समझाने से भी नहीं मानने वाला होता है, ये कृष्ण लेश्या के लक्षण हैं।"[113]

---

[111] जैन,बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन–भाग.1, डॉ.सागरमल जैन, पृ.514

[112] उत्तराध्ययनसूत्र, –34/21

[113] गोम्मटसार, जीवकाण्ड – 509

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. नील लेश्या –

इस लेश्या वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व पहले प्रकार की अपेक्षा कुछ ठीक तो होता है, किन्तु उसकी वृत्ति अशुभ व अशुद्ध ही होती है। ऐसा व्यक्ति भी अन्तर से तो दुर्भावनाग्रस्त ही होता है, परन्तु वह उसे बाहर प्रकट करने में संकोच करता है। इस व्यक्ति में वे सब दुर्गुण होते हैं जो कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति में होते हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में लिखा है कि जो ईष्यालु हैं, असहिष्णु हैं, अतपस्वी हैं, अज्ञानी हैं, मायावी हैं, निर्लज्ज हैं, विषयासक्त हैं; धूर्त्त हैं, प्रमादी हैं, रसलोलुप हैं, जो आरम्भ में अविरत हैं, क्षुद्र हैं, दुःसाहसी है, इन दुर्गुणों से युक्त मनुष्य नील लेश्या वाला होता है।[114] कृष्ण लेश्या और नील लेश्या में अन्तर मात्र इतना है कि कृष्ण लेश्या वाले की अभिव्यक्ति अति तीव्र होती है, और नील लेश्या वाले की तीव्रतम होती है। नील लेश्या वाला व्यक्ति अपनी स्वार्थ वृत्ति की पूर्ति के लिए दूसरों का अहित अप्रत्यक्ष रूप से करता है। छल, कपट, मायाचार से अपनी वासनाओं की पूर्ति करता है। ऐसे व्यक्ति में भय की प्रवृत्ति होती है कि कहीं कोई मुझे बुरा व्यक्ति न समझ ले। वह सदैव अपनी सुख–सुविधाओं का ध्यान रखता है। दूसरे का हित भी अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए करता है। जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन में इसका निम्न उदाहरण प्रस्तुत किया गया है –"जैसे बकरा पालने वाला बकरे को इसलिए नहीं खिलाता कि उससे बकरे का हित होगा, वरन् इसलिए खिलाता है कि उसे मारने पर अधिक मांस मिलेगा।"[115]

ऐसा व्यक्ति अपने दुष्प्रवृत्तियो के कारण तनावग्रस्त ही रहता है। उसकी सोच सदैव यह रहती है कि स्वार्थ पूर्ति हेतु किस प्रकार से मायाचार करूं। अपने स्वार्थों की पूर्ति होने पर भी ऐसे व्यक्ति को कभी संतुष्टि नहीं होती है, क्योंकि वह सदैव ऐन्द्रिक विषयभोगों में आसक्त बना रहता है। स्वयं तो अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं के कारण तनावग्रस्त रहता ही है, और मायाचार से

---

[114] उत्तराध्ययनसूत्र, 34/23–24

[115] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सागरमल जैन,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दूसरों को भी गहरा आघात पहुंचाने से भी नहीं चूकता है। उसके ऐसे व्यक्तित्व के कारण दूसरे व्यक्ति का उस व्यक्ति पर से विश्वास उठ जाता है। ऐसा व्यक्ति अविश्वास और भय से सदैव तनावग्रस्त रहता है, जो आज के युग की सबसे बड़ी समस्या है। अविश्वास से ही भय उत्पन्न होता है और भय से तनाव। 'मन्दता, बुद्धिहीनता, अज्ञान, विषय--लोलुपता, अविश्वास तथा भय, ये संक्षेप में नील लेश्या वाले व्यक्ति के लक्षण हैं।[116] इन लक्षणों से युक्त व्यक्ति तनावपूर्ण स्थिति में होता है।

3. कापोत–लेश्या –

यह मनोवृत्ति भी दूषित है। इस मनोवृत्ति में प्राणी का व्यवहार मन, वचन, कर्म से एक रूप नही होता है। उसकी करनी और कथनी भिन्न–भिन्न होती है।[117]

यद्यपि पूर्व की दो लेश्याओं की अपेक्षा इसकी मनोवृत्ति कम दूषित होती है, लेकिन अपने हित के लिए दूसरे का अहित करने में इस व्यक्ति को तनिक भी संकोच नहीं होता है। ऐसा व्यक्ति ईर्ष्यालु प्रवृत्ति का होता है और ईर्ष्या के कारण तनावग्रस्त रहता है, क्योंकि तनाव में ईर्ष्या का सबसे बड़ा योगदान होता है। 'जो व्यक्ति वाणी से वक्र है, कपटी है, सरलता से रहित है, स्वदोष छिपाने वाला है, मत्सरी है, वह अपने इन दुर्गुणों के कारण कापोत लेश्या वाला होता है।[118]

वचन से किसी को अपशब्द कहना, दूसरों की गुप्त बात प्रकट करना, काया से किसी को नुकसान पहुंचाना, वस्तुओं की तोड़–फोड़ में आनन्द लेना, मन में मत्सरी भाव रखना, मन पर नियंत्रण नहीं होना -- ये कापोत लेश्या वाले व्यक्ति के प्रमुख लक्षण हैं। ये सब भी तनाव के प्रमुख कारणों में ही आते हैं,

---

[116] गोम्मटसार, जीवकाण्ड –510

[117] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग.1, डॉ.सागरमल जैन, पृ. 515

[118] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/25–26

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतः ऐसा व्यक्ति भी तनावग्रस्त रहता ही है, चाहे उनकी तीव्रता कुछ कम हो। यह व्यक्ति अपने सम्पर्क में रहे हुए व्यक्ति को भी प्रलोभन बताकर और इच्छाओं को उत्तेजित कर तनावग्रस्त बना देता है। 'जल्दी से रूष्ट हो जाना, दूसरों की निन्दा करना, दोष लगाना, अति शोकाकुल होना, अत्यन्त भयभीत होना – ये गोम्मटसार के अनुसार कापोत लेश्या के लक्षण हैं।[119]

4. तेजो लेश्या –

यहाँ मनोदशा शुभ होती है। इस लेश्या से युक्त व्यक्ति पूर्णतः तनाव से मुक्त तो नहीं होता, लेकिन उसके तनावों का स्तर अपेक्षाकृत मन्द होता है। ऐसे व्यक्ति में इच्छाएं और आकांक्षाएं तो होती है, किन्तु उनकी पूर्ति के लिए वह किसी दूसरे व्यक्ति को आघात पहुंचाने में संकोच करता है। वह दूसरों का अहित उसी स्थिति में करता है, जब उसके हित को चोट पहुंचती है। इच्छा पूर्ण न होने पर वह स्वयं को तनावग्रस्त महसूस करने लगता है, लेकिन उसके लिए दूसरों को अधिक कष्ट नहीं देना चाहता है। 'ऐसे व्यक्ति नम्र वृत्ति वाला, अचपल, माया से रहित, विनयवान, गुणवान, धर्मप्रेमी, दृढ़धर्मी, पापभीरू और हितैषी होते हैं।'[120] कार्य–अकार्य का ज्ञान, श्रेय–अश्रेय का विवेक, सबके प्रति समभाव, दया–दान में प्रवृत्ति –ये पीत या तेजो लेश्या वाले व्यक्ति के लक्षण है।[121]

ऐसे व्यक्ति गुणवान, दयालु, करूणायुक्त और सामंजस्य रखने वाले होते हैं, किन्तु जब कोई दूसरा व्यक्ति उसका अहित या नुकसान पहुंचाने पर उतारू हो जाए तो वह भी उस व्यक्ति का अहित करने में पीछे नहीं हटता। ऐसी प्रवृत्ति करते समय व्यक्ति स्वयं को तनावग्रस्त अनुभव करता है और उससे पीछे हटने का प्रयत्न भी करने लगता है, क्योंकि वह तनाव का इच्छुक नहीं होता। जैसे कोई अहिंसक व्यक्ति डाकुओं द्वारा अपहरण कर लिया गया हो और उसे

---

[119] गोम्मटसार, जीवकाण्ड, 512

[120] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/27–28

[121] गोम्मटसार, जीवकाण्ड – 515

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मृत्यु के घाट उतारा जाए तो ऐसी स्थिति में वह स्वयं की सुरक्षा के लिए उनके अहित का इच्छुक न होते हुए भी उन डाकुओं को मारने में प्रवृत्त होता है।

उपर्युक्त लक्षणों के आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि तेजो लेश्या वाला व्यक्ति हिंसक कार्य या दुष्ट प्रवृत्ति भले ही न करे पर इच्छाओं, आकांक्षाओं के कारण तनावग्रस्त तो रहता है।

5. पद्म लेश्या –

इस लेश्या वाले व्यक्ति की मनोवृत्ति में पवित्रता की मात्रा तेजो लेश्या से कुछ अधिक होती है। ऐसा व्यक्ति शुद्ध भावना वाला होता है। सामान्यतया वह व्यक्ति प्रायः तनावों से मुक्त रहता है और पूर्णतः तनावमुक्ति के लिए अग्रसर होता है। उसका मानसिक संतुलन बना रहता है। इस मनोदशा में तनाव उत्पन्न करने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ, क्रूरता, दुष्ट प्रवृत्ति आदि कारक बहुत कम होते हैं। डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं कि –"इस मनोदशा में क्रोध, मान, माया, लोभ रूप अशुभ मनोवृत्तियाँ अतीव अल्प अर्थात् समाप्त प्रायः हो जाती हैं।"[122]

तनाव उत्पन्न करने वाले ये चार घटक जब अतिव अल्प हो जाते हैं, तब व्यक्ति का जीवन आत्मिक संतोष एवं शांति से व्यतीत होता है, उसे न तो किसी से भय होता है और न ही किसी से घृणा। उसमें त्यागशीलता, परिणामों में भद्रता, व्यवहार में प्रामाणिकता, कार्य में ऋजुता, अपराधियों के प्रति क्षमाशीलता, साधु–गुरूजनों की पूजा–सेवा में तत्परता के गुण होते हैं जो पद्म लेश्या के लक्षण हैं।[123] पद्म लेश्या वाले व्यक्ति के मन में प्राणी मात्र के प्रति भी वात्सल्य भाव व करूणा होती है। वह अल्पभाषी, उपशांत एवं जितेन्द्रिय होता है।[124] जिसके फलस्वरूप व्यक्ति तनावमुक्त एवं मोक्ष अवस्था प्राप्त करने की

---

[122] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, भाग.1, डॉ. सागरमल जैन, पृ. 516

[123] गोम्मटसार, जीवकाण्ड – 516

[124] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/29–30

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ओर अग्रसर होता है। पूर्णतः तनावमुक्त अवस्था ही मोक्ष की प्राप्ति है, अतः उसके प्रयत्न उस दिशा में होते हैं।

6. शुक्ल लेश्या –

शुक्ल–लेश्या होने पर व्यक्ति पूर्णतः तनावमुक्त अवस्था में होता है। हम यह भी कह सकते हैं कि तनावमुक्त अवस्था तभी प्राप्त होती है, जब व्यक्ति शुक्ल लेश्या में प्रवेश कर लेता है।

यह मनोभूमि परमशुभ मनोवृत्ति है। इस लेश्या से युक्त व्यक्ति के जीवन का व्यवहार इतना मृदु होता है कि वह अपने हित के लिए दूसरों को तनिक भी कष्ट नहीं देना चाहता। उसकी मानसिक स्थित बहुत ही शांत एवं संतुलित रहती है। कैसी भी परिस्थिति आए, उसका सामना अपने आत्मविश्वास, सहनशीलता और बिना मन को विचलित किए समझदारी से करता है। वह न तो स्वयं ही तनावग्रस्त होता है और न दूसरों को ही तनावग्रस्त बनाता है। 'वह मन–वचन– कर्म से एकरूप होता है तथा उसका उन तीनों पर नियंत्रण होता है।'[125] जिसका इन तीनों योगों पर नियंत्रण हो, वह योगी होता है। योगी ही तनावमुक्त अवस्था को प्राप्त करता है। शुक्ललेश्या वाला व्यक्ति सदैव स्वधर्म एवं स्वस्वरूप में निमग्न रहता है।[126] पक्षपात न करना, भोगों की आकांक्षा न करना, सब में समदर्शी रहना, राग–द्वेष तथा ममत्व से दूर रहना शुक्ल लेश्या के लक्षण हैं।[127] जैनदर्शन के अनुसार तनाव का मूल कारण राग–द्वेष हैं। इस लेश्या वाला व्यक्ति राग–द्वेष से पूर्णतः मुक्त रहता है। जिसने तनाव उत्पत्ति के मूल हेतुओं का क्षय कर दिया वह पूर्णतः तनावमुक्त होता है और उसकी लेश्या शुक्ल लेश्या होती है।

————000————

---

[125] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग.1, डॉ.सागरमल जैन, पृ.516

[126] उत्तराध्ययनसूत्र – 34/31–32

[127] गोम्मटसार जीवकाण्ड – 517

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्याय – 5 तनाव प्रबंधन की विधियाँ

(अ) तनाव प्रबंधन की सामान्य विधियाँ

1. शारीरिक विधियाँ
2. भोजन सम्बन्धी विधियाँ
3. मानसिक विधियाँ
   - एकाग्रता
   - भूलने की क्षमता
   - योजनाबद्ध चिन्तन
   - सकारात्मक सोच
   - सम्यक् जीवन-दृष्टि
   - आत्म विश्वास
   - कठिन परिश्रम
4. वैज्ञानिक विधियाँ

(ब) जैनधर्म दर्शन में तनाव प्रबंधन की विधियाँ

1. आत्म-परिशोधन – विभाव दशा का परित्याग
2. ध्यान और योगसाधना और उससे तनावमुक्ति
3. आर्त्त और रौद्रध्यान तनाव के हेतु तथा धर्म और शुक्लध्यान से तनावमुक्ति
4. आचारांग से ममत्व का स्वरूप और ममत्व त्याग एवं तृष्णा पर प्रहार
5. स्थानांगसूत्र और ध्यानशतक के ध्यान के लक्षण, साधन आदि का विचार
6. इच्छा निर्मूलन और तनावमुक्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–5

तनाव प्रबंधन की विधियाँ

"मन संसार की सबसे शक्तिशाली वस्तु है। जिसने अपने मन को वश में कर लिया है, वह संसार की किसी भी चीज को नियंत्रित कर सकता है।"

-- स्वामी शिवानंद

मन हमारी वह शक्ति है, जिसके द्वारा हम अपने प्रति जागरूक हो सकते है, अपने वैभाविक स्वरूप एवं स्वभाविक स्वरूप का बोध कर सकते है। जब मन प्रशांत होता है, अन्तर्मुखी होता है, तो हम शांति या आनंद का अनुभव करते है। किन्तु यदि मन बहिर्मुख, अनियंत्रित एवं असंतुलित होता है तो हम तनावग्रस्त हो जाते हैं। सदैव द्वन्द्व में अर्थात् दो पक्षों के बीच अनिश्चय उलझे रहते हैं। यह द्वन्द्व की अवस्था मनुष्य को तनावग्रस्त बनाती है। जैसे – राग–द्वेष, पंसद--नापसंद, प्रेम–घृणा, क्रोध–शांति, सुख–दुःख, ईर्ष्या--सौमनस्य, आदि।

किसी ने कहा है "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।" भारतीय चिंतकों ने कहा है –हमारे बंधन का कारण भी हमारा मन है और हमारी मुक्ति हेतु भी मन है। जीवन का सारा खेल मन की इच्छा शक्ति पर निर्भर है। मन ही प्रेरक है, मन ही प्रेरणा है। मन सर्जक भी है और विध्वंसक भी है। जैसा कि पहले बताया है, कि तनाव का जन्म मन में ही होता है, तो अगर मन को ही साध लिया जाए तो तनाव का जन्म ही नहीं होगा और यदि तनाव का जन्म नहीं होगा तो उनसे मुक्ति का प्रश्न ही नहीं उठेगा। अतः भारतीय धर्मों की दृष्टि में मन की साधना ही तनाव प्रबंधन का मुख्य आधार है।

'उत्तराध्ययनसूत्र में महावीर कहते है कि मन के संयमन से एकाग्रता आती है जिससे ज्ञान प्रकट होता है।[1]" अज्ञान की समाप्ति और सत्य दृष्टिकोण की उपलब्धि होती है। तनावमुक्ति के लिए अनिवार्य शर्त है–मनःशुद्धि। बौद्धदर्शन में भी कहा गया है कि –"जो सदोष मन से आचरण करता है, भाषण

---

1. उत्तराध्ययन, 29 / 57

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

करता है उसका दुःख वैसे ही अनुगमन करता है जैसे रथ का पहिया घोडे के पैर का अनुगमन करता है[2]" और जो स्वच्छ मन से भाषण एवं आचरण करता है उसका सुख वैसे ही अनुगमन करता है जैसे साथ नही छोड़ने वाली छाया।[3] तीसरे अध्याय में हम इसका विस्तृत विवेचन कर चुके है। उपर्युक्त विवेचना से यही सिद्ध होता है कि सभी आचार दर्शनों ने एवं मनोवैज्ञानिक विचारकों ने मन को ही तनावों की उत्पत्ति का और तनावों से मुक्ति का प्रबलतम कारण माना है। कहते है कि नदी का प्रवाह रोकना सम्भव है किन्तु मन पर नियंत्रण रखना कठिन है, लेकिन सतत् अभ्यास और उचित साधना द्वारा इसमें सफलता प्राप्त की जा सकती है। कुछ लोग नये साधकों को मन को वश में करने के लिए ध्यान कि विविध प्रक्रियाओं को अपनाने की सलाह देते है। लेकिन जिन लोगों का मन बहुत अधिक चंचल और व्याकुल होता है उन्हें ध्यान कि ये प्रक्रियाएँ कठिन लगती है। उन्हें तो तनाव प्रबंधन कि सरल विधियाँ अपनाने की सलाह दी जाना चाहिए। जिससे साधक सहज तनावमुक्त हो सके। मैं यहाँ तनाव प्रबंधन की भी कुछ सरल विधियाँ दे रही हूँ, जिन्हें अपनाने से सम्यक रूप से तनाव प्रबंधन सम्भव हो सकता है। ये विधियाँ निम्न है:–

तनाव प्रबंधन की सरल विधियाँ :–

1. शारीरिक विधियाँ –

   अ. शरीर शुद्धि की क्रियाएँ.
   ब. योगासन और व्यायाम.
   स. प्राणायाम (श्वास–प्रश्वास का संतुलन)
   द. शरीर प्रेक्षा, ध्यान और आनापानसति (श्वासोच्छवास की स्मृति)
   ई. कायोत्सर्ग

2. भोजन संबंधी विधियाँ –

---

2. धम्मपद–1

3. धम्मपद–2

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3. मानसिक विधियाँ–
   अ. एकाग्रता.
   ब. योजनाबद्ध चिन्तन.
   स. सकारात्मक सोच
   द. आत्म–विश्वास
   ई. पुरूषार्थ जगाए.
   फ. कठिन परिश्रम
4. मनोवैज्ञानिक विधियाँ[4] –
   अ. प्रत्यक्ष विधियाँ.
   ब. अप्रत्यक्ष विधियाँ.

1. शारीरिक विधियाँ –

तनाव प्रबंधन के लिए शारीरिक विधियाँ क्यों और कैसे प्रभावी होती है? इसे जानने के पूर्व यह जानना आवश्यक है कि तनाव और शरीर का संबंध क्या है ?

प्रस्तुत अध्याय से हमारा विवेच्य विषय है– तनाव प्रबंधन। तनाव प्रबंधन के लिए शरीर, आहार, श्वासोच्छवास और मन को साधना बहुत जरूरी है। उन्हें साधे बिना तनाव प्रबंधन सम्भव नहीं है। तनाव प्रबंधन का मुख्य लक्ष्य होता है, आत्मा, शरीर एवं मन को अपने स्वाभाविक दशा में लाना। उन्हें वैभाविक स्थिति से स्वाभाविक स्थिति में लाना। मनुष्य के लिए शरीर एक उपहार है। हम शरीर को अपनी स्वाभाविक दशा में रखकर तनावों से मुक्ति प्राप्त कर सकते है। स्वस्थता ही शरीर का स्वभाव है, वह एक आंतरिक व्यवस्था है, स्वशासित है। रोग शरीर में बाहर से आते है। वे शरीर की विभावदशा या विकृति के सूचक है और यह विभावदशा दैहिक तनावों को उत्पन्न करती है। तन और मन स्वस्थ रहे, अर्थात् अपने में रहे तो व्यक्ति तनाव मुक्त रहेगा। स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन, तनाव मुक्ति की प्राथमिक शर्त है।

---

4. Gates and others – Educational Psychology, Page-692.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन की विकृति शरीर पर और शारीरिक विकृति मन को प्रभावित करती है फिर भी शारीरिक स्वास्थ्य कि अपेक्षा हमें मानसिक स्वास्थ्य को प्राथमिकता देनी होगी, क्योंकि शारीरिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए मानसिक रूप से स्वस्थ रहना भी बहुत जरूरी है। मानसिक स्वस्थता तभी होगी, जब मन तनावमुक्त होगा। तनाव सबसे भयानक रोग है। तनाव लू की तरह है, जैसे तेज गर्म हवाएं हमारे शरीर के जल को सोख लेती हैं, तनाव भी हमारी मानसिक शान्ति का हरण कर लेते हैं। आज संसार में जितनी भी बीमारियाँ हैं, उनमें अधिकांश का कारण मनुष्य के मन मे पलने वाली चिन्ता, आवेग एवं तनाव ही है। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए मन का स्वस्थ होना जरूरी है और मन को स्वस्थ रखने के लिए उसका प्रसन्न और तनावमुक्त होना आवश्यक है। "मन को स्वस्थ किये बगैर जब भी तन का इलाज होगा– वह निष्प्रभावी ही होगा।"[5] शरीर और मन दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू है।

यूं तो अंग्रेजी में कहा गया है कि Sound mind in a sound body अर्थात् स्वस्थ मन स्वस्थ शरीर में ही होता है। इसका तात्पर्य यही है कि यदि आपका शरीर रोगी होगा तो मन भी बैचेन रहेगा और मन बैचेन (तनावग्रस्त) होगा तो शरीर रोगी होगा। आज अनेक बिमारियाँ जैसे– रक्तशर्करा, उच्चरक्तचाप, आदि तनावों से ही उत्पन्न होती है। शरीर की अस्वस्थता का प्रभाव मन पर पड़ता है किन्तु साथ यह भी सत्य है कि मन के तनावपूर्ण होने पर उसका प्रभाव शरीर पर भी पड़ता है। मन स्वस्थ तो तन स्वस्थ। मन और तन की चिकित्सा एक दूसरे से निरपेक्ष होकर सम्भव नहीं है। हमारे मन की यह विशेषता है कि वह रोग पैदा भी कर सकता है और उन्हें दूर भी कर सकता है। अनेक स्थितियों में शारीरिक स्वस्थता मन की स्थिति पर ही निर्भर करती है। तनावरहित मन ही व्यक्ति को निरोगी बनाता है। तनावों का सीधा असर पहले हमारे शरीर पर पड़ता है। तनाव के कारण मन की शान्ति समाप्त हो जाती है, फलतः आँखों को

---

5. चिंता, क्रोध और तनावमुक्ति के सरल उपाय– श्री ललितप्रभ सागर पृ.11

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देखने की क्षमता क्षीण होने लगती है। स्मरण शक्ति भी कमजोर हो जाती है। तनाव के चलते ही व्यक्ति हकलाकर बोलने लगता है। घबराहट उसकी आदत बन जाती है। उसके हाथ–पांव पर सूजन होने लगती है। हृदय की धड़कन कभी बहुत कम और कभी बहुत ज्यादा होने लगती है। साथ ही हमारे पाचन तंत्र पर भी हमारे मानसिक तनावों का दुष्प्रभाव पड़ता है। तनावग्रस्त व्यक्ति की भोजन में भी रूचि नहीं होती है। इस प्रकार वह शारीरिक दृष्टि से कमजोर हो जाता है।" तनाव जिस मार्ग से गुजरता है, उसके बीच बिमारियों के कई पायदान बिछे रहते है। जैसे अवसाद, रक्तचाप, मधुमेह, हृदयघात आदि।[6] आज की दो आम बिमारियाँ है– 1. हृदयघात और 2. रक्तचाप। इन दोनों बीमारियों का मूल कारण तनाव ही है। जब कोई बात या घटना असहनीय होती है तब व्यक्ति अपने मन को तनावग्रस्त बना लेता है, फलतः वह हृदयघात या रक्तचाप से ग्रस्त हो जाता है। रक्तचाप जब भी कम या ज्यादा होता है तब–तब उसका प्रभाव या तो हमारे हृदय पर होता है या हमारे मस्तिष्क पर पड़ता है। एक के कारण मस्तिष्काघात हो सकता है और दूसरे के कारण हृदयघात।

मन अगर तनावग्रस्त है तो शरीर भी तनावग्रस्त हो जाता है और फिर शरीर को कई बीमारियाँ घेर लेती है। जब शारीरिक सन्तुलन भंग होता है, तब व्यक्ति स्वभावतः तनावों से ग्रस्त हो जाता है। शारीरिक तनावों के कारण छोटी आंत और बडी आंत में सिकुड़न पैदा हो जाती है। तनाव का शरीर की प्रतिरोधक क्षमता पर भी दुष्प्रभाव पड़ता है। प्रकृति ने स्वयं शरीर को रोगों से लड़ने की ताकत दी है। तनाव उस ताकत को कमजोर करता है।

"पाश्चात्य चिंतकों चार्ल्सवर्थ और नाथन के अनुसार तनाव के परिणाम स्वरूप व्यक्ति की निम्नलिखित शारीरिक स्थितियाँ देखी जाती हैं[7] :–

---

6. "कैसे पाए मन की शान्ति" श्री चन्द्रप्रभ पृ. 29

7. "Edward A. Charlesworth and Ronald G. Nathan, strees management, London. Page 4

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. **मन्द पाचन क्रिया** :- तनाव के कारण पाचन क्रिया मन्द होने से रक्त का प्रवाह मांसपेशियों तथा मस्तिष्क की ओर बढ़ने लगता है, जो अपच की स्थिति से भी ज्यादा खतरनाक होता है।

2. **श्वसन क्रिया की तीव्रता** :– तनाव की स्थिति में श्वास की गति तेज हो जाती है, क्योंकि मांसपेशियों को अधिक ऑक्सीजन की जरूरत होती है।

3. **हृदय की धड़कन का बढ़ना** :– तनाव के कारण हृदय की धड़कन भी बढ़ जाती है, साथ ही रक्तचाप भी बढ़ता है।

4. **पसीना आना** :– तनाव की स्थिति में व्यक्ति के शरीर से अधिक मात्रा में पसीना आने लगता है।

5. **मांसपेशियों में कड़ापन** :– तनाव के कारण मांसपेशियाँ कड़ी हो जाती हैं।

6. **रासायनिक प्रभाव** :– तनाव की स्थिति में रासायनिक पदार्थ रक्त में मिल कर उसका थक्का जमा देते हैं। युवाचार्य महाप्रज्ञ ने भी इस संबंध में कहा है कि तनाव की निरन्तर स्थिति बने रहने पर शारीरिक गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। इससे शरीर में स्थित दबाव तंत्र निरन्तर सक्रिय रहता है।"[8]

जिस प्रकार मोह को कर्मबंध का मूल कारण कहा गया है उसी प्रकार तनाव को भी रोगों का मूल कारण कहा गया है। मानसिक तनाव ही शारीरिक तनाव उत्पन्न करता है। –"श्री ललितप्रभसागरजी ने भी अपनी पुस्तक 'चिंता, क्रोध और तनाव मुक्ति के सरल उपाय' में लिखा है कि विश्व के कई चिकित्सकों ने मन और शरीर के रोगों पर काफी गहरा अनुसंधान किया है। एक बात साफ तौर पर सिद्ध हो गई है कि भय, निराशा, चिंता, ईर्ष्या, बुरे विचार

---

8. युवाचार्य महाप्रज्ञ, –प्रेक्षाध्यानः कायोत्सर्ग पृ.2

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और इनसे पैदा हुई बुरी तरंगे पेट और आँतों के रोगों को जन्म देती है। वहीं अच्छे विचार हमारे शरीर को शक्ति प्रदान करते हैं।"[9]

जैसा कि पहले कहा गया है कि मन और तन का इलाज अलग–अलग नहीं किया जा सकता है। तन की स्वस्थता से मन की स्वस्थता तक और मन की स्वस्थता से तन की स्वस्थता तक जाया जा सकता है। कुछ लोग नये साधकों को मन को वश में करने के लिए विभिन्न प्रकारों की ध्यान प्रक्रियाओं को अपनाने की सलाह देते है, लेकिन जिन लोगों का मन बहुत अधिक चंचल और व्याकुल होता है, उन्हें ध्यान की ये प्रक्रियाएँ बहुत कठिन लगती हैं, क्योंकि वे लोग अपने मन को एक क्षण के लिए भी शांत रखने की सामर्थ्य नहीं रखते है। यही कारण है कि ऐसे व्यक्तियों को चाहिए कि वे उन शारीरिक विधियों को अपनाते हुए मन को नियंत्रित करने का प्रयत्न करें, जिनमें विचारों की प्रक्रियाओं को पूरी तरह बंद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती और केवल साधरण एकाग्रता लानी होती है।

तनाव प्रबंधन की शारीरिक विधियाँ इस सिद्धांत पर आधारित है कि तन और मन दोनों परस्पर घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं और एक बार आप अपने शरीर को नियंत्रित कर लें, तो मन भी नियंत्रण में आ जाता है और जब मन नियंत्रण में होगा तो व्यक्ति तनावरहित और आनंद से परिपूर्ण होगा। यदि हम शरीर को नियंत्रित कर लें या शरीर के प्रति सजग हो जाएं, तो मन भी नियंत्रण में आ जाता है और जब मन नियंत्रण में आ जावेगा, तो व्यक्ति आनंदयुक्त अर्थात् तनाव रहित होगा।

मन व तन को तनाव रहित करने कि निम्न शारीरिक विधियाँ प्रस्तुत की गई है:–

1. शरीर शुद्धि की क्रियाएँ, 2. योगासन और व्यायाम, 3. प्राणायाम, 4. प्रेक्षाध्यान, और 5. कायोत्सर्ग

---

9. चिंता, क्रोध और तनाव मुक्ति के सरल उपाय, पृ.12

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. **शरीर शुद्धि की क्रियाएँ** – शरीर शुद्धि की क्रियाएँ योग का एक अंग है। इसके अन्तर्गत नेति, कुंजल, त्राटक, कपाल–भाति, वस्ति और धौति आती हैं। ये सभी विशेष रूप से शरीर के अंगों की अशुद्धियों को दूर करने के लिए किये जाते हैं। शरीर की अशुद्धियाँ दूर होने के बाद प्राण सम्पूर्ण शरीर में स्वतंत्रतापूर्वक गति करने लगता है और मन शांत तथा संतुलित हो जाता है, क्योंकि उसका प्राण के साथ गहन संबंध है। प्राण के असंतुलन में व्यक्ति तनावग्रस्त होता है। यदि प्राण पर नियंत्रण स्थापित किया जा सके तो मनोनिग्रह जैसा कठिन कार्य सरल बन जोयगा। "हठयोग प्रदीपिका" में कहा गया है कि :–

"पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते ।
मनश्च बध्यते येम पवनस्तेन बध्यते ।।
हेतु द्वयं तु चित्तस्य वासना च समीरणः ।
तयार्विनष्ट एकस्मिंस्तौ द्वावपि विनश्यतः।।[10]

अर्थात् जिसने प्राणवायु को जीता, उसने मन को जीत लिया। जिसने मन को जीता उसने प्राणवायु को जीत लिया। चित्त की चंचलता के दो ही कारण है– एक वासना का, दूसरा प्राणवायु का चंचल होना। इनमें से एक समाप्त होने पर दूसरा स्वयं ही समाप्त हो जाता है।

योगासन एवं व्यायामः–

मन तनावों की जन्मस्थली है, अतः चित्तवृत्ति निरोध का अर्थ है मन की चंचलता अर्थात् तनावग्रस्त दशा को समाप्त करना, अर्थात् मन में निरन्तर उठने वाले विचारों, आवेगों, विषय–वासनाओं संबंधी संकल्प–विकल्पों से मुक्त होकर तनावमुक्त जीवन जीना।

मुख्य रूप से योग का लक्ष्य है– शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक तनावों को दूर करना। कहते हैं कि पहला सुख निरोगी काया, क्योंकि यदि

---

10. हठयोग प्रदीपिका–4/21

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर स्वस्थ नही रहे तो चित्त भी शान्त नहीं हो सकता और अशान्त चित्त से व्यक्ति ध्यान भी नहीं कर सकता है। आत्मा या चेतना को तनावमुक्त करने के पहले मन और शरीर को तनावमुक्त करना होगा।

शरीर को स्वस्थ या तनावमुक्त रखने के लिए व्यायाम की आवश्यकता है। व्यायाम में शरीर को हरकत देकर ही तंदुरूस्त अर्थात् तनावमुक्त किया जा सकता है साथ ही सुबह की ठंडी एवं शुद्ध हवा में किये गये व्यायाम के द्वारा मन को शांति का अनुभव होता है।

योग शरीर को स्वस्थ अर्थात् तनाव मुक्त बनाता है। इससे शरीर के साथ–साथ मन और आत्मा (चेतना) को भी शान्ति मिलती है, आध्यात्मिक अनुभव देता है और अंततः मोक्ष का साधन बनता है। मोक्ष पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था ही है।

निःसंदेह मन चंचल है और तनावों का मुख्य जन्मस्थल है। इसे वश में करना अत्यंत कठिन है, फिर भी ध्यान के निरन्तर अभ्यास से अर्थात् सतत जागरूकता से मन की या चित्तवृत्ति की चंचलता का निरोध सम्भव है, किन्तु ध्यान में शरीर की स्थिरता होना भी आवश्यक है। शारीरिक स्थिरता के लिए शरीर का तनावमुक्त होना जरूरी है, तब ही लम्बे समय तक एक ही स्थान पर स्थिर हो कर बैठना सम्भव है। यह आसन के अभ्यास के द्वारा ही सम्भव हो सकता है। आसन केवल शारीरिक प्रक्रिया मात्र नही है, उसमें अध्यात्म के बीज छिपे हैं। ध्यान लगाने के लिए तथा मन को शांत करने या तनावमुक्त करने के विशेष उद्देश्य से ही योगविद्या में विभिन्न आसनों का वर्णन किया गया है। इनको एक बार सिद्ध करने के बाद आप उनमें बिना किसी प्रयत्न के लंबे समय तक स्थिर तक बैठ सकते हैं। इन आसनों में आपकी रीढ की हड्डी सीधी और वह सही रूप में रहती है और वह शरीर को तनाव मुक्त बनाती है।[11] ऐसे कुछ आसनों के नाम है– पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन, सुखासन आदि इन आसनों

---

11. योग एक वरदान, डाक्टर द्वारकाप्रसाद पृ. 48

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में एक बार कुछ समय तक स्थिर बैठने के बाद मन एकाग्र और शांत व नियंत्रित होता है। **जैनागमों में भी अनेक प्रकार के आसनों का नाम निर्देश किया है जैसे –वीरासन, कमलासन, वज्रासन, भद्रासन, दण्डासन, उत्कटिकासन, गोदाहासन, सुखासन।**[12]

दशश्रुतस्कंधसूत्र में भी अनेक प्रकार के आसनों का वर्णन है। जिनकी आगे व्याख्या की गई है।[13]

शरीर के स्थिर होने पर मन भी शांत होता है, क्योंकि मन का शरीर के साथ आंतरिक संबंध होने के कारण शरीर के स्थिर होने पर मन स्थिर हो जाता है। मेरूदण्ड के सीधे दण्डवत् होने से प्राण–शक्ति को ऊपर उठने की प्रेरणा मिलती है। जब प्राण मेरूदण्ड में ऊपर की ओर गति करता है, तब मन केवल स्थिर, शांत या तनावमुक्त ही नहीं होता वरन् चेतना का एक उच्च स्तर प्राप्त कर लेता है। व्यक्ति की संयमन की शक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है। आसन शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति, तनावमुक्त जीवन एवं आध्यात्मिक विकास के लिए उपयुक्त भूमिका का निर्माण करते हैं। आसन अस्वस्थ व्यक्ति के लिए तो उपयोगी हैं हीं, वे स्वस्थ व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। स्वस्थ व्यक्ति आसन से मानसिक प्रसन्नता को पाने के साथ–साथ तनावमुक्त हो जाता है। योगासन एवं व्यायाम शरीर में इधर–उधर जमे हुए मल को, जो शारीरिक तनाव का कारण है उसे दूर करते हैं। इससे हमारा मन बेहतर रीति से कार्य करने लगता है। शरीर की सक्रियता एवं स्वस्थता को बनाए रखकर ही साधना के परिणामों को प्राप्त कर सकते है अर्थात् तनाव से मुक्त हो सकते हैं। देश, काल और समाज की तनावपूर्ण परिस्थितियों से गुजरते व्यक्ति योगासन और व्यायाम से तनावमुक्त जीवन जी सकते हैं। शारीरिक, मानसिक, पीड़ाओं से ग्रस्त कुछ लोग योगासन और व्यायाम की ओर प्रवृत्त होते हैं। "यौगिक शारीरिक क्रियाएँ

---

12. औपा.सू. ब्राहत सू. 19

13. दशाश्रुतस्कंध – सातवीं दशा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर और मन दोनों को स्वस्थ बनाती है। मन प्रसन्न और चित्त शान्त होने लगता है।[14]

आचार्य भगवान देव ने अपनी पुस्तक 'योग द्वारा रोग निवारण' में लिखा है कि "आत्मा से साक्षात्कार के लिए योग वैज्ञानिक कला है।"[15] आत्मा से साक्षात्कार तब होता है जब व्यक्ति ध्यान के अंतिम चरण को पार कर ले अर्थात् मन की चंचलता को समाप्त कर दे और यह तभी सम्भव है, जब योग द्वारा शरीर और मन तनावों से मुक्त हो। तनावमुक्ति के लिए कुछ मुख्य आसन विधियाँ निम्न हैं, जो कि युवाचार्य महाप्रज्ञ के निर्देशन में तैयार की गई है। इनमें से कुछ निम्न है।[16]

खड़े रहकर करने वाले आसन, जो शारीरिक व मानसिक तनाव को दूर करते है :–

1. समपादासन –

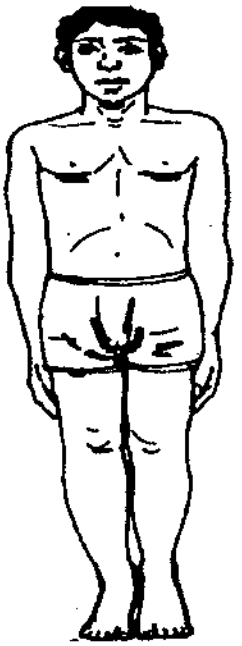

विधि – सीधे खड़े रहें। गर्दन, रीढ़ और पैर तक सारा शरीर सीधा और सम रेखा में रहें। दोनों पैरों को सटाकर रखें। दोनों हाथों को सीधा रखें। हथेलियों को जंघों से सटाकर रखें।

समय – कम से कम तीन मिनट और सुविधानुसार यह कुछ घण्टों तक किया जा सकता है।

लाभ – 1. शारीरिक धातुओं को सम रखता है।

2. शुद्ध रक्त संचार में सुविधा होती है।

---

14. तनावमुक्त कैसे रहें – एम.के.गुप्ता

15. "योग द्वारा रोग निवारण– आचार्य भगवान देव पृ.12 ।

16. प्रेक्षाध्यान आसन–प्राणयाम, मुनि किशनलाल पृ. 7 से 59

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3. मानसिक एकाग्रता आती है।

4. इस आसन से उच्चकोटि का कायोत्सर्ग किया जा सकता है।

2. ताडासन –

ताड़, समुद्र के किनारे पर पाया जाने वाला प्रलम्ब पेड़ होता है। पंजों पर खड़े होकर हाथों को ऊपर की ओर फैलाने से शरीर की आकृति ताड़ के पेड़ जैसी हो जाती है, इसलिए इसे ताड़ासन कहते हैं।

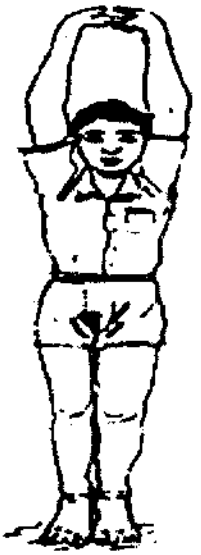

विधि – भूमि पर सीधे खड़े हो जाएं। दोनों पैरों को मिलाएं। हाथों को सिर के दोनों ओर ऊपर उठाएं और पंजों पर खड़े होकर हाथों को तनाव दें। तनाव देते समय श्वास भरें। हाथ नीचे लाते समय श्वास छोड़ें।

समय – आधा मिनट से तीन मिनट। शीर्षासन का विपरीत आसन भी है। शीर्षासन का दो तिहाई समय इसमें लगाएं।

लाभ – ऊँचाई बढ़ती है। कब्ज दूर होती है। पेट और कूल्हों की स्थूलता घटती है। आलस्य दूर होता है। गर्भवती महिलाओं के लिए यह विशेष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपयोगी है। इस आसन को वे पूरे गर्भकाल तक भी कर सकती हैं। इससे स्थिरता बढ़ती है। स्नायु दुर्बलता मिटती है।

बैठकर किए जाने वाले आसन

1. सुखासन :–

जिस आसन में सुखपूर्वक बैठा जाए, उसे सुखासन कहा गया है। सुखासन किसी विशेष आसन का प्रकार नहीं है। जो आसन लम्बे समय तक सुखपूर्वक किया जा सके, वही सुखासन है।

विधि – आसन पर सुखपूर्वक बैठे।

बाँए पैर को दाहिनी पिंडली के नीचे और दाहिने पैर का पंजा बाई पिंडली के नीचे लगाकर बैठना सुखासन कहलाता है। मेरुदण्ड सीधा रखें। श्वास प्रश्वास सहज और दीर्घ रहेगा।

समय – एक मिनट से धीरे–धीरे सुविधानुसार बढ़ाएँ।

लाभ – कामशक्ति–विजय, चित्तवृत्ति–निरोध, वीर्य–शुद्धि, शक्ति–जागरण, सुषुम्ना में प्राण का संचार होने से व्यक्ति ऊर्ध्वरेता बनता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. स्वस्तिकासन :–

भारतीय संस्कृति में स्वस्तिकासन को शुभ चिन्ह माना है। जैन परम्परा में अष्ट मंगलों में यह भी एक है। यह आसन करते समय शरीर की आकृति स्वस्तिक जैसी हो जाती है। इसलिए इसे स्वस्तिकासन कहा है।

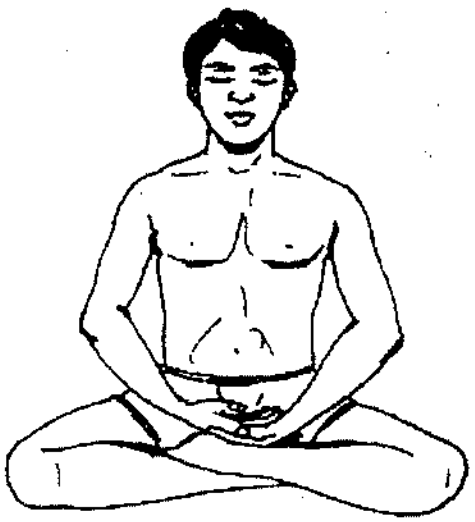

विधि – आसन पर स्थिरता से दोनों पाँवों को मोड़कर बैठें। दाहिने पाँव के पंजे को बाँए घुटने और जंघा के बीच इस प्रकार स्थापित करें कि पंजे का तलवा जंघा को स्वर्श करे। दाहिने पैर को उठाकर बाई पिंडली और साथल के बीच जमाएँ। मेरुदण्ड सीधा रखें। बाएं हाथ की हथेली को नाभि के पास रखें। फिर दाहिने हाथ को उसके ऊपर स्थापित करें। यह ब्रह्म मुद्रा कहलाती है।

समय और श्वास प्रश्वास – इस आसन में लम्बे समय तक ठहरा जा सकता है। तीन घण्टे एक आसन में बैठने से आसन–सिद्धि कहलाती है।

लाभ – लम्बे समय तक सुखपूर्वक बैठा जा सकता है। मन शांत और स्थिर, मेरुदण्ड पुष्ट और वायु रोग की निवृत्ति होती है।

3. पद्मासन :–

पद्मासन ध्यान–आसनों में आता है। साधना की दृष्टि से इसका विशेष महत्व है। सिद्धासन और पद्मासन ऐसे आसन है जिनमें मेरुदण्ड स्वयं सीधा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रहता है। इस आसन में पैर कमल के पत्तों की तरह लगते है, इसलिए इसे पद्मासन कहा गया है। पद्मासन की मुद्रा में अनेक आसन किये जाते है जिन्हें स्वतंत्र आसनों के रूप में भी स्वीकार किया गया है – बद्धपद्मासन, योगमुद्रा, उत्थित पद्मासन, तुलासन, कुकुटासन, गर्भासन इत्यादि।

विधि – आसन पर पैर फैलाकर बैठे। दांये पैर को घुटने से मोड़कर इस प्रकार बायीं साथल पर रखें कि हाथों की मुद्रा चित्र की तरह ब्रह्म मुद्रा में भी रखी जा सकती है। एड़ी नाभि के पास के हिस्से की साथल पर इस प्रकार स्थापित करें ताकि एड़ी नाभि को स्पर्श करें। हथेलियां आकाश की ओर इस प्रकार खुली रखें कि अंगूठे और तर्जनी के अगले पौर मिले रहे। शेष अंगुलियां परस्पर मिली हुई स्थिर रखें। गर्दन सीधी रहे। ठुड्डी हंसली से चार अंगुल ऊपर स्थिर रखें। दृष्टि नासाग्र पर रहे। श्वास दीर्घ और शान्त रहे।

समय – एक मिनट से आधा घण्टा। प्रति सप्ताह तीन–तीन मिनट बढ़ायें। जिनसे पद्मासन नहीं लगता हो, वे अर्द्धपद्मासन अर्थात केवल एक पैर के पंजे को दूसरी जंघा पर रखकर अर्द्ध पद्मासन का अभ्यास करें। पद्मासन की सिद्धि के लिए तीन घंटे तक इसका अभ्यास किया जा सकता है।

लाभ – मन की एकाग्रता बढ़ती है। मेरुदण्ड एवं गर्दन सीधी रहती है। जिससे प्राण के प्रवाह को ऊर्ध्वगामी बनने में सहायक मिलती है। यह आसन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मचर्य साधना की दृष्टि से उपयोगी है। हाथ के अंगूठे और तर्जनी अंगुली पर दबाव पड़ने से ज्ञान तन्तु सक्रिय होते हैं। अतः इसका नाम ज्ञान मुद्रा है।

4. तुलासन :–

इस आसन को करते समय शरीर तुला की तरह संतुलित होता है। पूरे शरीर को तुला में तोल रहे हों, ऐसा प्रतीत होता है, अतः इसे तुला आसन के नाम से पुकारा जाता है। उकडूं बैठें। एड़ियों को ऊपर उठाकर पंजों पर ठहरें। घुटने को नीचे झुकायें। शरीर का संतुलन पंजों पर बने। एक पैर को दूसरे पैर की जंघा के आगे घुटने पर रखें। हाथ घुटने के पास रखें और एक पांव पर संतुलन बन जाए, तब हाथ जोड़ लें। मन को श्वास पर केन्द्रित करें या किसी एक बिन्दु पर टिकायें। शीघ्रता न करें। संतुलन से ही यह आसन सिद्ध होता है।

समय – एक मिनट से तीन मिनट।

लाभ – धातु दोषों में लाभप्रद, पैर की अंगुलियों की सक्रियता, मन की एकाग्रता और पैरों की गति में विकास।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5. गोदुहासन :–

गाय को दुहने की मुद्रा बनने से इसे गोदुहासन कहा गया है। इस आसन में भूमि से शरीर का अत्यल्प स्पर्श रहता है। भगवान् महावीर को केवलज्ञान गोदुहासन में ही हुआ था। गोदुहासन निद्रा विजय और सजगता के लिए उपयोगी है।

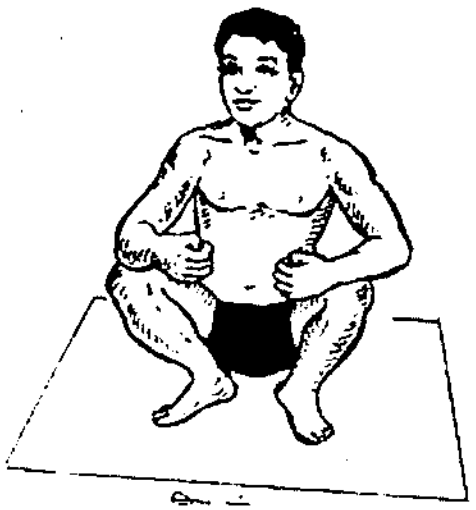

विधि – आसन पर पंजों के बल बैठें। घुटनों को मोड़ें। दूध दुहने के बर्तन को घुटने के बीच रखने से जो स्थिति बनती है वैसी मुद्रा बन जाएगी। दोनों हाथों की मुट्ठी बन्द कर दोनों घुटनों पर हाथ स्थापित करें। मुट्ठी बन्द करते समय अंगूठा अन्दर रहेगा। मुट्ठी की कनिष्ठा अंगुली वाला हिस्सा घुटने पर रहेगा।

समय और श्वास प्रश्वास – आधा मिनट से पांच मिनट तक प्रतिदिन अभ्यास से बढ़ा सकते है। आध्यात्मिक विकास एवं चैतन्य जागरण की दृष्टि से आधा घण्टे से तीन घण्टे तक भी अभ्यास किया जा सकता है।

लाभ – चित्त की स्थिरता। ज्ञान की निर्मलता। अपान वायु की शुद्धि। पैर व स्नायुओं की दुर्बलता दूर होती है। कब्जी दूर होती है। भावना की विशुद्धि एवं पाचन तंत्र सक्रिय होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

6. शंशाकासन :–

शशांक का तात्पर्य खरगोश से है, जो अत्यन्त कोमल एवं शांत प्राणी है। शरीर की आकृति शशांक जैसी होने से इसे शशांकासन कहा गया है। इसका दूसरा नाम चन्द्रमा भी है। यह आसन चन्द्रमा की तरह शीतलता प्रदान करता है। आवेश का उपशमन करता है।

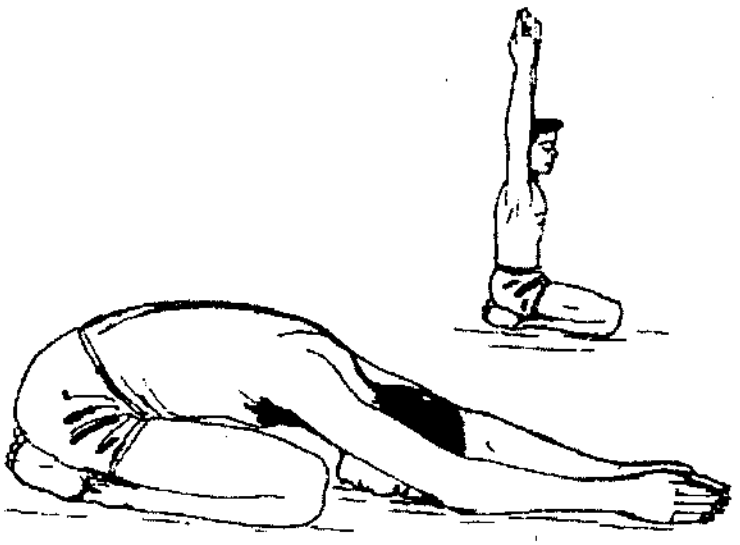

विधि – वज्रासन में पंजों पर ठहरे। हाथों को घुटनों पर रखें। पूरक करते हुए हाथों को आकाश की ओर उठाएं रेचन करते हुए हाथ एवं ललाट को भूमि पर स्पर्श करें। पूरक करते हुए उठें। पुनः रेचन कर भूमि को स्पर्श करें। लम्बे समय तक शशांकासन में रुकना हो तो श्वास की गति सहज और गहरी रहेगी।

समय – एक मिनट से तीन मिनट।

लाभ – तीव्र रक्तचाप सामान्य बनता है। क्रोध उपशमन के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। मानसिक शांति के लिए उपयोगी है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

7. ब्रह्मचर्यासन :–

पहला प्रकार –

दोनों पैरों को फैलाकर बैठें, घुटनों को मोड़ें। पादतल को एक दूसरे से मिलाएं, घुटनों पर हाथ रखें, जिसे भूमि पर घुटने लगाने में कठिनाई महसूस हो रही हो तो धीरे--धीरे नीचे ले जाएं, ऊपर उठाएं। यह क्रिया पद्मासन की सिद्धि एवं लम्बे समय तक ध्यान के अभ्यास के लिए उपयोगी है।

दूसरा प्रकार –

पैरों को सीधा सम्मुख फैलायें। हथेलियों को शरीर के पार्श्व में स्थापित करें। मेरुदण्ड, ग्रीवा समकोण में सीधा रहे। इस दण्डासन भी कह सकते है। शरीर की आकृति दण्ड जैसी बन जाती है।

तीसरा प्रकार –

सिद्धासन में ठहरें। बाएं पांच की एडी मलद्वार के निकट शुक्र वाहिनी नाड़ी पर स्थापित करें। दायें पांव को बायें पैर पर रखें। बायें पैर के टखने पर दाहिने पैर का टखना आ जाए। पैर के पंजे, नितम्ब और पिंडलियों के बीच आ जाते है। मूल बन्ध कर पूरक करें। शक्ति केन्द्र और स्वाथ्स्य केन्द्र मल एवं मूत्र के स्थान को आकुंचित कर मन में दृढ़ संकल्प करें कि वीर्य ऊर्जा रूप में रूपांतरित होकर मस्तक की ओर गति कर रहा है। अपान की शुद्धि हो रही है।

समय – पांच मिनट से आधा घण्टा।

लाभ – ब्रह्मचर्य में सहायक, वासना क्षय, सौम्य भाव।

चौथा प्रकार –

ब्रह्मचर्य की साधना के लिए वज्रासन का यह प्रकार उपयोगी है। इस आसन से वज्र नाड़ी पर दबाव पड़ने से वीर्य शुद्धि होती है।

विधि – दोनों घुटने मोड़कर पीछे पैरों को नितम्ब से पार्श्व में स्थापित करें। नितम्ब और मल द्वारा के पास का भाग भूमि से सटा रहेगा। हाथों को घुटनों के ऊपर रखें। मूल बन्ध लगायें। वीर्य नाड़ी पर संकल्पपूर्वक मन को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केन्द्रित कर ऊर्ध्वरेता की भावना करें। "वीर्य ओज में परिणित हो" यह चिन्तन करें।

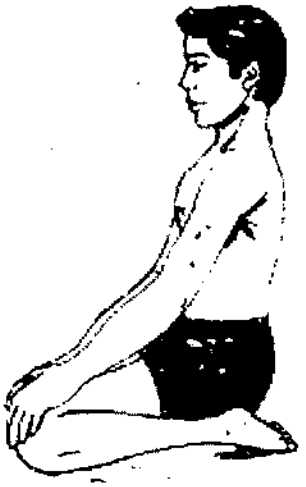

समय और श्वास प्रश्वास – आधा मिनट से पांच मिनट। श्वास प्रश्वास करते समय संकल्प करें कि ऊर्जा (प्राण) शक्ति ओज रूप में परिणत होकर मस्तक में फैल रही है। स्मरण शक्ति विकसित होती जा रही है।

लाभ – ब्रह्मचर्य की साधना में सहायक। शरीर शक्ति सम्पन्न व तेजस्वी बनता है।

8. सिद्धासन :

यह आसन साधना की सिद्धि को सहजता प्रदान करता है। इसलिए सिद्धासन कहलाता है। योग के चौरासी लाख आसनों में सिद्धासन को प्रमुख स्थान दिया गया है। सिद्धासन को ध्यान, साधना एवं समाधि के लिए सर्वोत्तम माना गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विधि – आसन पर सुखपूर्वक बैठें। बाएँ पैर की एड़ी को गुदा एवं मूत्रेन्द्रिय के मध्य रिक्त स्थान पर लगाएँ। दाएं पांव को उठाकर बाएँ पैर के ऊपर वाले टखने पर टिकाएँ। मेरुदण्ड सीधा रहे। हाथ ब्रह्ममुद्रा में नाभि के पास टिकाएं।

समय – एक मिनट से धीरे–धीरे सुविधानुसार बढ़ाएं।

लाभ – काम–शक्ति विजय, चित्त–वृत्ति निरोध, वीर्य–शुद्धि, शक्ति जागरण, सुषुम्ना में प्राण का संचार होने से व्यक्ति ऊर्ध्वरेता बनता है।

लेटकर किये जाने वाले आसन

1. कायोत्सर्ग :–

शरीर को शिथिल और तनाव मुक्त करें। इस स्थिति को शव की तरह होने से शवासन भी कहते हैं, किन्तु कायोत्सर्ग और शवासन में मौलिक अन्तर है। बाहर से दोनों क्रिया समान दिखाई देती है किन्तु शव आसन मुर्दे की तरह जड़वत होने की अवधारणा प्रदान करता है जबकि कायोत्सर्ग में शरीर का विसर्जन अर्थात् शरीर के प्रति जो ममत्व और पकड़ है, उसे छोड़ना होता है। चैतन्य को निरन्तर जाग्रत रखना होता है।

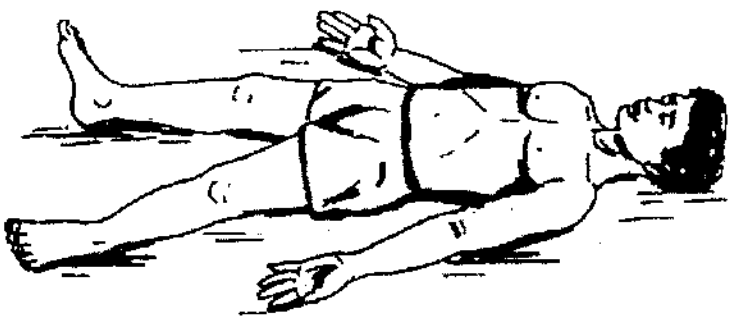

श्वास प्रश्वास पर चित्त को एकाग्र कर प्रत्येक अवयव को शिथिलता का सुझाव देते हैं। शिथिलता का अनुभव करते हैं। कायोत्सर्ग लेटकर, बैठकर और खड़े–खड़े भी किया जा सकता है। आरम्भ में लेटकर कायोत्सर्ग करने में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुविधा रहती है। लेटकर शिथिलता सधने पर बैठकर और खड़े–खड़े कायोत्सर्ग का अभ्यास किया जा सकता है।

विधि – लेटकर कायोत्सर्ग करने के लिए शरीर को पीठ के बल लेटा दें। दोनों हाथों को शरीर के समानांतर फैलाएँ। हथेलियां आकाश की ओर खुली रखें। दोनो पैरों के बीच एक फुट का फासला रखें। शरीर को ढ़ीला छोड़ दें।

दाहिने पैर के अंगूठे से लेकर सिर तक प्रत्येक अवयव पर चित्त को क्रमशः केन्द्रित करें। शिथिलता का सुझाव दें।

शरीर शिथिल हो जाए।

शरीर शिथिल हो रहा है।

अनुभव करें शरीर शिथिल हो गया है।

शरीर में शिथिलता के साथ चैतन्य का निरन्तर अनुभव करें।

समय – एक मिनट से पांच मिनट तक। साधना में विकास की दृष्टि से 45 मिनट का अभ्यास किया जा सकता है। श्वास–प्रश्वास मंद और शांति रखें।

लाभ – शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक तनावों से मुक्ति प्रदान करता है। भगवान महावीर ने कायोत्सर्ग को समस्त दुःखों से मुक्ति प्रदान करने वाला बताया है– सव्व दुक्ख विमोक्खणं काउस्सग्गं। प्रत्येक अवयव में स्फूर्ति उत्पन्न होती है। कायोत्सर्ग से देह एवं बुद्धि की जड़ता नष्ट होती है। एकाग्रता बढ़ती है। कलह उपशान्त होता है। कायोत्सर्ग से विघ्न और बाधाएँ दूर होती है।

2. मत्स्यासन :–

सर्वांगासन, हलासन के तुरन्त पश्चात् मत्स्यासन किया जाता है। यह आसन मत्स्य (मछली) की आकृति से मिलता है, अतः इस मत्स्यासन कहा गया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। इस आसन में पानी पर मत्स्य के सदृश स्थिर रहा जा सकता है। नाक पानी से ऊपर रहता है। अतः डूबने की स्थिति नहीं बनती। तैराक योगी इस आसन में घण्टों पानी में पड़े रहते है।

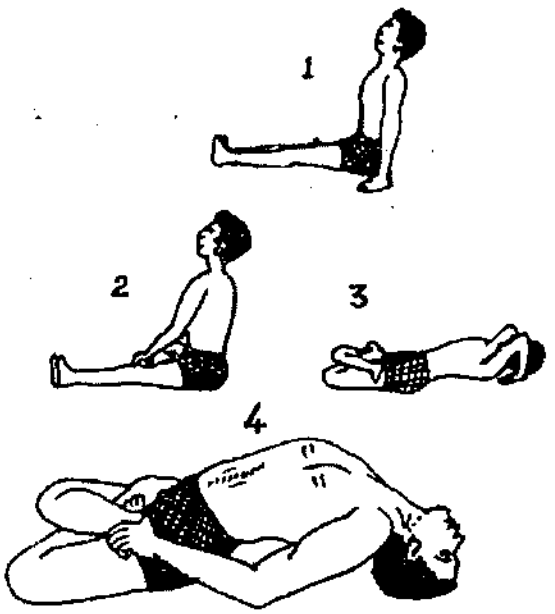

विधि – पद्मासन की स्थिति में बैठें। लेटने की मुद्रा में आने के लिए हाथों की कुहनी को धीरे–धीरे पीछे ले जाएं। पीठ पीछे झूकेगी। कुहनियों के सहारे शरीर को टिकाते हुए लेटने की मुद्रा में आ जाएँ। हाथों की हथेलियां कंधों के पास स्थापित कर पीठ और गर्दन को ऊपर उठाएं। मस्तक का मध्य भाग भूमि से सटा रहेगा। हाथ वहां से उठाएँ। बाएँ हाथ से दाएँ पैर का अंगूठा पकड़ें और दाएँ हाथ से बाएँ पैर का अंगूठा पकड़ें। कमर का हिस्सा भूमि के ऊपर रहेगा। आंख खुली रहेगी।

समय और श्वास – यह आसन सर्वांगासन और हलासन का विपरीत आसन है। सर्वांगासन का पूर्व लाभ मत्स्यासन करने से ही मिलता है। श्वास प्रश्वास दीर्घ एवं गहरा रखें। जितना समय सर्वांगासन में लगाएँ उसका आधा समय इसमें लगाएँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लाभ – मत्स्यासन से गर्दन, सीना, हाथ पैर, कमर की नाड़ियों के दोष दूर होते है। आंख, कान, टांसिल, सिरदर्द से मुक्ति मिलती है। इन अवयवों में रक्त अधिक मात्रा में पहुंचने से शक्ति मिलती है। इससे सीना चौड़ा होता है। श्वास प्रश्वास गहरा व लम्बा होने से प्राण शक्ति विकसित होती है। शरीर में स्फूर्ति और स्थिरता आने लगती है।

मन की शुद्धि होने से मन की एकाग्रता बढ़ती है। ब्रह्मचर्य में सहायक बनता है। कमर दर्द, स्वप्न दोष, स्नायु दौर्बल्य, गर्दन व शिर–शूल से मुक्ति मिलती है।

जैन परम्परा में आसनों का वर्णनः–

जैन ग्रंथों में आसनों का वर्णन ध्यान के लिए किया गया है। ध्यान करने के लिए शरीर का स्थिर होना अनिवार्य है और शरीर को स्थिर होने के लिए किसी एक आसन का चुनाव किया जाता है।

आसनों के संबंध में जैन आचार्यों की मूलदृष्टि यह है कि जिन आसनों से शरीर और मन पर तनाव नहीं पड़ता हो, ऐसे सुखासन ही ध्यान के योग्य है। जिन आसनों में व्यक्ति सुखपूर्वक लंबे समय तक रह सकता है तथा जिनके कारण उसका शरीर स्वेद को प्राप्त नहीं होता है, वे ही आसन ध्यान के लिए एवं तनावमुक्ति के लिए श्रेष्ठ है।[17] सामान्यतया जैन परम्परा में पद्मासन और खड्गासन ही ध्यान के अधिक प्रचलित आसन रहे है।[18] किन्तु महावीर के द्वारा गोदुहासन में ध्यान करके केवल ज्ञान प्राप्त करने के भी उल्लेख है।[19]

---

17. ज्ञानार्णव– 28/11
18. ज्ञानार्णव– 28/11
19. "गोदोहियाए उक्कुडयनिलिज्जाए" कल्पसूत्र 120

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खड़े रहने वाले आसनों में मुनि किशनलालजी ने समपादासन को उत्तम बताया है।[20]

जैन ग्रंथों में इसे ही दंडासन या खडगासन कहे गये है। दंडासन का वर्णन औपपातिक सूत्र में मिलता है। इसमें दडे की तरह स्थिर खडे रहना होता है।[21] खडगासन में भी सीधे खडे रहना होता है।

दशाश्रुतस्कंध में बैठे हुए आसनों में "निषधासन, गोदुहासन और उत्कुटकासन का भी उल्लेख मिलता है।[22] निषधासन में पालथी लगा कर पर्यकासन से सुखपूर्वक बैठा जाता हे। गोदुहासन में पूरे शरीर को दोनों पांवों के पंजों पर रखा जाता है। जंघा एवं उरू आपस में मिले हुए रहते हैं और दोनों नितम्ब एड़ी पर टिके हुए रहते है।

उत्कुटकासन में दोनो पांवों को सममतल रख कर उन पर पूरे शरीर को रखते हुए बैठना होता है। आचार्य महाप्रज्ञजी के अनुसार इसी को वज्रासन भी कहते है। दशश्रुतस्कंध में ही सोकर करने वाले आसनों में उत्तानासन, दंडासन, पार्श्वासन, ओर लकुटासन का वर्णन है।[23] उत्तानासन आकाश की तरफ मुख करके साने को कहते है। दंडासन खड़े व सो कर दोनों तरह से किया जाता है। जिस प्रकार दंड को सीधा जमीन पर रखें, उसी प्रकार सीधे लेट जाना दंडासन है। पार्श्वासन एवं लकुटासन में करवट लेकर सोना होता है।

दशाश्रुतस्कंध में ऐसे भी आसनों का उल्लेख है जो न तो बैठकर किये जाते है न सोकर किये जाते है और न सीधे खड़े होकर किये जाते हैं, किन्तु बैठने तथा खड़े रहने के मध्य की अवस्था के हैं। पहले वीरासन में पूरा शरीर दोनों पंजों के आधार पर तो रखना पडते हैं किन्तु इसमें नितम्ब एड़ी

---

20. प्रगाध्यान आसन प्राणायाम– मुनि किशनलाल पृ. 42
21. औपपातिक सूत्र सु. 19 मधुकरमुनि पृ. 55
22. दशाश्रुतस्कंध सातवी दशा, मधुकरमुनि पृ. 65
23. दशाश्रुतस्कंध सातवी दशा, मधुकरमुनि पृ. 65

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से कुछ ऊपर उठे हुए रखने पड़ते हैं तथा जंघा और उरू में भी कुछ दूरी रखनी पड़ती है। दूसरा है आम्रकुब्जासन – इस आसन में भी पूरा शरीर तो पैरों के पंजों पर रखना पड़ता है, घुटने कुछ टेढे रखने होते है, शेष शरीर का सम्पूर्ण भाग सीधा रखना पड़ता है।[24]

आचार्य हरिभद्र सूरि के जैन योगशतक की योगविंशिका आदि ग्रन्थों में योग के भेदों में ठाण (स्थान) का अर्थ आसन शब्द से लिया है। इसमें पद्मासन, पर्यकासन, कायोत्सर्ग, आदि का समावेश है।[25]

प्राणायाम

योग के छः अंग कहे गये है। "उनमें से एक प्राणायाम भी है। योगचुडामणि उपनिषद् में इन छः अंगों के नाम इस प्रकार है –आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान और समाधि।"[26]

प्राणायाम योग की ही एक विधि है। प्राणायाम से प्राण–शक्ति सम्प्रेरित होकर शरीर के अंग प्रत्यंगो में फैलती है और उन्हें स्वस्थ एवं बलवान बनाता है। "आसन–प्राणायाम" नामक पुस्तक में लिखा है कि यदि विधिपूर्वक प्राणायाम किया जाए तो तनाव से उत्पन्न अवसाद आवेश, आत्मा–हीनता और उन्माद जैसे मनोविकारों से मुक्ति मिलती है। प्राणायाम की विधि इनके उपचार में भी प्रयुक्त होती है।[27]

वर्तमान युग में तनाव से मुक्ति के लिये व्यक्ति दो वस्तुओं का प्रयोग करते हैं। पहली नींद की गोलियों और दूसरे मादक द्रव्य। कालान्तर में ये वस्तुएं व्यक्ति की आदत बन जाती है और इनसे न केवल व्यक्ति के व्यहार में

---

24. दशाश्रुतस्कंध– बही सातवी दशा, मधुकरमुनि पृ. 65
25. जैन योग ग्रंथ चतुष्टय :– योग–विशिका सुत्र–2 पृ. 267
26. योगचुडामनि उपनिषद्– गाथा –2
27. आसन– प्राणायाम से आधि व्याधि निवारण पृ. 161

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विकृति आ जाती है, वरन् उसके शरीर और मन दोनों की शक्तियों का अपव्यय भी होता है। प्राणायाम प्राण प्रवाह को क्रियाशील बनाने की प्रक्रिया है जो शरीर और मन की शक्तियों को प्रबल बनाती है। प्राणायाम मनोबल को बढ़ाकर मनोविकारों का निवारण करता है।

इन्द्रियों पर मन का नियंत्रण आवश्यक है। मन विकारग्रस्त होगा तो इन्द्रियों की चंचलता बढ़ेगी। इन्द्रियाँ विकारग्रस्त होकर अनियंत्रित हो जाएं, तो व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है। प्राणायाम से अगर मनोविकारों का ही निवारण कर लिया जाए तो व्यक्ति न तो मादक द्रव्यों के सेवन का शिकार होगा और न इन्द्रियाँ वासनाग्रस्त होंगी। इन्द्रियों में योगशक्ति का अभाव होने से व्यक्ति तनावग्रस्त होगा।

कहा भी गया है:–

" यथा स्वर्णधातुनां दहन्ते धमनान्मलाः
तथेन्द्रियकृता दोषा दहन्ते प्राणधारणात।[28]

"जिस प्रकार सोने को तपाने से उसके दोष निकल जाते हैं, उसी प्रकार प्राणायम से जलकर इन्द्रियों के दोष नष्ट हो जाते हैं।"

चिन्ता भय, इच्छा, असंतोष, ईर्ष्या, राग, द्वेष, अवसाद आदि की वृतियों से यदि व्यक्ति का मन ग्रसित हो जाएगा, तो मन का संतुलन तो बिगड़ेगा ही साथ ही व्यक्ति तनावग्रस्त भी होगा।

तनाव के निवारण के लिए मन के आवेगों का निवारण करना आवश्यक है जो कि प्राणायाम के द्वारा सम्भव है।

प्राणायाम में श्वास–प्रश्वास क्रिया को क्रमबद्ध, तालबद्ध, और लयबद्ध बनाया जाता है। मन और श्वासतंत्र का परस्पर आंतरिक रूप से संबंध है।"हेमचंद्राचार्य के योगशास्त्र में भी प्राणायाम का उल्लेख मिलता है। योगशास्त्र में मन और श्वास का संबंध बताते हुए कहा है कि – जहाँ मन है वहाँ पवन

---

28. अमृतनादोष– श्लोक –7

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् (श्वास–प्रवास) है और जहाँ पवन है वहाँ मन है।"[29] जब मन अशांत या तनावग्रस्त होता है तो सांस भी अनियमित, झटकेदार आवाज करने वाली, उथली और वक्ष के ऊपरी भाग तक ही सीमित रह जाती है। जब मन शांत और तनावमुक्त होता है तो श्वास धीमी, गहरी और लयबद्ध हो जाती है और शरीर के मध्यभाग तक प्रभाव डालती है। मन और श्वास में एक प्रकार का सहसंबंध है। श्वास–प्रश्वास को लयबद्ध और धीमा तथा गहरा करने पर लय तनाव शिथिल होते हैं और असंतुलित होने पर मन तनावग्रस्त हो जाता है। इसी प्रकार मन को शांत बनाकर श्वास–प्रश्वास को नियंत्रित किया जा सकताा है, साथ ही श्वास–प्रश्वास को शिथिल करके अपने मन को शांत एवं तनावमुक्त कर सकते हैं।

प्राणायाम से प्राण–शक्ति सक्रिय होकर शरीर के अंग प्रत्यंग में फैलती हे। और उसे स्वस्थ एवं बलवान बनाती है।

भगवतीसूत्र में गौतम ने भगवान् महावीर से पूछा–भंते ! जीव श्वास–प्रश्वास लेते हैं ? यदि लेते है तो कैसे ? भगवान् ने इसका उत्तर चार दृष्टियों से दिया –1. द्रव्य दृष्टि से, 2. क्षेत्र दृष्टि से, 3. काल दृष्टि से तथा 4. भावदृष्टि से।

भगवान् ने भावदृष्टि से समाधान देते हुए कहा – प्रत्येक जीव श्वास–प्रश्वास लेता है। उसके श्वसन–पुदगल वर्ण, गंध रस और स्पर्शयुक्त होते हे। पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस और आठ स्पर्श श्वास में विद्यमान है। जब मनुष्य की भावधारा शुद्ध होती है तब इष्ट वर्ण, गंध रस और स्पर्श युक्त श्वास गृहीत होती है, तो शरीर स्वस्थ व मन तनावमुक्त होता है और जब भावधारा अशुद्ध होती है तब श्वास में अनिष्ट वर्ण, गंध, रस और स्पर्श होते हैं, इससे स्वास्थ बिगड़ जाता है व मन तनावग्रस्त हो जाता हैं।[30]

---

29. योगशास्त्र (हेमचन्दाचार्य), पंचम प्रकाश गाथा–2

30. भगवई–2,3,4....

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"सूक्ष्मदृष्टि से प्राण का अर्थ ब्रह्माण्ड भर में संव्याप्त ऐसी ऊर्जा है, जो जड और चेतन दोनों का समन्वित रूप है।[31] प्राण–शक्ति से ही संकल्प–बल मिलता हैं यह संकल्प–बल ही जीवनीशक्ति है। संकल्प–बल के सहारे ही मनुष्य कुविचारों से जूझता है, कुसंस्कारों का निराकरण करता है। अगर आध्यात्मिक दृष्टिकोण से कहें, तो प्राणायाम वह शक्ति है, जिससे शारीरिक स्वास्थ्य तो बनता ही है, साथ ही साथ चित्त की निर्मलता भी बढ़ती है। महर्षि पंतजलि ने प्राणायाम के परिणाम की चर्चा करते हुए लिखा है –

" ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्"

प्राणायाम के द्वारा प्रकाश पर आया आवरण क्षीण हो जाता है। प्राणायाम केवल श्वास–प्रश्वास का व्यायाम नहीं है, अपितु कर्म निर्जरा की भी महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। जिससे चित्त की निर्मलता बढ़ती हैं, चित्त की निर्मलता ही चित्त की चंचलता को रोकती है और व्यक्ति को तनाव मुक्त करती है।

"प्राणायाम उपचार प्रक्रिया"[32] :–

सबसे पहले व्यक्ति को सांस लेने का सही तरीका सीखना चाहिए। जिस आसन में शरीर तनाव रहित हो, उस पर अनावश्यक दबाव नहीं पड़ता हो, वही आसन प्राणायाम के लिए उपयुक्त है।

आवेश हेतु बांये से पूरक, दांये से रेचक, अवसाद हेतु दांये से पूरक, बांये से रेचक करना चाहिए। जब ध्यान श्वास–प्रश्वास पर होगा तो मन शांत होगा, तनावमुक्त होगा और निरन्तर इसके अभ्यास से पूर्णतः तनावमुक्त स्थिति प्राप्त होगी।

---

31. आसन प्राणायाम के विधि–विधान–पृ 134

32. आसन प्राणायाम–पृ. 183

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योगकुण्डल्यूपनिषद में लिखा है –"भस्त्रिका प्राणायाम से कण्ठ की जलन मिटती है, जठरागिन प्रदीप्त होती है, कुण्डलिनी जागती है। यह प्रक्रिया पापनाशक तथा सुखदायक है ।[33]

प्रेक्षा ध्यान– आधार और स्वरूपः–

तेरापंथ धर्मसंघ के आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने जैन आगमों का मंथन करके ध्यान की एक नयी प्रक्रिया 'प्रेक्षा–ध्यान' को प्रस्तुत किया है।

'प्रेक्षा' शब्द 'ईध' धातु से बना है। इसका अर्थ है – गहराई से देखना, अथवा गहराई मे उतर कर देखना। देखना सामान्य, आँखों से किया जाता है। किन्तु प्रेक्षा में देखना अपने अन्तरचक्षु एवं मन के द्वारा होता है।

जैन–साधना पद्धति में ध्यान की परम्परा तो थी, किन्तु आगमों में उसकी कोई विधि मिलती ही नहीं है। जैन आगमों में प्रेक्षा शब्द प्रयुक्त है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है –**"संपक्खिवए अप्पगमप्पएंण"**– आत्मा के द्वारा आत्मा की संप्रेक्षा करो। ।[34] तनावमुक्ति के लिए सबसे पहले मन में उठ रहे राग–द्वेष कषाय आदि को देखना आवश्यक हैं, जब तक हम इन्हें देखेंगे नहीं, जानेंगे नहीं, कि हमें क्रोध आ रहा है, लोभ हो रहा है, मोह बढ़ रहा है या द्वेष बढ़ रहा है, तब तक तनावों के कारणों को नहीं जान पाऐंगे और व्यक्ति तनावग्रस्त होता जाएगा। आत्मा के द्वारा आत्मा को देखों, मन के द्वारा मन को देखो, स्थूल चेतना के द्वारा सूक्ष्म चेतना को देखों, –यही 'देखना' ध्यान का मूल तत्व है।

जानना, देखना, चेतना का लक्षण है। भगवान् महावीर ने साधना के जो सूत्र दिए हैं, उनमें जानों और देखों, यही मुख्य है। तनावमुक्ति के लिए ये महत्वपूर्ण सूत्र है। देखने की यह प्रक्रिया शरीर से प्रारम्भ होकर सूक्ष्म मन या

---

33. योगाकुण्डल्यूपनिषद–38

34. दशवैकालिक सूत्र –12/571

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्म चेतना तक जाती है और इससे होने वाली अनुभूति व्यक्ति को तनावों के मूल कारणों तक ले जाती है, तब ही वह तनावों के कार्य कारण रूप चक्रव्यूह को तोड़ने में सफल होता है।

आचारांग में कहा भी है[35]– जो क्रोध को देखता है, वह मान को देखता है। जो मान को देखता है, वह माया को देखता है। जो माया को देखता है वह लोभ को देखता है, जो लोभ को देखता है, वह प्रिय देखता है। जो प्रिय (राग) को देखता है, वह अप्रिय हो देखता है। जो अप्रिय (द्वेष) को देखता है, वह मोह को देखता है, जो मोह को देखता है, वह गर्भ को देखता है, जो गर्भ को देखता है, वह जन्म को देखता है, जो जन्म को देखता है, वह मृत्यु को देखता है, जो मृत्यु को देखता है, वह दुःख को देखता है और जो दुःख को देखता है, वह क्रोध से लेकर दुःख पर्यन्त होने वाले इस चक्रव्यूह को तोड़ देता है।" इस चक्रव्यूह को तोड़ने वाला व्यक्ति पूर्णतः तनावमुक्त स्थिति को प्राप्त करता है। भगवान् महावीर ने आचारांगसूत्र में कई बार यह कहा है कि मन में लज्जा के भाव से अपनी वृत्तियों को पृथक–पृथक कर के देख।[36]

जब हम देखते हैं, तब सोचते नहीं और जब सोचते हैं, तब देखते नहीं है। **'इच्छाएँ कामनाएँ उठती है तो उन्हें मात्र देखने का प्रयास करो,** उनसे जुड़ो मत। क्रोध आएगा तो उसी क्षण देखो कि क्रोध आ रहा है। स्थिर होकर अपने भीतर देखो, अपने विचारों को, शरीर में होने वाले प्रकम्पनों को देखो। जो भीतर की गहराईयों को देखते–देखते भीतर के सत्य को देख लेता है, उसका दृष्टिकोण ही बदल जाता है। वह सम्यदृष्टि वाला हो जाता है और जो सम्यदृष्टि वाले होते हैं, वे तनावमुक्त जीवन जीते है।

तनावमुक्त जीवन का अर्थ है – मन और शरीर की एक दिशा होना। इसे हम एकाग्रता कह सकते है। एकाग्रता तब होती है जब मन निर्मल एवं शांत हो।

---

35. आचारांग सूत्र–3/4/167

36. आचारांग– प्रथम अध्याय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन का स्वभाव चंचलता भी है, और शांतता भी। चंचलता में तनाव की स्थिति पैदा होती है, तो शांतता में तनावमुक्त स्थिति होती है।

इंसिभासियाई में भी कहा गया है कि चित्त की एकाग्रता ही ध्यान है और जो चित्त की चंचलता है वह चिन्ता है, उसे ही तनाव या क्षोभ कहते है।[37]

बिना एकाग्रता के मन शांत नहीं होता और बिना मानसिक शांति के एकाग्रता नहीं होती। तब प्रश्न उपस्थित होता है –क्या करना चाहिए ? उत्तर है –अपने आप को देखना चाहिए। अपने प्रति सजग होना चाहिए। जब अपना आत्मदर्शन करेंगे और अपने आपको समझेंगे, तभी तनावमुक्त होंगे।

प्रेक्षा–ध्यान की यह पद्धति शरीर से शुरू होकर आत्मा पर समाप्त होती हे इससे तनावमुक्त अवस्था प्राप्त होती है। इसके मुख्य अंग निम्न है।[38]

1. श्वास–प्रेक्षा
2. शरीर– प्रेक्षा
3. चैतन्य–केन्द्र प्रेक्षा
4. अनुप्रेक्षा (भावधारा की प्रेक्षा)

1. **श्वास–प्रेक्षा** :– "जिसमें वर्ण है, रस है और स्पर्श है वह पुदगल है, वह पौद्गलिक वस्तु है। श्वास में ये चारों लक्षण पाए जाते है, इसलिए श्वास पौदलिक है।"[39]

जैसे हमारी भावधारा होगी वैसी गति से श्वास हमारे भीतर जाएगी। इस संदर्भ में भगवतीसूत्र का उदाहरण प्राणायाम की चर्चा के संदर्भ में दे चुके हैं। भगवान् महावीर ने भी यही कहा है कि जब हमारी भावधारा शुद्ध होती है, तो हमें इष्ट गंध, रस, वर्ण, और स्पर्श होता है और जब भावधारा अशुद्ध होती है, नकारात्मक सोच होती है तो अनिष्ट गंध, रस, वर्ण, और स्पर्श की अनुभूति

---

37. इसिभासियाई–22 / 14

38. प्रेक्षा–ध्यान – आधार और स्वरूप पृ. 18

39. महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र– आचार्य महाप्रज्ञ–पृ.70

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्वास के साथ हमारे शरीर में प्रवेश करती है, जो हमारे स्वास्थ्य को बिगाड़ देते हैं। मन की शंति ही तनावमुक्ति है। एक मन को साधने से सब सिद्ध हो जाता है। मन चिड़िया की तरह है, जब भी पकड़ने का प्रयास करेंगे, हाथ से उड़ जाएगी, किन्तु मन को पकड़ पाना नामुमकिन भी नहीं है। क्योंकि आत्मा सजग होते ही यह पकड़ में आ जाता है। श्वास का प्राण से और प्राण का मन से गहरा संबंध है। मन को सीधा नहीं पकड़ सकते है। प्राण धारा को भी सीधा नहीं पकड़ सकते है। इसलिए मन को पकड़ने के लिए शांन्त करने के लिए श्वास का संयम आवश्यक हे। "श्वास प्रेक्षा में श्वास के प्रति सजग चित्त की एकाग्रता श्वास संयम को प्रकट करती है। जिससे मन की शांति के साथ–साथ कषाय भी उपशांत और चैतन्य का जागरण होता है।[40] श्वास के प्रति सजग भाव की क्रिया ही श्वास–प्रेक्षा है। श्वास–प्रेक्षा के दो प्रयोग हैः–

1. दीर्घश्वासप्रेक्षा और 2. समवृत्तिश्वासप्रेक्षा।

दीर्घ श्वास प्रेक्षाः–

इसमें श्वास की गति को मन्द करें। धीरे–धीरे लम्बा श्वास लें और धीरे–धीरे छोड़े। श्वास को लयबद्ध और समतल करें। यह दीर्घश्वासप्रेक्षा है।

"**समवृत्ति श्वास प्रेक्षा** – इस प्रक्रिया में बाएं नथुने से श्वास लें, दाएं से निकाले फिर दांए से ले बाएं से निकालें।"[41] यह समवृत्तिश्वासप्रेक्षा है।

'महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र' नाम पुस्तक में आचार्य महाप्रज्ञ ने लिखा है –"भगवान् महावीर नासाग्र पर ध्यान करते थे।"[42] इसका अर्थ यही है कि वे भी श्वास–प्रश्वास देखते थे। हमारे चित्ता का नासग्र के भाग पर स्थिर कर श्वास प्रेक्षा करने से मन किसी अन्य प्रवृत्तियों में नहीं जाएगा। श्वास का अनुभव करें

---

40. प्रेक्षा एक परिचय– मुनि किशनलाल –पृ. 13

41. प्रेक्षा ध्यान प्रयोग पद्धति आचार्य महाप्रज्ञ प्र. 13

42. महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र– आचार्य महाप्रज्ञ–पृ.71

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहीं स्मृति रहे, तो मन शांत रहेगा। श्वास–प्रेक्षा से तनाव उत्पन्न करने वाले कषाय शांत होते है, उत्तेजनाएं और वासनाएं शांत होती है। व्यक्ति की यह मानसिक शांति ही उसकी तनाव मुक्ति है। व्यक्ति की तनाव मुक्ति से सामाजिक शांति और सामाजिक शांति से विश्व शांति होगी।"

शरीरप्रेक्षाः–

आत्मा के द्वारा आत्मा को देखे इसका अर्थ यही है कि चित्त या मन के द्वारा आत्मा (अपनी वृत्तियों) को देखना। जब हम देखना प्रारम्भ करते है तो सबसे पहले आता है–शरीर। आत्मा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। एक अंगुली भी हिलती है तो उसमें आत्मा है जब आत्मा नहीं होती है तो शरीर निर्जीव हो जाता है, स्याद्वादमंजरी में लिखा है "आत्मा सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है।"[43]

इसलिए पूर्णतः तनावमुक्त अवस्था को पाने के लिए हमें आत्मा (अपनी चित्तवृत्तियों) का साक्षात्कार करना होगा और आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए मन की चंचलता को शांत कर, इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना होगा, जो कि शरीरप्रेक्षा से ही सम्भव है।

शरीरप्रेक्षा आध्यात्मिक प्रक्रिया है साथ ही साथ मानसिक और शारीरिक प्रक्रिया भी है। शरीरप्रेक्षा करने वाला साधक शरीर के प्रति जागरूक हो जाता है। जब शरीर के प्रति सजगता आती है। तो व्यक्ति शरीर से जुड़ी इन्द्रियों पर नियंत्रण प्राप्त कर लेता है और इन्द्रियों पर नियंत्रण ही तनावमुक्ति का मार्ग है।

"जैन आगमों के अनुसार जितने परमाणु या जितने पुदगल बाहर से आत्मा द्वारा ग्रहण किये जाते है, उनको लेने का एकमात्र माध्यम है, हमारा

---

43. स्याद्वमत्रजरी श्री मल्लिप्रेणसूरिप्रणीता –9 पृ.69

नोटः– श्वास प्रेक्षा की पूर्ण प्रक्रिया के लिए देखें प्रेक्षा ध्यान प्रयोग पद्धति आचार्य महाप्रज्ञ पृ. 13,14

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर।"[44] "मन और वाणी का भी शरीर से पृथक कोई अस्तित्व नहीं है। बाह्य अस्तित्व एक मात्र शरीर है।"[45]

शरीर जब प्रतिक्रिया करता है, तो मन को चंचल या अशांत बनाता है। इसलिए तनावमुक्ति के लिए सर्वप्रथम प्रेक्षा की प्रक्रिया अपनाकर आत्मदर्शन करना चाहिए, तनावमुक्ति का अनुभव करना चाहिए। आचार्य महाप्रज्ञजी ने भी कहा है– "ध्यान से स्नायविक तनाव, मानसिक तनाव और भावनात्मक तनाव समाप्त हो जाते है।"[46]

शरीर दर्शन के अनेक दृष्टिकोण है। एक कामुक व्यक्ति शरीर को देखता है, उसके रंग, रूप व आकार को देखता है। एक डॉक्टर भी शरीर को देखता है उसका भी अपना दृष्टिकोण है। किन्तु तनावमुक्ति के लिए शरीर को साधना की दृष्टि से देखना होता है।

आचारांगसूत्र में भगवान् महावीर ने कहा है –"जो आत्मज्ञानी है वह लोक अर्थात् शरीर के निचले भाग को जानता है, मध्य भाग को जानता है और ऊपरी भाग को जानता है।[47] हमारे शरीर के भी तीन भाग हैः–

1. उर्ध्वभाग 2. मध्यभाग और 3. अधोभाग

नाभि है मध्यभाग। नाभि के ऊपर का हिस्सा है उर्ध्वलोक और नाभि के नीचे का हिस्सा है अधोलोक। तनाव मुक्त होने के लिए शरीर की रचना को चैतन्य केन्द्रो की दृष्टि से देखना चाहिए, जहाँ हमारे चेतना या ज्ञान के केन्द्र हैं। अपनी चेतना को शरीर में नीचे से ऊपर की ओर ले जाना शरीर प्रेक्षा है।

इस प्रकार शरीर दर्शन से शरीर के प्रति आसाक्ति समाप्त होती है। जब शरीर से ममत्व हटेगा तो तनाव पैदा ही नहीं होगें।

---

44. प्रोक्षा ध्यान शरीर प्रेक्षा– आ. महाप्रज्ञ पृ.31
45. चेतना का अर्ध्वरोहण पृ. 39
46. प्रेक्षाध्यानः– शरीर प्रेक्षा पृ. 29
47. आचारंग सूत्र, अमोलक ऋशि 2/5/9

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीरप्रेक्षा की यह प्रक्रिया अन्तर्मुख होने की प्रक्रिया है और अन्तर्मुख व्यक्ति ही आत्मोन्मुख होता है और आत्मोन्मुख तनावमुक्त होता है।

चैतन्य–केन्द्र–प्रेक्षा :–

शरीर के प्रमुख तंत्रों में एक तंत्र है – अन्तःस्रावी ग्रंथितंत्र। इन ग्रन्थियों से निकलने वाले स्राव को जीवनरस या हार्मोन कहते है। ये हार्मोन हमारी शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक प्रवृत्तियों का नियंत्रण करते हैं। व्यवहार और हमारी अभिव्यक्ति नाड़ी–तंत्र के द्वारा होती है, किन्तु आदतों का जन्म, आदतों की उत्पत्ति ग्रन्थि–तंत्र में होती है। "मनुष्य की जितनी आदतें बनती हैं उनका मूल जन्म–स्थल ग्रन्थितंत्र ही है।"[48] ग्रन्थियों से निकलने वाले हार्मोन ग्रन्थितंत्र ही है। ग्रन्थियों के हार्मोन, तनाव उत्पन्न करने वाली आदतों, आवेशों, वृत्तियों और वासनाओं को अत्यन्त शाक्तिशाली या कमजोर बनाने वाले प्रमुख स्रोत हैं। जैन आचार्य आत्मारामजी म.सा. के अनुसार –"आवेग, क्रोध, मान, माया, लोभ एवं राग–द्वेष आदि ग्रन्थि रूप होते है। हमारी दृष्टि में ये हार्मोन तनावमुक्ति में बाधक या साधक बनते है।[49]

दार्शनिक, वैज्ञानिक और चिकित्सक सभी एकमत से यह कहते हैं कि इन अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का व्यक्ति की भावधारा और मनोदशा के साथ गहरा संबंध है। डा. एम. डब्ल्यू. काप (एम.डी.) ने अपनी पुस्तक ग्लेण्डस अवर इनविजिबल गाइड्स में लिखा है –"हमारे भीतर जो ग्रन्थियाँ है वें क्रोध, कलह, ईर्ष्या, भय, द्वेष आदि के कारण विकृत बनती है। जब ये अनिष्ट भावनाएँ जागती हैं, तब एड्रिनल ग्लैण्ड को अतिरिक्त काम करना पड़ता है।"[50] आत्मा और शरीर के

---

48. प्रेक्षा ध्यान आधार और स्वरूप पृ. 28 महाप्रज्ञ जी
49. जैन योग सिद्धांत और साधना पृ. 177
50. प्रेक्षा ध्यान : चैतन्य– केन्द्र प्रेक्षा– पृ. 13

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बीच संचार करने का माध्यम ये ग्रन्थियाँ हैं। इन ग्रन्थियों से ही आदतों का और तनावों का जन्म होता है।

जब कोई अनिष्ट इच्छा जागती है तो ग्रन्थियाँ सक्रिय होने लगती है। इच्छा पूरी नहीं होने पर इन ग्रन्थियों से जो हार्मोन्स निकलते है वे नाड़ी तंत्र से होकर मस्तिष्क में जाते है और हमारे मानसिक सतुलन को विचलित कर देते है। ग्रन्थियों का प्रभाव हमारी भावधारा पर पड़ता है। हमारी भावधारा जैसी होगी उसका प्रभाव ग्रन्थियों पर पड़ेगा। आध्यात्मिक स्तर पर इन ग्रन्थियों को ही चेतना केन्द्र कहा जाता है।

"मनुष्य केवल हड्डी–माँस का ढांचा नहीं है, अपितु भाव प्रधान चेतना युक्त ज्ञानमयी शक्ति है।"[51]

शक्ति, ज्ञान, भाव आदि के स्थानों को या जिस स्थान से शक्ति एवं विवेक चेतना जागृत की जाती है उस स्थान को चैतन्य केन्द्र कहा जाता है।

प्रत्येक व्यक्ति के अंदर तनाव को पूर्णतः खत्म करने की और उसे उत्पन्न करने की ताकत को क्षीण करने की भी शक्ति होती है। इस शक्ति को विवेक चेतना कहते है। जब तक इस चेतना का जागरण नहीं होता, तब तक व्यक्ति का मन तनावग्रस्त होता है। चैतन्य केन्द्रों की प्रेक्षा के द्वारा इस चेतन शक्ति को जाग्रत किया जाता है, जो व्यक्ति के मानसिक संतुलन को बनाए रखती है। चैतन्य केन्द्र की श्रृंखला में निम्नलिखित केन्द्र हैं, साथ ही उनका स्थान और वे किस अन्तःस्रावी ग्रन्थि के साथ संबंधित हैं, यह भी बताया गया है।[52]

---

51. प्रेक्षा:– एक परिचय, पृ. 14

52. प्रेक्षा ध्यान, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा पृ. 20

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रमांक	नाम	ग्रन्थि से संबंध	स्थान
1	शक्ति केन्द्र	गोनाडस (कामग्रन्थि)	पृष्ठ–रज्जु के नीचे के छोरपर
2	स्वास्थ्य केन्द्र	गोनाडस(कामग्रन्थि)	पेडू(नाभि से चार अंगुल नीचे नाभि)
3	तैजस केन्द्र	एड्रीनल, पेन्क्रियाज	नाभि
4	आनंद केन्द्र	थायमस	हदय के पास बिल्कुल बीच में
5	विशुद्धि केन्द्र	थाइराइड, पेराथाइराइड	कण्ठ के मध्य भागमें
6	ब्रहा केन्द्र	रसनेन्द्रिय	जिहाग्र
7	प्राण केन्द्र	घ्राणेन्द्रिय	नासाग्र
8	चाक्षुष केन्द्र	चक्षुरिन्द्रिय	आँखों के भीतर
9	अप्रमाद केन्द्र	श्रोत्रेन्द्रिय	कानों के भीतर
10	दर्शन केन्द्र	पिच्यूटरी	भृकुटियों के मध्य
11	ज्योति केन्द्र	पायनियल	ललाट के मध्य में
12	शांति केन्द्र	हायपोथेलेमस	मस्तिष्क का अग्र भाग
13	ज्ञान केन्द्र	कोर्टेक्स	सिर के ऊपर का भाग

विधि[53]:– चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा का प्रारम्भ शक्ति केन्द्र की प्रेक्षा से किया जाता है। फिर क्रमशः स्वास्थ्य केन्द्र, चाक्षुष केन्द्र से ज्ञान केन्द्र की प्रेक्षा की जाती है। प्रत्येक केन्द्र पर चित्त को केन्द्रित कर वहाँ होने वाले प्राण के प्रकम्पनों का अनुभव किया जाता है। प्रारम्भ में प्रत्येक केन्द्रों पर दो से तीन मिनट का ध्यान किया जाता है।

53. प्रेक्षा– ध्यान, चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा पृ. 23

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन केन्द्रों पर ध्यान करने से ये केन्द्र जागृत हो जाते है। हर केन्द्र का अपना एक अलग लाभ है। जैसे शांति केन्द्र की प्रेक्षा भावधारा को परिवर्तित करती है उसे शुद्ध बनाती है। ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र की प्रेक्षा से क्रोध,वासना, लोभ आदि उपशांत हो जाते है।

संक्षेप में कहें तो किसी भी केन्द्र को जाग्रत करो, उसकी मंजिल तनावमुक्ति ही है।

अनुप्रेक्षा

एक शब्द है प्रेक्षा उसका आशय है देखना। दूसरा शब्द है अनुप्रेक्षाः अनु उपसर्ग लगते ही प्रेक्षा शब्द का आशय बदल जाता है। अनुप्रेक्षा शब्द का आशय है, चिन्तन–मनन पूर्वक देखना।

अधिकांश व्यक्ति जीवन की सत्यता को स्वीकार नहीं कर पाते, क्योंकि उसमें उन्हें कहीं ना कहीं कोई दुःख होता है। दुःख के कारण ही व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है और स्वयं का विकास नहीं कर पाता है। अनुप्रेक्षा सच्चाई को देखना है, हकीकत का सामना करने की शक्ति है। पूर्वधारणाओं को निकालकर, जो सत्य है, यथार्थ है, उसका चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। जैनयोग सिद्धांत और साधना में लिखा है– "सत्य प्रति प्रेक्षा अनुप्रेक्षा" अर्थात् सत्य के प्रति एकानिष्ठ बुद्धि से देखना अनुप्रेक्षा है।[54]

प्रेक्षा में हम शरीर के शक्ति केन्द्रों को देखते है, शरीर में हो रहे प्रकम्पनों का अनुभव करते है और अनुप्रेक्षा में या ध्यान में जो कुछ देखा गया है उस पर विचार करते है। मिथ्या धारणाएँ, मिथ्या कल्पनाएँ ही हमें तनाव के घेरे में ले जाती है, हमारी सोच को नकारात्मक बना देती हैं और सत्य इसी दबाव में आकर दब जाता है। तब हम जीवन को इतना तनावग्रस्त बना देते हैं कि तनावमुक्ति के लिए कोई रास्ता नहीं बचता। अनुप्रेक्षा हमारी मिथ्या वृत्तियों को

---

54. जैन योग सिद्धांत और साधना, पृ. 212

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् दिशा में ले जाती है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का बोध अनुप्रेक्षा से ही होता है।

दशवैकालिक चूर्णि में लिखा है–

"अणुपेहा णाम जो मणसा परियट्टेइ णो वायाए"[55] अर्थात् पठित व श्रुत अर्थ का मन से (वाणी से नहीं) चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है। सर्वार्थसिद्धि में लिखा है – शरीर आदि के स्वभाव का पुनः–पुनः चिन्तन करना अनुप्रेक्षा है।[56]

जब हम किसी भी धारणा का बार–बार चिन्तन कर, उसके वास्तविक रूप को समझते है या शरीर आदि के स्वभाव को समझकर उससे आत्मा का भेद जानते हैं, तो वह चिन्तन सम्यक् चिन्तन होता है, वही तनावमुक्ति प्रदान करता है। अनुप्रेक्षा के प्रयोग से व्यक्ति राग–द्वेष मय मान्यताओं से हटकर सत्यता को स्वीकार कर लेता है।

तनावमुक्ति के लिये सत्य को जानने के लिए प्राचीन जैनग्रन्थों तथा जैनयोग–सिद्धांत और साधना में बारह अनुप्रेक्षाएं बताई गई है।[57]

1. अनित्य अनुप्रेक्षा
2. अशरण अनुप्रेक्षा
3. संसार अनुप्रेक्षा
4. अन्यत्व अनुप्रेक्षा
5. एकत्व अनुप्रेक्षा
6. अशुचि अनुप्रेक्षा
7. आस्रव अनुप्रेक्षा
8. संवर अनुप्रेक्षा
9. निर्जरा अनुप्रेक्षा
10. लोक अनुप्रेक्षा

---

55. दशवै. चूर्ण पृ. 26
56. सर्वार्थसिद्धि–912/409
57. जैन योग सिद्धांत ओर साधना पृ. 213

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

11. बोधि दुर्लभ अनुप्रेक्षा

12. धर्म अनुप्रेक्षा

इन बारह में प्रथम चार अनुप्रेक्षाओं का वर्णन ठाणांग सूत्र में भी मिलता है। ठाणांग में धर्म ध्यान की चार अनुप्रेक्षाएं कही है, यथा – एकत्वानुप्रेक्षा, अनित्यानुप्रेक्षा, अशरणानुप्रेक्षा और संसारानुप्रेक्षा''[58]

1. अनित्यानुप्रेक्षा :– शरीर की अनित्यता और मृत्यु की अनिवार्यता बताते हुए भगवान् महावीर ने आचारांग में लिखा है –''यह शरीर अनित्य और अशाश्वत है। इसका चय–अपचय होता रहता है, इसका स्वभाव ही विनाश और विध्वंस है''[59]

व्यक्ति जब शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता है, तो उसका मन विचलित हो जाता है। सभी कामनाएँ शारीरिक ही होती है। शारीरिक कामनाएँ ही तनाव उत्पत्ति का कारण हैं। अनुप्रेक्षा द्वारा शरीर की अनित्यता को जाना जाता है। इससे उसके प्रति ममत्व कम हो जाता है। अनुप्रेक्षा से यह ज्ञात होता है कि यह शरीर मरणशील है। आचारांग में कहा गया है –''यह शरीर क्षण–प्रतिक्षण मृत्यु की ओर जा रहा है''[60]

शरीर के यर्थाथ स्वरूप को जानने वाला शरीर के प्रति आसक्ति का त्याग कर देता है और जहां आसक्ति का त्याग होता है वहां तनाव का भी त्याग हो जाता है।

2. अशरण अनुप्रेक्षा – व्यक्ति की यह कमजोरी है कि वह दूसरों पर निर्भर होता है। दूसरे की शरण में स्वयं को सुरक्षित समझता है, किन्तु यह उसकी मिथ्या धारणा है, जो उसे तनावग्रस्त बना देती है। अशरण अनुप्रेक्षा का मूल मर्म है स्वयं की शरण में आना। मेरा कोई रक्षक नहीं है, मेरा कोई शरण प्रदाता नहीं है, कोई मेरा नाथ (स्वामी) नहीं, इस अनुप्रेक्षा के साथ मन–मस्तिष्क को

---

58. ठांणाग सूत्र – 4/1/247

59. आचारांग सूत्र – 5/2/509

60. आचारांग सूत्र – 2/2/239

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जोड़ना, या योग करना ही अशरण अनुप्रेक्षा योग साधना है। तनाव उत्पन्न करने के सहायक तत्व धन, पदार्थ और परिवार है। ये सब हमारे अस्तित्व से भिन्न है, इसका ज्ञान अनुप्रेक्षा से होता है। अपनी सुरक्षा अपने अस्तित्व में है। अशरण की अनुप्रेक्षा राग–त्याग की साधना है। राग–द्वेष से परे व्यक्ति तनावमुक्त जीवन व्यतीत करता है।

3. संसार अनुप्रेक्षा – यह संसार जन्म मरण का चक्र है। जब तक जन्म–मरण चलता रहेगा, व्यक्ति तनावग्रस्त होता रहेगा। व्यक्ति की संसार के प्रति आसक्ति ही तनाव का कारण है। वह संसार के दुःखों को सहन तो करता है, पर उन दुःखों की जड़ को समाप्त करने का विचार नहीं करता। संसार अनुप्रेक्षा में साधक संसार के दुःखों, जन्म–जरा–मरण की पीड़ाओं, चारों गतियों के कष्ट पर विचार करता है। तनाव बनाने वाले इस संसार से मुक्त होकर मोक्ष की अभिलाषा करता है। यह सम्पूर्ण संसार और संसार के प्राणी एकांत दुःख से दुःखी है, कहीं भी सुख का लेश नहीं है।[61] इस पर विचार करता है। यह संसार ही तनावग्रस्त होने का कारण है और तनावमुक्त अवस्था ही मोक्ष है। भगवान् महावीर के शब्दों में **"पास लोए महब्भयं"** अर्थात् तू संसार को महाभयानक रूप में देख।[62]

इस प्रकार अनुचिन्तन करने से व्यक्ति में तनावों से मुक्ति और संसार से मुक्ति पाने की प्रबल इच्छा जाग उठती है और वह मोक्ष प्राप्ति के लिए सम्यक् प्रयत्न करता है।

4. एकत्व अनुप्रेक्षा – एकत्व से तात्पर्य है कि भीड़ में भी अकेला होना अर्थात मैं अकेला आया था और अकेला ही जाऊगाँ, शेष सब संयोगजन्य है। जैन धर्म का यह मानना है कि तनाव का मूल कारण राग–द्वेष है और ये दोनों ही **'पर'** के कारण होते है। एकत्व अनुप्रेक्षा में **'पर'** को **'पर'** समझा जाता है और

---

61. सूत्रकृतांग – 17/11

62. आचारांग सूत्र – 6/1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधक की दृष्टि आत्मकेन्द्रित हो जाती है, जो वस्तुएं बाहरी है, उनसे साधक के चित्त में विरक्ति हो ही जाती है, वह अपने मनोभावों को भी अपना नहीं मानता, सिर्फ अपने आत्मिक गुणों को ही अपना मानता है।

शेष अनुप्रेक्षाएँ भी इसी तरह हमारे ममत्व या रागभाव को समाप्त कर हमें तनावमुक्ति या मोक्ष की दिशा में ले जाती है।

कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग शब्द का शाब्दिक अर्थ है शरीर का उत्सर्ग करना, लेकिन जीवित व्यक्ति शरीर का त्याग कर दे तो वह जीवित ही नहीं रहेगा। यहां पर शरीर त्याग से तात्पर्य शरीर और आत्मा के भेद विज्ञान के द्वारा शरीर के प्रति ममत्व के त्याग से है। शरीर और आत्मा के भेद विज्ञान के द्वारा शरीर के प्रति ममत्व बुद्धि का त्याग करना कायोत्सर्ग है, क्योंकि यही ममत्व बुद्धि तनावों का मुख्य कारण है। कायोत्सर्ग का प्रयोग तनावमुक्ति का प्रयोग है। कायोत्सर्ग शरीर में रहे हुए तनाव और ममत्व से होने वाली मानसिक अशांति को दूर करता है। कायोत्सर्ग का मूल अर्थ तो शरीर के प्रति ममत्व का परित्याग है। ममत्व के विसर्जन से तद्जन्य तनाव का विसर्जन होता हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से शरीर के प्रति ममत्व के त्याग का अर्थ है, शरीर से आत्मा का भेद–विज्ञान।

डॉ. सागरमलजी के शब्दों में –"किसी सीमित समय के लिए शरीर के ऊपर रहे हुए ममत्व का परित्याग कर शारीरिक क्रियाओं की चंचलता को समाप्त करने का, जो प्रयास किया जाता है वही कायोत्सर्ग है।"[63]

आचार्य भद्रबाहु आवश्यकनिर्युक्ति में शुद्ध कायोत्सर्ग के संबंध में प्रकाश डालते हुए लिखते है कि "चाहे कोई भक्तिभाव से चन्दन लगाए, चाहे कोई द्वेषवश वसूले से छीले, चाहे जीवन रहे, चाहे उसी क्षण मृत्यु आ जाए, परन्तु जो

---

63. जैन बोद्ध गीता का तुलनात्मक अध्ययन पृ.–404

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

साधक देह से आसक्ति नहीं रखता है, उक्त सब स्थितियों में सम्भाव रखता है। वस्तुतः उसी का कायोत्सर्ग शुद्ध होता है"[64] कायोत्सर्ग में साधक अपने शरीर के प्रति रहे हुए ममत्व का त्याग करता है।

व्यक्ति ने अपनी शारीरिक एवं मानसिक सुख–सुविधा के जितने साधन जुटाए है, वे साधन ही उसके लिए अशांति के कारण बन रहे है। उसकी शारीरिक कामनाएं जब तक पूर्ण नहीं होती, मानसिक अशांति बनी रहती है। जब तक शरीर से आसक्ति रहेगी इच्छाएं और आकांक्षाएं जन्म लेती रहेगी। किसी की भी सारी इच्छाएं और आकांक्षाएं आज तक न तो पूर्ण हुई है औ न ही कभी पूर्ण होगी। यह एक दुष्चक्र है, जिसमें व्यक्ति निरंतर गतिशील बना रहता है। यह गतिशीलता व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती है। उसकी मानसिक एवं शारीरिक स्वस्थता को विकृत देती है।

कायोत्सर्ग शरीर के प्रति हमारी आसक्ति को कम करते हुए शरीर से आत्मा के भेद को स्पष्ट करता है। भेद विज्ञान की साधना दृढ़ हो जाने पर व्यक्ति की दैहिक–कष्ट या दुःख सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है, उसकी यह धारणा बन जाती है कि ये दुःख और कष्ट शरीर को हो रहा है, मुझे अर्थात् आत्मा को नहीं और यह शरीर तो एक दिन विनाश को प्राप्त होने वाला है, शरीर के प्रति मेरी ममत्व बुद्धि ही मेरे तनावग्रस्त होने का कारण है।

ऐसा सोचना भी व्यक्ति को तनावमुक्त बना देता है। जैन साधना में कायोत्सर्ग का महत्त्व बहुत अधिक है। "प्रत्येक अनुष्ठान के पूर्व कायोत्सर्ग की परम्परा है"[65] कायोत्सर्ग का महत्व बताते हुए आवश्यकनिर्युक्ति में लिखा है –"कायोत्सर्ग सब दुःखों से मुक्त करने वाला है, सब दुःखों से छुटकारा देने

---

64. आवश्यकनिर्युक्ति, 1548–उदधृत श्रमणसूत्र पृ.–99

65. जैन बोद्ध गीता का तुलनात्मक अध्ययन पृ.–404

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाला है।[66] क्योंकि कायोत्सर्ग सभी प्रकार के तनाव से मुक्ति देने वाला है। कायोत्सर्ग की पहली निष्पत्ति है --तनाव मुक्ति।

"कायोत्सर्ग की विधि"[67] :– कायोत्सर्ग खड़े रहकर, बैठकर और लेटकर तीनों मुद्राओं में किया जाता है। खड़े रहकर करना उत्तम कायोत्सर्ग बैठकर करना मध्यम कायोत्सर्ग और लेटकर करना सामान्य कायोत्सर्ग है।

पहला चरण :– खड़े होकर कायोत्सर्ग का संकल्प करें। "तत्स उत्तरीकरणेणं पायाच्छित करणेणं, विसोहिकरणेणं, विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्धायणट्ठाए ठामि काउसग्गं।"

अर्थात् मैं शारीरिक मानसिक और भावनात्मक तनावों से मुक्त होने के लिए कायोत्सर्ग का संकल्प करता हूँ।

दूसरा चरण :– ताड़ासन करें।

तीसरा चरण :– पीठ के बल लेटे, शरीर को शिथिल छोड़ दे, आंखें बंद, श्वास मन्द, शरीर को स्थिर रखें।

प्रत्येक अवयव में शीशे की भांति भारीपन का अनुभव करें (एक मिनिट) प्रत्येक अवयव में रूई की भांति हल्केपन का अनुभव करें (दो मिनिट)।

चौथा चरण :– दाएं पैर के अंगूठे पर चित्त को केन्द्रित करें, शिथिलता का सुझाव दे। अंगूठे का पूरा भाग शिथिल हो जाए, अंगूठा शिथिल हो रहा है, अनुभव करें – अंगूठा शिथिल हो गया है।

इसी प्रकार अंगुली एवं पंजे से लेकर कटिभाग तक फिर बाएं पैर के अंगूठे से कटिभाग तक, फिर पेडू से सिर तक प्रत्येक अवयव पर चित्त को केन्द्रित करें, शिथिलता का सुझाव दें और उसका अनुभव करें। (15 मिनिट)

---

66. आवश्यक निर्युक्ति – 1476

67. जीवन विज्ञान और जैन विद्या प्रायोगिक पृ.–33

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर के प्रत्येक अवयव के प्रति जागरूक रहें। शरीर के चारों ओर श्वेत रंग के प्रवाह का अनुभव करें। शरीर के कण–कण में शांति का अनुभव करें।

पांचवा चरण :– पैर के अंगूठे से सिर तक चित्त और प्राण की यात्रा करें। तीन दीर्घश्वास के साथ कायोत्सर्ग सम्पन्न करें। दीर्घश्वास के साथ प्रत्येक अवयव में सक्रियता का अनुभव करें।

बैठने की मुद्रा में आएं। शरणं सूत्र का उच्चारण करें।

"वंदे सच्चं" से कायोत्सर्ग सम्पन्न करें।

कायोत्सर्ग से लाभ :– आचार्य भद्रबाहु ने कायोत्सर्ग के पांच लाभ बताये है।[68]

1. देहजाड्यशुद्धि :– श्लेष्म आदि के द्वारा देह में जड़ता आती है। कायोत्सर्ग से शरीर में श्लेष्म आदि दोष दूर होते है। चूंकि शरीर एवं मन की शुद्धि से तनावमुक्ति का संबंध है। अतः कायोत्सर्ग की साधना से देह की जड़ता दूर होकर शरीर में स्फूर्ति लाती है, जो शरीर को तनाव मुक्त बनाती है।

2. मतिजाड्यशुद्धि :– कायोत्सर्ग से शरीर के साथ–साथ मन की प्रवृत्ति केन्द्रित हो जाती है, चित्त एकाग्र होता है, उससे बुद्धि की जड़ता समाप्त होती है। जब बुद्धि की जड़ता समाप्त होगी, तो उससे सही समझ एवं सही सोच–विचार करने की क्षमता बढ़ जाएगी, जो तनावमुक्ति में सहायक होगी।

3. सुख–दुःख तितिक्षा :– कायोत्सर्ग से देह और आत्मा की पृथकता का पूर्ण विश्वास हो जाता है। अतः व्यक्ति का देह के प्रति ममत्व भाव कम होने लगता है। इससे उसमें सुख–दुःख सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है और वह दुःख को समभाव से सहन कर अपने मानसिक संतुलन को विकृत नहीं होने देता है।

4. अनुप्रेक्षा :– प्रेक्षा ध्यान के प्रत्येक अनुष्ठान के पूर्व कायोत्सर्ग किया जाता है। कायोत्सर्ग से व्यक्ति अनुप्रेक्षा एवं प्रेक्षा प्रक्रिया को स्थिरतापूर्वक कर सकता है।

---

68. आवश्यक निर्युक्ति– 146

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5. ध्यान :– कायोत्सर्ग से शुभध्यान का अभ्यास सहज हो जाता है। इस प्रकार तनाव मुक्ति ध्यान साधना की पहली शर्त है। कायोत्सर्ग के अन्य कई लाभ है, जिनका मुख्य उद्देश्य कायोत्सर्ग से तनावमुक्ति ही है।

6. कायोत्सर्ग से अल्फा तरंग विकसित होती है।[69] कायोत्सर्ग से पूर्णतः तनाव मुक्ति मिल सकती है।

यदि विज्ञान के संदर्भ में इसे समझने का प्रत्यन करें तो यह बात सिद्ध हो जाती है। क्योंकि मस्तिष्क में कई तरंगे है, अल्फा, बीटा, थीटा, गामा आदि। जब–जब अल्फा तरंगें होती है, मानसिक तनावों से मुक्ति मिलती है, शांति का अनुभव होता है। कायोत्सर्ग में अल्फा तरंग को विकसित होने का मौका मिलता है। कायोत्सर्ग किया और अल्फा तरंग उठने लगती है। फलतः मानसिक तनाव घटने लगता है।

7. चित्तशुद्धि :– तनाव मुक्ति के लिए चित्त विशुद्धि सबसे जरूरी है, चित्त की शुद्धि होना और चित्त की शुद्धि के लिए शरीर की स्थिरता का होना आवश्यक है। शरीर की स्थिरता हुए बिना चित्त की स्थिरता सम्भव नहीं हो सकती है। मन शांत नहीं होता, स्मृतियां शांत नहीं होती, कल्पनाएं समाप्त नहीं होती और तनावग्रस्ता अधिक बढ़ जाती है। कायोत्सर्ग में शरीर को स्थिर करने का प्रयास किया जाता है शरीर के स्थिर होने से वाणी को भी विराम मिलता है। वाणी शारीरिक अवयवों चंचलता के बिना सम्भव नहीं है। वाणी का विराम मिलने पर मन के संकल्प विकल्प भी थम जाते है। वैचारिक स्थिरता आती है, जो तनाव मुक्ति का आधार है।

---

69. महावीर का स्वास्थ्य शास्त्र महाप्रज्ञ पृ.–108

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भोजन संबंधी विधियाँ –

बहुत पुरानी कहावत है "जैसा खाए अन्न, वैसा होवे मन"। आहार मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता है। आहार भी मनुष्य के तनाव को दूर करने में सहायक होता है। साथ ही साथ वह उसके व्यक्तित्व का निर्माण भी करता है। संतुलिता आहार के अभाव में जहाँ एक ओर लाखों लोग भूख से मरते है वही दूसरी ओर आवश्यकता से अधिक खाकर लाखों लोग मरते है। एक ओर आहार के अभाव भूख की वेदना से तनाव उत्पन्न होते हैं, तो वहीं दूसरी ओर आहार की लालसा या स्वाद लोलुपता भी तनाव उत्पन्न करती है। तामसिक आहार से शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य की समस्याएं बढ़ती जा रही है मानसिक असंतुलन का एक कारण असंतुलित आहार भी है। आचार्य महाप्रज्ञजी अपनी पुस्तक 'चित्त और मन' में यहाँ तक लिखते हैं कि –"असंतुलित भोजन के कारण भी आदमी पागल बन जाता है।" जब भोजन संतुलित होता है, तो मस्तिष्क भी ठीक से काम करता हैं। उसका भी संतुलन बना रहता है, किन्तु असंतुलित भोजन व्यक्ति के स्वभाव को चिड़चिड़ा व क्रोधी बना देता है।

जैनधर्म के शास्त्रों में संतुलित भोजन को उचित आहार व असंतुलित भोजन को अनुचित आहार कहा गया है। उचित आहार को ग्रहण करके और अनुचित आहार का त्याग करके व्यक्ति अपनी भोगासक्ति पर विजय प्राप्त कर लेता है। कहते हैं –सभी कार्यों में वायुकाय की हिंसा से विरत होना कठिन है, सभी कर्मों में मोहनीय कर्म पर विजय पाना कठिन है और पाँचों इन्द्रियों में रसनेद्रिय को वश में करना कठिन है। वस्तुतः जिसने इस रसनेद्रिय पर विजय प्राप्त कर ली वह व्यक्ति मानसिक शांति की उस अवस्था को प्राप्त कर लेता है, जिसे जैनधर्म में मोक्ष कहते है। जैन–विचारणा मे गृही–जीवन में आध्यात्मिक साधना के विकास की, उच्चतम अवस्था को अर्थात् मोक्ष को पाने के लिए जिन प्रतिमाओं का वर्णन किया है उन्हें श्रवाक प्रतिमा कहते हैं। इन ग्यारह प्रतिमाओं में सातवीं प्रतिमा अनुचित आहार–विहार से संबंधित है। जैन, बौद्ध और गीता के

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन में इन प्रतिमाओं को श्रावक जीवन की विभिन्न कक्षाएं कहा गया है और यह वर्णित किया गया है कि –"साधना की इस सातवीं कक्षा तक आकर गृहस्थ उपासक अपने वैयक्तिक जीवन की दृष्टि से अपनी वासनाओं एवं आवश्यकताओं का पर्याप्त रूप से परिसीमन कर लेता है।"[70]

भोजन करने में मनुष्य का उद्देश्य मात्र पेट भरना, स्वास्थ्य–प्राप्ति या स्वाद की पूर्ति ही नहीं है अपितु मानसिक व चारित्रिक विकास करना भी है। आहार का हमारे आचार, विचार एवं व्यवहार से गहरा संबंध है। आहार का हमारे मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः मनोनिग्रह के लिए आहार का संतुलित होना आवश्यक है।

उदाहरण के लिए– जो लोग मांसाहारी भोजन करते है उनमें करूणा, दया की भावना बहुत कम होती है। मनुष्य की भावना ही उसके कर्मों को प्रभावित करती है। "मांसाहार से मस्तिष्क की सहनशीलता की शक्ति का व स्थिरता का ह्रास होता है। वासना व उत्तेजना बढ़ाने वाली प्रवृत्ति पनपती है, क्रूरता एवं निर्दयता बढ़ती है।"[71] मांसाहार द्वारा कोमल भावनाओं का नष्ट होना, व स्वार्थ परता, निर्दयता आदि भावनाओं का पनपना ही आज विश्व में बढ़ते हुए तनाव का मुख्य कारण है।

किसी बालक को शुरू में ही मांसाहार कराया जाता है, तो वह उसे सहज भाव से ग्रहण नहीं कर पाता है, उस वक्त उसके अन्दर जो दया भाव है उसे वह मारता है किन्तु इसका उसे पता भी नहीं चलता है। बड़े होते–होते उसके अंदर से दया, करूणा एवं प्रेम की भावना समाप्त हो जाती है और उसके हदय में अपने स्वार्थ के लिए हिंसा, घृणा, क्रूरता आ जाती है। मांसाहार वासनाओं को वैसे ही भड़काता है जैसे आग में घी डालने पर आग और भड़क

---

[70] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सागरमल जैन, पृ.321

[71] शाकाहार या मांसाहार – फैसला आपका, गोपीनाथ अग्रवाल, पृ. 31

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाती है। वासनाएँ जब पूरी नहीं होती है, या उनकी तृप्ति में बाधा आती है तो क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध में सही गलत का विवेक समाप्त हो जाता है और जहां विवेक नहीं होता, वहां मानवीय गुणों का विनाश अपनी जगह बना लेता है। मांसभक्षण हर धर्म में निषिद्ध है। हर धर्म के शास्त्र चाहे हिन्दुओं के हो या मुसलमानों के हो, जैनों के हो या बौद्धों के हो, मांसाहार को केवल स्वास्थ्य के असंतुलन का ही नहीं, वरन् मानसिक असंतुलन का भी कारण माना जाता है। मांसाहारी हिंसक होते है और हिंसक व्यक्ति पूरे विश्व में अशांति और तनाव उत्पन्न कर देता है। महाभारत में लिखा है –"जो सब प्राणियों पर दया करता है, और मांसभक्षण कभी नहीं करता, वह स्वयं भी किसी प्राणी से नहीं डरता है। वह निरोग और सुखी होता है।"[72] जो मनुष्य किसी भी प्राणी को पीड़ा या क्लेश नहीं देता है वह सबका हित चिन्तक पुरूष अनंत सुख का भोगता हुए तनावमुक्त रहता है।

जैनदर्शन में तो यहां तक कहा गया है कि मांसभक्षण करने से व्यक्ति हर जन्म में दुःखी होता है। स्थानांग सूत्र के चौथे स्थान में वर्णन है कि :–

चउहिं ठाणेहिं जीवा ऐरतियत्ताए कम्मं पकरेंति, तं जहामहारम्म्ताहे महा परिम्यहयाते पचिदियवहेणं कुणिमाहारेणं।"[73]

अर्थात् महारम्भ करने से अत्यन्त ममत्व करने से, पंचेन्द्रिय जीवो के वध से, मांस–भक्षण करने से प्राणी नरक में जाते है। वहां निमेष–मात्र के लिए भी उन्हें सुख नसीब नहीं होता है।"

जैन धर्म दर्शन में तो रात्रि भोजन का भी निषेध है क्योंकि रात्रि में जीव हिंसा अधिक होती है और हमें पता भी नहीं चलता है कि भोजन के साथ कई सूक्ष्म जीव जीवित या मृत दशा में हमारे अंदर चले जाते है जो हमारे स्वास्थ्य को बिगाड़ सकते है। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भी आहार–विवेक आवश्यक है।

---

[72] महाभारत, अनुशासनपर्व – श्री प्यारचंद जी, पृ. 13

[73] स्थानांगसूत्र – चौथा स्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंतुलित भोजन शारीरिक तनाव पैदा कर देता है और शारीरिक तनाव मानव की मानसिकता को प्रभावित करता है। जो भी तत्त्व हमारे शरीर पर प्रभाव डालते हैं, वे शरीर के साथ–साथ व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं भावों पर भी असर करते है।'' योग में तीन प्रकार के भोजन का वर्णन मिलता है– सात्विक भोजन, राजसिक भोजन तथा तामसिक भोजन।''[74]

सात्विक भोजन करने से शरीर में प्राण का प्रवाह उचित रूप से होता है और मन भी शांत, सकारात्मक और नियंत्रण में रहता है। जब शरीर हमें प्राण प्रवाह का संतुलन होता है तो उत्तेजनाएं शांत होती जाती है। सात्विक भोजन करने से शरीर पुष्ट और निरोग रहता है। ऐसे भोजन के उदाहरण है –पके हुए फल, दूध, सूखे मेवे आदि।

सुरेश जी ''सरल'' की कृति **'शाकाहार ही क्यों?'** में भी सात्विक एवं संतुलित भोजन को ही तनाव मुक्ति का हेतु उल्लेखित किया है। उन्होंने कहा है –''जब मन में हीन भाव आने लगे, या मानसिक असंतुलन और चिड़चिड़ाहट आने लगें तब पुरूष हो या नारी –उसे सोचना चाहिये कि उसके आहार से उसे अपेक्षित विटामिन नहीं मिल पा रहे है। ऐसी स्थिति में शुद्ध शाकाहारी, संतुलित एवं सात्विक भोजन करें।''[75] जैन धर्म के अनुसार संतुलित भोजन करना ही हमारे स्वास्थ्य एवं मानस के लिए, यहां तक की हमारी चेतना के विकास के लिए उचित है। असंतुलित भोजन शरीर और मन दोनों में विकृति पैदा करता है और व्यक्ति को तनावयुक्त बनाता है। इसलिए भोजन के साथ–साथ भोजन के प्रकार, परिमाण एवं समय का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए ताकि व्यक्ति तनाव युक्त रह सकें।

---

[74] मन को नियंत्रित कर तनावमुक्त कैसे रहें – एम.के. गुप्ता, पृ. 20

[75] शाकाहारी ही क्यों ? – सुरेश 'सरल', पृ. 21

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक विधियां

मन हमारे भीतर की वह शक्ति हैं, जिसकी सहायता से रागी भी वीतरागी बन सकता है। समग्र संकल्प, इच्छाएँ, कामनाएँ एवं राग--द्वेष की वृतियाँ मन में ही उत्पन्न होती है और मन में ही शांत होती है। मन सद्–असद् का विवेक करता है। मन में ही तनाव पैदा होता है और मन ही हमें तनाव से मुक्त कर सकता है, ठीक वैसे ही जैसे लोहा ही लोहे को काटता है। मैत्राण्युपनिषद में लिखा है कि मन ही बंधन और मुक्ति का कारण है।"[76] जैनदर्शन में भी बंधन और मुक्ति की दृष्टि से मन की अपार शक्ति मानी गई है।[77] मन की एक अवस्था है चंचलता, तो मन की दूसरी अवस्था है शांति। चंचलता एवं एकाग्रता चेतना की अवस्थाएं है। मन ही निराश होता है और मन ही आशान्वित होता है। मन ही अशांत होता है, अशांत मन में ही तनाव होते हैं और शांत मन तनावमुक्त होता है, मन ही हमें कमजोर बनाता हैं, और मन ही शक्ति सम्पन्न बनाता है। अगर हम मन की सकारात्मक शक्ति को बढ़ा लें, तो मन ही अमन हो जाएगा। मन ही तनाव ग्रस्त करता है और मन ही तनाव मुक्त करता है। तनावमुक्त मन के लिए निम्न मानसिक विधियां है। इन विधियों के माध्यम से व्यक्ति की मनोदशा में कुछ परिवर्तन करने के लिए उसकी इच्छा शक्ति का विकास किया जाता है। वे विधियां निम्न हैः–

1. एकाग्रता
2. योजनाबद्ध चिन्तन
3. सकारात्मक सोच

1. एकाग्रता :– जिस प्रकार शारीरिक व्यायाम से शरीर की शक्ति में वृद्धि होती है, उसी प्रकार एकाग्रता का अभ्यास करने से मानसिक तनाव समाप्त करने में मन को शक्ति मिलती है। शक्तिशाली मन जीवन की कठिनाईयों से

---

[76] मैत्राण्युपनिषद् – 4/11

[77] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ. सागरमल जैन, पृ. 482

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न तनावों का सामना करने एवं उनका निवारण करने में सफल होता है। मन विकल्पों में उलझा रहता है और उन विकल्पों का निरसन मन की एकाग्रता से ही संभव है। एकाग्रता का अर्थ है एक समय में एक ही चिन्तन मे लीन रहना, अर्थात् विकल्पों से मुक्त होने का अभ्यास करना वस्तुतः ध्यान की जितनी भी विधियां हैं, उनका एक मात्र लक्ष्य यही है कि मन की एकाग्रता हो। एकाग्रता ही व्यक्ति को वर्तमान क्षण में जीना सिखाती है। व्यक्ति या तो भविष्य की कल्पनाओं में खोया रहता है, जिनके पूर्ण न होने पर या जिनकी पूर्ति में बाधाएं उत्पन्न होने पर मन तनावग्रस्त हो जाता है या फिर भूतकाल के दुःखद क्षणों में खोया रहता है जो उसके मन को अशांत एवं तनावग्रस्त बना देता है। कभी--कभी तो व्यक्ति अपने अतीत में इतना डूब जाता है कि वह अपना मानसिक संतुलन भी खो देता है। जैनदर्शन के अनुसार एकाग्रता वर्तमान क्षण में रहने की विधि है, जो कि सफल और सुखी जीवन का एक आवश्यक गुण है। एक जैन कवि ने कहा है –"गत वस्तु सोचे नहीं, आगत वांच्छा नाय। वर्तमान में वर्ते सो ही, ज्ञानी जग माय।" आचारांगसूत्र में भगवान् महावीर ने भी कहा है **खणं ! जाणहि से पण्डिए।**[78] आचारांग में अन्यत्र यह भी लिखा है "ज्ञानी अतीत और भविष्य के अर्थ को नहीं देखते। कल्पना–मुक्त महर्षि ही अनुपश्यी होता है और कर्म–शरीर का शोषण कर उसे क्षीण कर डालता है। तात्पर्य है कि वर्तमान का अनुपश्यी ही मन की चंचलता को क्षीण कर डालता है। एकाग्रता से किया गया कार्य सदैव सफल होता है। ध्यान की जितनी भी प्रक्रिया है वे सब मन की एकाग्रता पर ही निर्भर है। जब तक मन की एकाग्रता नहीं होगी, ध्यान साधना सफल नहीं होगी। वस्तुतः मन की एकाग्रता के विकास के लिए ही ध्यान साधना के प्रयोग किए जाएँ तो तनाव को उत्पन्न करने वाले कारक समाप्त हो

---

[78] आचारांगसूत्र – 1/3/3/60

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जाते है। ठीक वैसे ही जैसे "जो योगी आत्मा का ध्यान करता है, अर्थात् ज्ञाता–दृष्टा बन जाता है, वह कर्मबन्ध को नष्ट कर देता है।"[79]

एकाग्रता के भी दो रूप होते हैं, एक वह जो तनावमुक्त करती है और दूसरी वह जो तनाव निर्मित करती है। जब व्यक्ति एक बिंदु पर एकाग्र हो जाता है, तब शेष संसार से संबंध तोड़ लेता है। उसे सिर्फ उस बिंदु पर एकाग्र होने का प्रयत्न करना होता है। यदि ये प्रयत्न इच्छा आकांक्षा या कामना से जुड़े होते हैं तो तनाव उत्पन्न करते है। किन्तु यदि ये ही प्रयत्न या पुरूषार्थ ज्ञाता दृष्टा भाव में रहने के होते हैं, तो वे तनाव मुक्त करते हैं। चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न जब तक सहज रूप में नहीं होता, तब तक भी तनाव निर्मित करता है और यह तनाव भी मानसिक व्यवस्था को अस्त–व्यस्त करता है। इसे जैनदर्शन में आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान कहा है। सहज एकाग्रता के अभाव में व्यक्ति न तो मन की चंचलता को शांत कर पाता है और न ही तनावमुक्त हो पाता है क्योंकि उसके मन में सदैव कुछ न कुछ पाने की चाह उत्पन्न होती रहती है। मन की चंचलता को शांत करने के लिए निष्कामभाव से एवं साक्षीभाव से जीवन जीने का अभ्यास करना चाहिए। ध्यान और ध्यान की साधना सिद्ध करने के लिए मन की एकाग्रता का होना आवश्यक है। तनाव मुक्ति का भान भी स्थिर चित्त ही करा सकता है। "जैन साधना–पद्धति में ध्यान योग"[80] में लिखा है –रागद्वेषात्मक जीवों में अनुकूलता और प्रतिकूलताः का कारण परिस्थिति नहीं, अपितु मन है और रागद्वेषात्मक वृत्तियों के निरोध होते ही मन भी स्थिर हो जाता है। ऐसा स्थिर मन ही आत्मा के मोक्ष का कारण बन जाता है और अस्थिर मन आत्मभ्रान्ति उत्पन्न करता है। तनावमुक्त मन आत्मा का वास्तविक प्रतिनिधि है और तनावयुक्त मन रागादि परिणति का कारण है।

---

[79] समणसुत्तं – 494

[80] जैन साधना पद्धति में ध्यानयोग –डॉ. साध्वी प्रियदर्शना, पृ. 274

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकाग्र होने की अलग से कोई विधि नहीं है। वस्तुतः ध्यान करने की जितनी भी विधियां है वे सभी मन के एकाग्र होने की विधियां है। मन की एकाग्रता का मात्र इतना लक्ष्य है कि हमारा पूरा चित्त उसी काम में होना चाहिए, जो काम हम वर्तमान क्षण में करते है। अगर हम हँसते है तो हमारा पूरा ध्यान हँसने में होना चाहिए। खुलकर हँसना चाहिए। हँसते रहो और मन को उसी हँसी का द्रष्टा बनाए रखो। उस वक्त सिर्फ हंसने से व्यक्ति तनाव से मुक्त हो जाता है, उस पल में सिवाय हँसने के कुछ याद नहीं रहता, किसी तनाव का एहसास नहीं होता। ऐसा करने से काम भी ठीक होगा, एकाग्रता भी बढेगी तथा तनाव घटते–घटते व्यक्ति एक दिन निर्विकल्प–दशा को प्राप्त कर तनावमुक्त हो जाएगा।

2. योजना बद्ध चिन्तन :– तनाव के जन्म का मुख्य कारण असफलता से पीड़ित कुठांए होती है। असफलता का मूल कारण किसी भी समस्या के संदर्भ में योजनाबद्ध तरीके से चिन्तन नहीं करना है। तनावों से मुक्त होने के लिए योजनाबद्ध चिन्तन आवश्यक है। योजनाबद्ध चिन्तन का अर्थ है कि जोकार्य हमने अपने हाथ में लिया था, उसमें असफलता के मुख्य कारण क्या रहे हैं ? असफलता के कारणों को सम्यक् प्रकार से समझकर आगे के लिए सुव्यस्थित और सुनियोजित कार्य–विधि अपनाना योजनाबद्ध चिन्तन है। इसमें किसी भी कार्य में सफलता को प्राप्त करने के लिए उसमें बाधक साधक पक्षों का विचार करना होता है तथा यह समझना होता है कि बाधक पक्षों का निराकरण कैसे होगा और साधक पक्षों का उपयोग कैसे होगा ? इसे ही हम योजनाबद्ध चिन्तन कह सकते हैं। संक्षेप में यह असफलता के निराकरण के कारणों और सफलता के साधनों का सम्यक् उपयोग योजना को सफल बनाता है। अव्यस्थित चिन्तन में व्यक्ति वस्तुतः अपने अचेतन मन को नियंत्रित करने के बजाए उससे ही नियंत्रित होता है और सफलता के लिए यथार्थ को भूलकर काल्पनिक उड़ानें भरने लगता है। फलतः अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में विफल हो जाता है। ये विफलताएं कुंठा को जन्म देती है और कुंठा की अवस्था मे वह अव्यवस्थित रूप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से व्यवहार करने लगता है। अतः योजनाबद्ध चिन्तन का अर्थ है, चेतन मन को पूरी तरह सजग बनाकर यथार्थ की भूमिका पर लक्ष्य की प्राप्ति के लिए व्यवस्थित चिंतन करना। जैनदर्शन में लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक तत्त्व को प्रमाद कहा गया है। प्रमाद की अवस्था में हमारा चेतन मन सुप्त हो जाता है और अचेतन मन सक्रिय हो जाता है। अचेतन मन यथार्थ को समझने के बजाए कपोल कल्पना के द्वारा लक्ष्य को पाने का असम्यक् प्रयत्न करता है। यदि तनावों से मुक्त होना है तो जैनदर्शन के अनुसार उसकी सबसे प्रमुख शर्त यह है कि अप्रमत्त और सजग होकर जिए। जैनदर्शन में प्रमाद को ही बंधन का और दुःख का हेतु बताया गया है। अतः जैनदर्शन के अनुसार तनावमुक्ति के लिए हमें चेतना के स्तर पर सजग होना होगा। जब चेतना सजग होती है तो वह यथार्थ और आदर्श के मध्य एक ऐसे सेतु का निर्माण करती है, जो लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक होता है। यथार्थ की भूमिका पर खड़े होकर आदर्श की प्राप्ति का लक्ष्य बनाना और उस ओर गति करना। यही जैनदर्शन के अनुसार योजनाबद्ध चिन्तन है। इसके माध्यम से व्यक्ति सफलता को प्राप्त कर असफलता जन्य कुंठा से उत्पन्न तनावों से मुक्त हो सकता है।

2. सकारात्मक सोचिए :– स्वस्थ, प्रसन्न और तनावमुक्त जीवन जीने की पहली शर्त है, सकारात्मक सोच। वस्तुतः व्यक्तिगत, परिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय तथा समस्त विश्व की समस्याओं का निराकरण सकारात्मक सोच से ही संभव है। मानसिक शांति और प्रगति के लिए अपनी विचारधारा को सकारात्मक बनाना होगा। जैन मुनि चन्द्रप्रभजी लिखते है कि –"सकारात्मक सोच का स्वामी सदा धार्मिक ही होता है।"[81] सकारात्मक का अर्थ है सही ढ़ंग से विचार करना एवं सही समझ होना। जैनदर्शन के अनुसार सम्यग्दृष्टि होना ही सकारात्मक सोच है। जैनदर्शन के अनुसार सम्यग्दर्शन से ही सकारात्मक सोच का प्रारम्भ होता है। सम्यग्दर्शन का मूल अर्थ है यथार्थ दृष्टिकोण, सम्यग्दृष्टिकोण होना।

---

[81] सकारात्मक सोचिए, सफलता पाइए – श्री चन्द्रप्रभ सागर, पृ.1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इसका भावार्थ यही है कि सही समझ होना या सकारात्मक सोच होना। जहाँ सही समझ होती है वहाँ व्यक्ति के व्यवहार में विनम्रता, स्थिरता और सहनशीलता आती है। जो व्यक्ति अपने जीवन को सम्यक् रूप से जीता है, उसमें सकारात्मक सोच स्वतः ही उत्पन्न हो जाती है। अगर दृष्टिकोण सही नहीं है, तो व्यक्ति अपने व्यवहार और ज्ञान को सम्यक् नहीं बना सकता। जब व्यक्ति का ज्ञान सम्यक् नहीं होता है, तो व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है। सकारात्मक सोच के अभाव में व्यक्ति असफलता को पाता है। फलतः उदासी एवं अवसाद में चला जाता है। सकारात्मक सोच जीवन में सफलता का मूल मंत्र है। व्यक्ति की सोच उसके दैनिक–जीवन के क्रियाकलापों तथा आचार व्यवहार को सीधा प्रभावित करती है। मोक्षपाहुड मे लिखा है –"जो सम्यग्दर्शन से शुद्ध है वही निर्वाण प्राप्त करता है। सम्यग्दर्शन–विहीन पुरुष इच्छित लाभ प्राप्त नहीं कर पाता।"[82] दंसण पाहुड में भी यह अंकित किया गया है कि –"सर्म्यदर्शन से भ्रष्ट व्यक्ति को कभी भी निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती है।[83]

कहने का तात्पर्य यही है कि जो सम्यग्दृष्टि जीव है, जो सकारात्मक विचार वाला व्यक्ति है वही मोक्ष प्राप्त करता है और तनावमुक्त अवस्था ही मोक्ष है। सम्यग्दृष्टिकोण के अभाव में व्यक्ति सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। वह अपनी सम्यक् इच्छाओं को भी पूर्ण करने में असफल हो जाता है। जसे भी कार्य किये जाते है, वे पहले सोच के रूप में मानसिक पटल पर उभरते हैं। जिसकी सोच सकारात्मक होगी, उसका मानसिक संतुलन बना रहेगा और अगर सोच नकारात्मक रही, तो व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाएगा। जैनदर्शन के अनुसार सम्यग्दृष्टिकोण को सकारात्मक सोच कहा है। व्यक्ति का मिथ्यादृष्टिकोण उसकी नकारात्मक सोच का सूचक है। नकारात्मक सोच का परिणाम चिंता और तनाव है। मुनि चन्द्रप्रभजी लिखते है –"मस्तिष्क में जैसा डालोगे, वह वापस

---

[82] मोक्ष पाहुडी – 39, समणसुत्तं, 224

[83] दर्शन पाहुडी – 3, समणसुत्तं, 223

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वही देगा।"[84] –अर्थात् अगर नकारात्मक सोच है तो उसका परिणाम भी नकारात्मक ही होगा और जो सकारात्मक सोच होगी, तो मानसिक संतुलन बना रहेगा। परिणाम में वह सम्यक् आचार और व्यवहारिक दिशा ही देगा। आज की शैली में कहें तो कम्प्यूटर में जो "डाटा फीड" करेंगे, कम्प्यूटर वैसा ही परिणाम देगा। नकारात्मक विचार अपने मन को अशांत, बैचेन और अशुद्ध बनाते हैं। "नकारात्मक सोच व्यक्ति को शक्तिहीन बना देती है, जबकि विधायक विचार आपको शक्ति प्रदान करते हैं और चेतना को शुद्ध बनाते हैं।[85] जब हमारा मन नकारात्मक रूप से आवेशित होता है, तब प्राण के प्रवाह में बाधा उत्पन्न होने लगती है और प्राण प्रवाह में असंतुलन कई विकृतियों को उत्पन्न करता है। यह व्यक्ति को कमजोर और आलसी बना देता हैं। ऐसी स्थिति में वह किसी भी कार्य में सफलता प्राप्त नहीं कर पाता और परिणाम स्वरूप वह तनावग्रस्त हो जाता है। किन्तु जब मन सकारात्मक रूप से आवेशित होता है तब इसके विपरीत परिणाम होते हैं, प्राण प्रवाह संतुलित होता है। व्यक्ति में एक ऊर्जा उत्पन्न होती है जो उसके कार्य को सफल बनाती है और सफलता व्यक्ति को तनावमुक्त रखती है। कई तत्त्व ऐसे होते हैं, जो हमारी सोच को प्रभावित करते है। सोच को प्रभावित करने वाली स्थितियों में जो व्यक्ति सकारात्मक विचार करता है वह तनावग्रस्त नहीं होता है, किन्तु नकारात्मक विचार करने वाले व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाते है।

सोच को प्रभावित करने वाले तत्त्वः–

(अ) व्यक्ति की शिक्षा :– व्यक्ति जिस स्तर की शिक्षा प्राप्त करता है, उसकी सोच भी उतनी ही विकसित होती है। शिक्षा सिर्फ आजीविका चलाने या व्यवसाय करने तक ही सीमित नहीं है, शिक्षा से व्यक्ति के विचार व संस्कार भी बनते है। उच्चस्तर की शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति की सोच भी उच्च रहती

---

[84] सकारात्मक सोचिए, श्री चन्द्रप्रभ सागर, पृ. 3

[85] मन को नियंत्रित कर तनावमुक्त कैसे रहें ? – एम.के. गुप्ता, पृ. 35

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। उसमें यह क्षमता होती है कि वह तनावपूर्ण स्थिति में भी संघर्ष कर तनावमुक्ति को प्राप्त करता है।

(ब) वातावरण :—जिस वातावरण में व्यक्ति रहता है उसकी सोच भी उसी वातावरण के अनुरूप होती है। जैसा वातावरण मिलेगा वैसा ही विकास होगा। बच्चा अगर गलत और कलह के वातावरण में रहेगा तो उसके विचारों में गलत धारणाएं उत्पन्न होगी। उसकी मानसिकता ईष्या, कलह, छल, कपट आदि की होगी। गलत विचार और गलत मानसिकता मानसिक संतुलन को अस्तव्यस्त कर देती है। इसके विपरीत अगर सोच सम्यक् होगी तो जीवन में सुख—शांति रहेगी।

(स) जीवन में अर्जित होने वाले अनुभव :— व्यक्ति की सोच और मानसिकता को प्रभावित करने वाला यह तीसरा तत्त्व है। जीवन में लगने वाली ठोकरें ही सम्भलना सिखाती है। अतीत में हुई गलतियों को गलतियों मानकर वर्तमान में जीना तनावमुक्ति के लिए सबसे सरल उपाय है, किन्तु व्यक्ति अतीत में हुए हादसों और गलतियों को भी सही समझ कर गले से लगाए रखता है, जो उसे तनावग्रस्त कर देते हैं तथा व्यक्ति में नकारात्मक सोच उत्पन्न करते हैं। जीवन में अर्जित वाले अनुभव को अनुभव के आधार पर ही रखकर सकारात्मक सोच रखना तनावमुक्ति का सरल उपाय है।

सकारात्मक सोच बनाए रखने के लिए सहायक तत्त्व :—

1. क्रोध के बजाए शांति को मूल्य दें। क्रोध नकारात्मक सोच को जन्म देता है, नकारात्मक सोच अशांति को और अशंति दुःख या तनाव को जन्म देती है इसलिए क्रोध को जीवन शैली का अंग नहीं बनाए।
2. सुसंस्कारों को ग्रहण करे। व्यक्ति को ऐसे माहौल या वातावारण में रहना चाहिए जहां अच्छे संस्कार दिए जाते हो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3. उच्च स्तर की शिक्षा ग्रहण करे। वैज्ञानिक के साथ–साथ आध्यात्मिक शिक्षा भी बच्चों को दे।

4. हर परिस्थिति में प्रसन्न व सकारात्मक सोच रखें। "जो होता है अच्छे के लिए होता है" ऐसी विचारधारा रखे।

5. अतीत की गलतियों से जागे और सार्थक सोच के साथ वर्तमान क्षण में जिएं।

मुनि चन्द्रप्रभ जी लिखते हैं –"नकारात्मक विचार अनायास ही चले आते है किन्तु सकारात्मक विचार को स्वयं के प्रयास से लाना होता है।"[86] अतः सकारात्मक सोच को लाने का प्रयास करते रहना चाहिए ताकि व्यक्ति तनावमुक्त रहे।

सकारात्मक सोच की उपलब्धियां:–

सकारात्मक सोच से निराशा, तनाव, घुटन समाप्त हो जाती है, किसी भी कार्य को करने में एक उत्साह उत्पन्न होता है। सकारात्मक सोच से व्यक्ति में आत्म–विश्वास जाग जाता है, जो उसे सफलता के शिखर पर पहुंचाता है। सार्थक सोच व्यक्ति के क्रोध को नियंत्रण में रखती है। वह व्यक्ति में से ईर्ष्या, बैर, लोभ की भावना को समाप्त कर देती है। विधायक विचार करने से व्यक्ति प्रतिकूल परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बना लेता है। एम.के. गुप्ता जी का कहना है कि –"विधायक मन के बने रहने से व्यक्ति अपने चारों और विधायक स्पंदनों की आभा का सृजन कर लेता है, जिससे स्वयं को ही नहीं, बल्कि जो भी उसके संपर्क में आता है, उसे भी लाभ पहुंचता है।"

मनोवैज्ञानिक विधि द्वारा तनाव मुक्ति

तनावमुक्ति के लिए सबसे अधिक प्रचलित उपाय मनोवैज्ञानिकों द्वारा सुझाये गये हैं। मनोवैज्ञानिकों ने तनाव कम करने के लिए प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष

---

[86] सकारात्मक सोचिए – श्री चन्द्रप्रभ सागर, पृ.9

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दो प्रकार की विधियों का वर्णन किया है।[87] तनाव कम करने की ये विधियाँ व्यक्ति को कुछ समय के लिए या अधिक समय के लिए परिस्थितियों के साथ समझौता करने के लिए या समझौता नहीं करने के लिए प्रस्तुत की गई है, लेकिन इनका उद्देश्य तनाव को कम करना ही है।[88]

प्रत्यक्ष विधियाँ :– प्रत्यक्ष विधियों का प्रयोग तनाव कम करने के लिए नहीं, अपितु तनाव को पूर्णतः समाप्त करने के लिए होता है।

(अ) बाधा का निवारण :– तनाव तब उत्पन्न होता है जब हमारे उद्देश्य की पूर्ति में कोई बाधा आ जाती है। इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति, उस बाधा का निवारण करने का प्रयत्न करता है और तनाव मुक्त होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

डॉ. सुधा जैन के आलेख "तनाव : कारण एवं निवारण" में इसका उदाहरण देते हुए लिखा गया है कि –"जैसे एक हकलाने वाला व्यक्ति अपने दोष से मुक्त होने के लिए मुंह में पान रखकर बोलने का प्रयास करके उसमें सफलता प्राप्त करता है।"[89]

(ब) अन्य उपाय की खोज :– इस विधि के अनुसार व्यक्ति जब उद्देश्य प्राप्ति में आने वाली बाधा का निवारण नहीं कर पाता है, तो वह कोई ऐसा दूसरा उपाय खोजने लगता है, जिसमें उसे सफलता मिल सके। व्यक्ति का उद्देश्य तो वही रहता है, सिर्फ वह रास्ता बदल देता है। जैसे जब द्रोणाचार्य ने एकलव्य को शिष्य बनाने से इनकार कर दिया, तब एकलव्य ने उनकी प्रतिमा बनाकर उसे गुरू माना और अपने लक्ष्य की प्राप्ति की।" अरूणकुमार सिंह के शब्दों में –"जब व्यक्ति किसी तनावपूर्ण घटना पर अपना नियंत्रण कायम करने में सफल होता है, तो इसमें तनाव की गंभीरता अपने आप कम हो जाती है। व्यक्ति तनाव

---

[87] Gates and other – Education Psychology, P. 692
[88] श्रमण, डॉ सुधा जैन, जनवरी–मार्च, 1997, पृ. 9
[89] श्रमण, डॉ. सुधा जैन, जनवरी–मार्च 1997, पृ. 10

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न करने वाली परिस्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए समस्या का विकल्प ढूँढता है।"[90]

(स) अन्य लक्ष्यों का प्रतिस्थापनः— जब मूल लक्ष्य में सफलता प्राप्त नहीं हो पाती है, तो व्यक्ति अपना लक्ष्य ही बदल देता है तथा दूसरे लक्ष्य को निर्मित कर लेता है। व्यक्ति को जब ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ता है, जो उसके नियंत्रण के बाहर है, तो ऐसी स्थिति में वह अपना लक्ष्य बदल देता है। जैसे कोई नर्तकी में अपना व्यक्तित्व बनाने का लक्ष्य रखे, किन्तु किसी हादसे में यदि वह अपना पैर ही खो दे, तो उसे अपना लक्ष्य बदलना होता है।

(द) व्याख्या एवं निर्णय :— जब व्यक्ति के सामने दो वांछनीय, पर विरोधी इच्छाएँ होती है तो वह द्वंद्व की स्थिति होती है। ऐसी स्थिति में व्यक्ति स्वयं को तनावग्रस्त पाता है। फलतः तनाव से मुक्त होने के लिए व्यक्ति को पूर्व अनुभव के आधार पर सोच–विचार कर अन्त में किसी एक का चुनाव करने का निर्णय करना चाहिए।" जिस प्रकार एडवर्ड अष्टम के समक्ष यह समस्या थी कि वह राजा रहे या मिसेज सिम्पसन से विवाह करे ? तब उन्होंने राजपद का त्याग कर मिसेज सिम्पसन से विवाह करने का निर्णय लिया था।

अप्रत्यक्ष विधियाँ :— अप्रत्यक्ष विधियों का प्रयोग केवल दुःखपूर्ण तनाव को कम करने के लिए किया जाता है। ये विधियाँ निम्न हैः—

(अ) शोधन :— जब व्यक्ति की काम प्रवृत्ति तृप्त नहीं होती है तो उसका सबसे गहरा असर उसकी मानसिकता पर पड़ता है। व्यक्ति की ये प्रवृत्तियाँ पूर्ण न होने के कारण उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है, तब वह कला, धर्म, साहित्य, समाजसेवा आदि में रूचि लेकर अपने तनाव को कम करता है। व्यक्ति स्वयं ही तनाव के कारण को समझकर अपने मन का शोधन कर लेता है। वह ऐसा कार्य करने लगता है, जो उसे रूचिकर लगता है।

---

[90] आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, पृ. 262

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(ब) पृथक्करण :– इसके अंतर्गत व्यक्ति अपने आपको उस स्थिति से अलग कर लेता है जिसके कारण तनाव उत्पन्न होता है, जैसे –जब कोई किसी को अपमानित कर देता है, तो वह उन लोगों से मिलना जुलना छोड़ देता है। व्यक्ति उस स्थान पर या उन लोगों के समीप आना जाना छोड़ देता है, जो उसे तनावपूर्ण स्थिति में ले जाते है। ऐसा करने से उसे तनावमुक्ति का अनुभव तो नहीं होता है, वरन् पुनः तनाव उत्पन्न ही नहीं होता है।

(स) प्रत्यावर्तन :– इस विधि को व्यक्ति तब अपनाता है जब स्वयं को सुरक्षित नहीं पाता है या उसमें ईष्या की भावना के लिए उत्पन्न हो जाती है, जो उसे तनावग्रस्त बनाती है। ऐसे में व्यक्ति अपने तनाव को कम करने के लिए वैसा ही व्यवहार करने लगता है, जैसा वह पहले करता था, जैसे –जब घर में दो बालक हो जाते है। तब बड़ा बालक माता–पिता का उतना ही प्रेम पाने के लिए छोटे बच्चे की तरह घुटनों से चलना, हठ करना आदि क्रियाएँ करने लगता है।

(द) दिवास्वप्न :– सपने, कल्पनाएँ व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाती हैं, किन्तु जो इच्छाएँ पूरी नहीं होती व्यक्ति इन इच्छाओं की पूर्ति स्वप्नों या कल्पनाओं के माध्यम से करता है। ऐसा करने से कुछ समय के लिए उसकी पीड़ा कम हो जाती है। ऐसी परिस्थिति में व्यक्ति तनाव को कम करने के लिए कल्पना–जगत में विचरण करने लगता है, जैसे –छोटे बालक को हठ करने पर यह समझाया जाता है कि वह वस्तु उसे बड़े होने पर मिलेगी। इसी कल्पना में बालक फिर से हँसने लगता है।

(ई) आत्मकरण – कभी–कभी व्यक्ति हीनता की भावना से इतना तनावग्रस्त हो जाता है कि वह अपना आत्मविश्वास खो देता है और क्रमशः अधिकाअधिक तनावग्रस्त होता जाता है। ऐसे में व्यक्ति को आत्मीयकरण विधि को अपनाना चाहिए। इस विधि के अन्तर्गत किसी महान पुरूष, अभिनेता, राजनीतिज्ञ, आदि के साथ एकात्मता हो जाने का अनुभव करता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। जैसे –बालक अपने पिता से व बालिका अपनी माता से तादात्म्य स्थापित करके उनके कार्यों का अनुकरण करके प्रसन्न होते हैं, जिससे उनका तनाव कम होता है।

(एफ) निर्भरता :– जब व्यक्ति अपना जीवन यापन नहीं कर पाता है, तो उसमें एक हीनता की भावना उत्पन्न होती है, उसमें निर्णय लेने की क्षमता भी क्षीण होती जाती है, ऐसे में व्यक्ति तनाव कम करने के लिए अपने आपकों किसी दूसरे पर निर्भर कर अपने सम्पूर्ण जीवन का दायित्व उसे सौंप देता है, जैसे –इस प्रकार के व्यक्ति महात्माओं के शिष्य बनकर उनके आदेशों व उपदेशों का पालन कर जीवन–यापन करते हैं।

(जी) औचित्य स्थापना :– जब व्यक्ति कोई गलत कार्य या गलत व्यवहार करता है और दूसरे व्यक्ति उस पर आरोप लगाते है तब वह व्यक्ति अपने कार्य व व्यवहार का युक्ति से या तर्क से औचित्य स्थापना कर अपने तनाव को कम करता है। मनोवैज्ञानिक अरूणकुमार सिंह कहते हैं कि इस विधि से दो उद्देश्यों की पूर्ति होती है –"पहला तो यह कि व्यक्ति लक्ष्य पर पहुँचने में असमर्थ रहता है, तो जब इससे उत्पन्न कुंठा की गंभीरता को योक्तिकरण के द्वारा कम कर देता है तथा दूसरा यह कि औचित्य स्थापना के द्वारा व्यक्ति अपने द्वारा किए गए व्यवहार के लिए एक स्वीकार्य अभिप्रेरक प्रदान करता है।"[91] इस विधि के अन्तर्गत व्यक्ति ऐसे तर्क देता है जिनको उपेक्षित नहीं किया जा सकता है। ऐसा करके वह व्यक्ति अपने आप को संतुष्ट कर अपना मानसिक तनाव कम करता है, जैसे कोई कर्मचारी कार्यालय में देर से पहुँचने पर यह कहता है कि ट्रैफिक जाम था।

(एच) दमन – दमन का अर्थ है दबाना। इसमें जब तनाव के कारण व्यक्ति चिन्ताओं, पुरानी स्मृतियों आदि से परेशान हो जाता है, या मानसिक रूप से वे अधिक कष्टकर प्रतीत होती हैं, तो वह उन चिन्ताओं को चेतन से

---

[91] आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, अरूणकुमार सिंह, पृ. 263

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निकालकर अचेतन में डाल देता है। तनाव उत्पन्न करने वाली इच्छाओं आंकाक्षाओं को जो पूरी नहीं हो सकती, उन्हें दबाने का या अचेतन में डालने का प्रयास करता है, ताकि वह किसी दूसरे कार्य में ध्यान दे सके।" अरूणकुमार सिंह कहते है कि –"दमन में व्यक्ति अपनी इच्छाओं एवं यादों से ही अवगत नहीं हो पाता है, वे गहरी विस्मृति में चली जाती है। किन्तु दमन में व्यक्ति को यह पता नहीं होता है कि वह कौन–कौन सी इच्छाओं एवं यादों को चेतन से अलग कर चुका है।"[92] दमन चेतना के स्तर से अचेतन में भेजने का प्रयास है, जबकि दमन चेतना के स्तर से निकाल देने का प्रयत्न है। यद्यपि विस्मरण दोनों में ही होता है, किन्तु एक में ये इच्छाएँ अचेतन में बनी रहती है जबकि दूसरे में निर्मूल हो जाती है।

(आई) प्रक्षेपण :– तनाव को कम करने के लिए व्यक्ति अपनी गलतियों का, अपनी असफलताओं का जिम्मेदार किसी दूसरे व्यक्ति को या परिस्थितियों को बताता है। किसी दूसरे पर आरोप लगाने से उसे सन्तुष्टि एवं शांति मिलती है। व्यक्ति स्वयं की गलतियों को स्वीकार न करके अपने आप को दोष मुक्त समझता है। जिससे उसे आत्म–संतोष उत्पन्न होता है और तनाव कम होता है, जैसे – छात्र परीक्षा में असफलता प्राप्त करने पर अपने तनाव को यह कहकर कम करता है कि शिक्षक ने ठीक ढंग से पढ़ाया नहीं या घरेलू प्रतिकूलताओं के होने के कारण परीक्षा की अवधि में वह अधिक चिन्तित था।

(जे) क्षतिपूर्ति :– बाह्य हानि से व्यक्ति को मानसिक क्षति भी होती है। जब तक उस हानि या नुकसान की क्षतिपूर्ति नहीं होती है तब तक वह मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होता है। तनाव को कम या समाप्त करने के लिए व्यक्ति को अन्य साधनों से उसकी क्षतिपूर्ति करने का प्रयास करना चाहिए। तनाव का कारण चाहे जो भी हो, वह व्यक्ति शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य को

[92] आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान – अरूणकुमार सिंह, पृ. 263

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

खराब कर देता है, इसलिए इसें समाप्त करने के या कम करने के उपाय पर मनोवैज्ञानिकों ने गंभीरता से विचार किया है। लेजारस एवं फौल्कमैन (Lazarus folkman,1984) के अनुसार वे कुछ उपाय निम्न है[93] –

i. **पूर्वकथन** :– इस उपाय के तहत व्यक्ति पहले से ही अपना मानस ऐसा बना लेता है कि लक्ष्य पूर्ति करते समय बाधाएँ आ सकती है या तनाव उत्पन्न हो सकता है। व्यक्ति यह पूर्वकथन करता है कि परिस्थितियाँ विकट है, वह सामना कैसे करेगा ? ऐसा करने से जब तनावपूर्ण स्थिति आने पर व्यक्ति सही ढंग से उसका सामना कर सकता है, उसे यह मौका मिल जाता है कि वह गंभीरता से उस स्थिति पर विचार कर सके। जैसे फौजी युद्ध में जाने से पहले हमले किस–किस तरह से हो सकते है और कौन सी स्थिति में कैसे आक्रमण करना है इस पर विचार कर स्वयं को उस परिस्थिति के अनुरूप बना लेता है और समय आने पर वह तनाव को बढने नहीं देता है।

ii. **व्यवहारात्मक उपायः**– इस उपाय में व्यक्ति अपने व्यवहार को बदल लेता है, वह ऐसे कार्य करने लगता है जिससे उसे तनाव की अनुभूति कम हो। जैसे अन्य बातों में ध्यान लगाना तथा शराब, सिगरेट आदि अधिक मात्रा में पीना या फिर किन्हीं सामाजिक या भावनात्मक व्यक्तियों के सम्पर्क में रहना, जो उसका समर्थन कर सकें।

iii. **प्रतिक्रिया निर्माण** :– इसमें व्यक्ति तनाव उत्पन्न करने वाली इच्छा या विचार के ठीक विपरीत इच्छा या विचार विकसित करके तनाव को कम करता है। भ्रष्टाचार से चिन्तित एवं तनावग्रस्त नेता प्रायः

[93] Internal and external determination of behaviour, Lazarus and Lanuier, Page 311

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भ्रष्टाचार के खिलाफ में भाषण देकर अपना मानसिक बोझ एवं उलझन कम कर लेता है।[94]

iv. **विस्थापन** :– तनाव को कम करने के लिए व्यक्ति अपने कार्य को रूपान्तरित कर देता है। विस्थापन में व्यक्ति अपना तनाव उस व्यक्ति या वस्तु पर प्रतिक्रिया करके निकालता है, जिससे कोई खतरा या डर न हो। जैसे व्यापार में हुई हानि से उत्पन्न तनाव को व्यक्ति अपने परिवार पर क्रोध आदि करके कम करता है।

v. **अस्वीकार** :– जब बाहरी वास्तविकता अधिक दुःख देने वाली हो या तनाव नियंत्रण के बाहर हो तो ऐसी स्थिति में व्यक्ति उस वास्तविकता को मानने से इंकार करके अपने तनाव को कम करता है। जैसे वह व्यक्ति जिससे वह प्रेम करता है, इस दुनिया में ही नहीं है।

vi. **बौद्धिकीकरण** :– जैसे एक डॉक्टर जिसे लगातार रोगियों की जिन्दगी और मौत से जूझना पड़ता है, ऐसी परिस्थिति में उन्हें तनाव उत्पन्न होता है परन्तु वह सांवेगिक न होकर निर्लिप्तता से उनका (रोगियों) का इलाज करता है। कहने का तात्पर्य यही है कि व्यक्ति उस तनावपूर्ण परिस्थिति के बारे में सांवेगिक ढंग से न सोचकर उसके प्रति एक निर्लिप्तता विकसित कर लेता है, जिससे उसका तनाव कम हो जाए।

तनाव को कम करने के लिए उपर्युक्त मनोवैज्ञानिक उपाय मात्र सुझावात्मक है। तनाव को नियंत्रण में कैसे करना वह तनाव के स्वरूप पर निर्भर होता है। रोबर्ट एस. फेल्डमेन ने तनाव को नियंत्रित करने के निम्न उपाय पर भी प्रकाश डाला है, वे लिखते है कि[95] –

---

[94] आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, अरूणकुमार सिंह, पृ. 263

[95] Understanding Psychology – Robers, Feldmen, P. 453

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. When a stressful situation might be controllable, the best coping strategy is to treat the situation as a challenge. Focusing on way to control it. अर्थात् जब तनाव की स्थिति को नियंत्रित करना हो तो सबसे उचित तरीका है कि उस स्थिति को चुनौती के रूप में स्वीकार कर स्थिति को नियंत्रण करें।

2. Make a threating situation less threatening-: When a stressful situation seems to be uncontrollable a different approach must be taken. It is possible to change your appraisal of the situation, to view it in a different light, and to modify your attitudes towards it.

   अर्थात् जब तनाव की स्थिति अनियंत्रित हो तो कोई दूसरा तरीका अपना लेना चाहिए जिसमें खतरा कम हो।

जैन दृष्टिकोण :– तनाव को कम या समाप्त करने के लिये मनोवैज्ञानिकों ने जो विधियाँ प्रस्तुत की हैं, उनमें से कुछ विधियाँ जैन चिन्तकों ने भी स्वीकृत की हैं।

इन विधियों में सर्वप्रथम बाधा निवारण को स्थान दिया गया। जैनदर्शन का मानना है कि बाधाएँ उसी लक्ष्य की प्राप्ति में आती है, जो "पर" आश्रित और बाह्य होता है, अतः उनका मानना है कि हमें बाधा निवारण के स्थान पर लक्ष्य को ही 'पर' आश्रित से 'स्व' आश्रित बनानां चाहिए। यदि लक्ष्य आध्यात्मिक या स्व–आश्रित होगा, तो उसमें बाह्य बाधाएं नहीं होगी, केवल आत्मिक शक्ति या मनोबल के विकास से उसकी बाधाएं दूर की जा सकती है। इस प्रकार जैन दर्शन बाधा निवारण के स्थान पर लक्ष्य प्रतिस्थापन को अधिक महत्व देता है। जहाँ तक व्याख्या एवं निर्णय विधि का प्रश्न है, जैनदर्शन का मानना है कि सम्यक् दर्शन और सम्यक् ज्ञान के आधार पर हमें अपने लक्ष्य के औचित्य या अनौचित्य का निर्धारण तथा उसकी सम्यक्ता पर पूर्ण विचार करके ही अपने लक्ष्य का निर्धारण करना चाहिए। जैनदर्शन का मानना है कि सम्यक्–दृष्टि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति ही अपने सम्यक्–ज्ञान के आधार पर सम्यक् आध्यात्मिक–लक्ष्य का निर्धारण कर तनावों से मुक्त रह सकता है, क्योंकि व्यक्ति की सबसे बडी भ्रान्ति इसी में होती है कि वह सम्यक् लक्ष्य का निर्धारण नहीं कर पाता हैं।

अतः जैनदर्शन की प्राथमिक मान्यता यह है कि जीवन के लक्ष्य निर्धारण के पूर्व सम्यक्–दृष्टिकोण और सम्यक्–ज्ञान का विकास आवश्यक हैं। तनावों के उत्पन्न होने का मुख्य कारण जीवन लक्ष्य के गलत निर्धारण होता है। हम इच्छाओं या वासनाओं से प्रभावित होकर गलत लक्ष्य का निर्धारण कर लेते है।

जहाँ तक तनाव निराकरण की अप्रत्यक्ष मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रश्न है। वे भी मूलतः सम्यक्–दृष्टिकोण और सम्यक्–ज्ञान पर ही आधारित है। इनमें जैनदर्शन लक्ष्य–शोधन को ही मुख्यता देता है, उसके साथ ही वह जीवन में यदि भौतिक लक्ष्य का निर्धारण किया हो और उसमें असफलता के कारण तनाव उत्पन्न हो रहा हो तो वह उस लक्ष्य के पृथक्करण या उस लक्ष्य के परित्याग को उचित मानता है। साथ ही वह यह भी मानता है कि वह जीवन की असफलताओं को पूर्व नियत या पूर्व कर्मों का उदय मानकर आत्मसंतोष को प्राप्त करता है, क्योंकि जैन धर्म सिद्धांत यह मानता है बाह्य सफलताएं और असफलताएँ पूर्णतः व्यक्ति के वर्तमान प्रयत्नों पर निर्भर नहीं है, उसमें उसके पूर्वबद्ध कर्म के विपाक भी महत्वपूर्ण कार्य करते है। जैनदर्शन विस्थापन, प्रत्यावर्तन, दमन आदि अपरोक्ष मनोवैज्ञानिक विधियों को समुचित नहीं मानता है। वह दमन के स्थान पर निराकरण को ही अधिक उचित मानता है, क्योंकि उसके अनुसार तनावों से मुक्ति का सम्यक्–उपाय वासनाओं का निराकरण ही है।

आत्म–परिशोधन– विभावदशा का परित्याग

जैनदर्शन भारतीय–श्रमण परम्परा का एक अंग है और भारतीय श्रमण धारा मूलतः आध्यात्मिक जीवनदृष्टि की प्रतिपादक है। जब हम अध्यात्म या आध्यात्मिक जीवनदृष्टि की बात करते है, तो उसका अर्थ होता है, भौतिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तथ्यों की अपेक्षा आत्मा को महत्व देने वाली जीवनदृष्टि। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि आध्यत्मिक जीवन दृष्टि भौतिक जीवन दृष्टि से भिन्न हो कर आध्यात्मिक मूल्यों या आत्म तत्त्व को प्रधानता देती है।

उत्तराध्ययनसूत्र में जीवात्मा के दो भेद किए है–1. संसारी और 2. सिद्ध। यहाँ आत्मा की कर्मों से रहित विशुद्ध दशा को ही सिद्धावस्था या मुक्तावस्था कहा गया है। इसे स्वभावदशा भी कहा जा सकता है क्योंकि इसमें आत्मा अपने निज शुद्ध स्वरूप में स्थित रहती है। इसके विपरीत संसारी आत्मा को कर्मों से युक्त होने के कारण विभाव–दशा में माना गया है। यद्यपि संसारस्थ जीवन्मुक्त या क्षीण कषाय सयोगी केवली एवं अयोगी केवली भी विभाव मुक्त माने जाते है। आत्मा का कर्मों के उदय से प्रभावित होकर मोह दशा में रहना ही विभाव दशा है। साधना के सारे प्रयत्न विभावदशा से स्वभावदशा में आने के लिए होते हैं। विभाव विकृत्ति है और स्वभाव प्रकृति है। विकृत्ति को समाप्त करके ही स्वभाव में आया जा सकताा है। जैनदर्शन यह मानता है कि जब तक आत्मा विभाव दशा में है अर्थात् दसवें गुणस्थान में भी सूक्ष्म लोभ से ग्रसित है वह तनावयुक्त है। अतः जैन दर्शन में तनावों से मुक्त होने की प्रक्रिया को ही मुक्ति का साधन कहा गया है। आत्मा जब तक कर्म संस्कार जन्य विभाव दशा में है तब तक वह अशुद्ध है। वस्तुतः जैन साधना आत्मा के परिशोधन की ही एक प्रक्रिया है। संसार दशा में आत्मा कर्मों से युक्त होने के कारण अशुद्ध रूप में होती है। आत्मा के इस अशुद्ध रूप को दूर करना ही जैन अध्यात्म मार्ग का मुख्य लक्षण है। चेतना में कर्मों के संस्कारों की सत्ता न रहें, वह उनसें प्रभावित न हो, उसमें राग–द्वेष, मोह एवं कषाय रूपी तरंगे न उठे, चित्त में विकल्पता एवं तनाव न हो यही आत्म विशुद्धि की स्थिति है। स्वभाव एक ऐसा तत्व है, जो विभाव के हटते ही स्वतः प्रकट हो जाता है। जैसे आग का संयोग हटते ही पानी स्वतः शीतल होने लग जाता है। पानी का शीतल होना स्वभाविक है, किन्तु उसके गरम होने में आग का संयोग अपेक्षित होता हे। अर्थात् वह **'पर'** अर्थात अग्नि के संयोग से ही विभावदशा को प्राप्त करता है। इसको हम इस तरह भी कह सकते है कि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाह्य पदार्थों के संयोग से ही विभावदशा की प्राप्ति या स्वभाव से च्युत होने की स्थिति बनती है। चेतना की यह विभावदशा में अवस्थिति ही तनावयुक्त दशा कही जाती है। डॉ. सागरमलजी लिखते हैं कि –"मानसिक–विक्षोभ या तनाव को हमारा स्वभाव इसलिए नहीं माना जा सकता है, क्योंकि हम उसे मिटाना चाहते है, उसका निराकरण करना चाहते है और जिसे आप छोड़ना या मिटाना चाहते हैं, वह आपका स्वभाव नहीं हो सकता।"[96] राग–द्वेष, कषाय, अंहकार आदि तनाव उत्पन्न करते है। ये सभी **'पर'** के निमित्त से होते हैं। इनका विषय **'पर'** है और इसलिए ये तनावों का कारण है अर्थात् विभावदशा का कारण है और इस विभावदशा से स्वभावदशा में लोटना ही तनावमुक्ति की प्रक्रिया है। आत्मा स्वभावतः तो शुद्ध, बुद्ध और तनावमुक्त है किन्तु **'पर'** के संयोग से वह अशुद्ध या तनावयुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाती हैं। आत्मा के इस शुद्ध स्वभाव पर कर्मरूपी आवरण इतने घनिष्ठ होते है कि आत्मा का लक्ष्यशोधन करना और तनावमुक्त अवस्था में आना कठिन हो जाता है।

राग–द्वेष, कषाय और मोह रूपी कर्म संस्कारों के कारण जब कर्म वर्गणाओं के पुद्गल आत्मा से चिपकते हैं, तो आत्मा विभाव दशा को प्राप्त करती है। इस प्रकार विभावदशा का मूल कारण मन की चंचलता है। मन चंचल होता है किन्तु उसकी यह चंचलता सदैव बाह्य तत्वों के निमित्त से होती है। व्यक्ति बाह्य तत्वों का संयोग मिलने पर उनके प्रति राग–द्वेष करता है, जो चित्त में तनाव उत्पन्न करने का मुख्य कारण है। "गीता में कहा गया है[97] –"मन के द्वारा विषयों का संयोग होने पर इनका चिन्तन होता है और विषयों का चिंतन करने वाले उस पुरूष ही उन विषयों में आसक्ति हो जाती है और आसक्ति से उन विषयों को भोगने की कामना उत्पन्न होती है और कामना में विघ्न पड़ने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अविवेक अर्थात् मूढ़भाव उत्पन्न होता है और अविवेक से स्मरण शक्ति भ्रमित हो जाती है और स्मृति के भ्रमित हो जाने से

---

[96] धर्म का मर्म –पृ. 16
[97] गीता – 2/62, 63

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेक बुद्धि नष्ट हो जाती है और विवेक बुद्धि के नष्ट हो जाने से यह पुरूष अपने लक्ष्य या साधना से च्युत हो जाता है, अर्थात् तनावयुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है। तनावयुक्त स्थिति में व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खो देता है। विवेक शक्ति के नाश होने से वह अपने स्वरूप अर्थात् आत्मा के निज स्वभाव को प्राप्त नहीं कर पाता है। आत्मा के स्वभाव में आने के लिए अर्थात् तनावमुक्त दशा को पाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति मन को वश में करे, उसे अमन बना दे अर्थात् इच्छा और आकांक्षा रूपी विकल्पों से मुक्त हो जाये। आत्मा जब स्वभावदशा में होती है अर्थात् ज्ञाता–द्रष्टाभाव में स्थित होती है तब मन विकल्प मुक्त होता है अर्थात् मन अमन हो जाता है। यही मन का अमन होना ही तनावमुक्त होना है।

जैन दर्शन के अनुसार सिद्ध आत्मा अमन होती है। वस्तुतः केवली भी समनस्क होते है, किन्तु उनका मन अमन हो जाता है। उसमें कोई विकल्प उठते नहीं, वे राग–द्वेष और मोह से रहित होते है। उनमें इच्छा और आकांक्षा भी नहीं होती है। अतः उनका मन निर्विकल्प या अमन हो जाता है।

उनकी आत्मा भी शुद्ध होती है, वे अपने ज्ञाता–द्रष्टाभाव रूप स्वभाव में ही निमग्न रहते है। कैसा भी बाह्य संयोग मिले वे विभावदशा को अर्थात् विकल्पता को प्राप्त नहीं होते हैं, अर्थात् विभावदशा में नहीं जाते है। उनका विशेषतः विकल्पों में नहीं जाना ही तनावमुक्त रहना है।

आत्म परिशोधन की इस प्रक्रिया मे सफल होने के लिए विभावदशा के परित्याग के हेतु प्रयत्न करने होंगे। विभावदशा के परित्याग के लिए हमें विकल्पों से बाहर निकलना होगा, तभी व्यक्ति तनावमुक्त दशा को प्राप्त कर सकता है। आचार्य श्रीमद्विजय केशरसूरिजी महाराज ने अपनी कृति 'आत्मशुद्धि' में कहा है –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

"विकल्प जाल जम्बालान्निर्गतोऽयं सदा सुखी
आत्मा तत्र स्थितो दुःखीत्यनुभूय प्रतीयताम् ।।1।।[98]

अर्थात् विकल्पों के समूह रूपी दलदल में से बाहर निकला हुआ, यह आत्मा सदा सुखी है, और उन विकल्पों के जाल में रही हुई आत्मा सदा दुःखी है, इस बात का अनुभव या प्रतीति करो।"

विकल्प करना मन का कार्य है, क्योकि मन विकल्पों के आधार पर ही खडा हुआ है। आत्मा अपने ज्ञाता–द्रष्टाभाव से उसे मात्र देखे और जाने, किसी भी प्रकार की इच्छा या विकल्प न करे और स्व–स्वभाव या ज्ञातादृष्टा भाव में ही रहे तो वह तनावमुक्त अवस्था में ही रहेगा। मन की चंचलता, मन की विकल्पता, इच्छाओं और आकांक्षाओं को बढ़ाती है।

ये वस्तुओं पर राग–द्वेष के भाव जाग्रत करती है। ये राग–द्वेष के भाव भोगाकांक्षा या वासना को प्रदीप्त करती है और जब कोई वासना पूर्ण नहीं होती तब क्रोध आदि कषाय व्यक्ति के मन में अपना घर बना लेते हैं, व्यक्ति अवसाद और क्षोभ में डूब कर तनावग्रस्त हो जाता है। कषाय रूपी रोग शरीर और मन को और अधिक अपने जाल में फंसा लेता है और आत्मा अपना ज्ञाता–द्रष्टा भाव भूलकर कर्ता–भोक्ता में रमण करने लग जाता है, अर्थात् अपना स्वभाव भूल कर विभावदशा में चली जाती है। किन्तु अगर आत्मा अपने स्व–स्वरूप में लौट आए अर्थात् उसे यह भान हो जाए कि **मैं शुद्ध** आत्मा हूँ एवं उसका ज्ञातादृष्टा भाव जाग्रत हो जाए, उसे अपनी अनंत शक्ति का भान हो जाए और स्वयं की राग–द्वेष, कषाय आदि रूप विभावदशा से स्वयं को मोड़ ले, तो आत्मा के स्व स्वरूप को पाना सुलभ हो जाएगा। आत्मा के स्वरूप को पाने की यह प्रक्रिया ही तनावमुक्ति की प्रक्रिया है।

राग–द्वेष या मोह–ममता और इन्द्रियजन्य आकांक्षावश व्यक्ति अपना सुख इच्छाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति में एवं **'पर'** पदार्थों में, भोग में, खोजता है और

---

[98] श्री आत्मशुद्धि, केशरसूरिजी म.सा., 4/1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वयं को तनावमुक्त बनाने के लिए कषायों को अपनाता है, जो उसे और अधिक तनावयुक्त बना देती हैं। आचारांग में भी कहा गया है कि जन्म–मरण और मुक्ति के लिए या दुःखों से छुटकारा पाने के लिए जीव पाप क्रियाओं में प्रवृत होते है।''[99]

तनावमुक्ति के लिए तनावों के कारणों को अपनाते हैं। किन्तु तनावमुक्त व्यक्ति न सुखी होता है न दुःखी। वह तो समभाव में रह कर आनंद व शांति का अनुभव करता है, क्योंकि वह विभावदशा का परित्याग कर देता है। स्व स्वभाव में रही आत्मा राग–द्वेष से रहित, अपने वश में की हुई इन्द्रियों और मन के द्वारा कार्य करता है, या भोगता है तो भी वह स्वयं को तनावमुक्त ही अनुभव करता है। ऐसी स्थिति में उसकी आत्मा निर्मल होती है और उसमें सम्पूर्ण दुःखों का अभाव होता है। आनंद का अनुभव होता है अर्थात् वह पूर्णतः तनावमुक्त और शांत होता हैं। अंत में हम यही कहेगे कि आत्मा–परिशोधन के लिए विभावदशा या तनावयुक्त दशा का परित्याग करने के लिए सुख–दुख की खोज पदार्थों में न कर अपनी आत्मा में करना ही अर्थात् स्व स्वभाव में आना ही जैनदर्शन में तनावमुक्ति का उपाय है।

सुख–दुःख, रोग, क्षुधा आदि के उपद्रवों में भी मन को विकल्पों से ऊपर उठाना, अपनी आत्मा का चिंतन करना तनावमुक्ति का उपाय है। उत्तराध्ययनसूत्र में जब केशी ने गौतम से पूछा कि शत्रुओं को आपने कैसे जीता ? तब गौतम ने कहा –

''एगे जिया जिया पंच, पच जिए जिया दस
दसहा उ जिवित्ताणं, सव्वसत्तु जिणामहं।''[100]

अर्थात् मैंने सर्वप्रथम एक मन को जीता और इससे चार कषायों पर विजय पा ली। इन पांच को जीतने से पांच इन्द्रियां भी विजित हो गई। इस प्रक्रिया से सारे शत्रुओं पर विजय पा ली, अर्थात् अपने आप पर विजय पा ली।''

---

[99] आचारांगसूत्र – आत्मारामजी म.सा. –1/1/11
[100] उत्तराध्ययसूत्र – 23/26

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहने का तात्पर्य यही है कि जिसने मन को जीत लिया, मन वश में कर लिया अर्थात् मन को अमन बना लिया वह अपने स्व स्वभाव को स्वतः ही प्राप्त कर लेता है, क्योंकि मन के अमन होते ही आत्म स्वभाव में स्थित होने के कारण कषाय, राग–द्वेष और कामनाओं रूपी बाह्य शत्रुओं को जीतने के कारण तनाव समाप्त हो जाते है। इनके समाप्त होते ही शांति की तरंग उठती है, जो आत्मा को तनावमुक्त अवस्था में ले जाती है अर्थात् स्वभावदशा में लाती है। व्यक्ति को सुख–दुःख में किसी प्रकार का आत्मभान नहीं रहता है। वस्तुतः पूर्णतः तनावमुक्ति के लिए सुख–दुःख दोनों से ऊपर उठ कर आत्म शान्ति को प्राप्त करना आवश्यक है।

ध्यान और योगसाधना से तनावमुक्ति –

जैन धर्म में मुक्ति का एक साधन ध्यान और योग साधना है। जैन परम्परा में ध्यान पद्धति प्राचीनकाल से ही प्रचलित है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि जितने भी जैन आगम हैं, उन सभी में ध्यान के स्वरूप का विवेचन मिलता है। दूसरे खुदाई के दौरान जैन तीर्थंकरों की जो प्राचीन प्रतिमायें मिली हैं, वे सभी ध्यानमुद्रा में ही प्राप्त होती हैं।[101] ऋषिभाषित में तो स्पष्ट रूप से कहा गया है कि – शरीर में जो स्थान मस्तिष्क का है, साधना में वही स्थान ध्यान का है।[102] उत्तराध्ययनसूत्र में श्रमण जीवन की दिनचर्या का विवरण प्रस्तुत करते हुए कहा गया है कि प्रत्येक श्रमण साधक को दिन और रात्रि के दूसरे प्रहर में नियमित रूप से ध्यान करना चाहिए।[103] ध्यान को मोक्ष प्राप्ति अर्थात् समग्र दुःखों से मुक्ति का साधन माना गया है, जब ध्यान समस्त दुःखों से मुक्ति दिला सकता है, तो वह व्यक्ति के तनावमुक्त जीवन जीने का साधन क्यों नहीं

---

[101] Mohanjodaro and Indus civilization, John Marshall, Vol. I, Page-52

[102] इसिभासियाइं – 11/14

[103] उत्तराध्ययनसूत्र – 26/18

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो सकता है ? किन्तु यहाँ यह जानना आवश्यक है कि तनावमुक्त होने के साधनभूत ध्यान का आलम्बन क्या होगा ? क्योंकि ध्यान के आलम्बन तो अनेक हैं, किन्तु उनमें से कई साधन तनावग्रस्त करने वाले या तनावजन्य स्थिति को और अधिक बढ़ाने वाले होते हैं। ध्यान साधना की पद्धतियों को जानने से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि ध्यान–साधना का व्यक्ति के जीवन में क्या महत्त्व है और उसे ध्यान क्यों करना चाहिए ? एक शब्द में उत्तर दें तो तनावमुक्ति या दुःखमुक्ति के लिए व्यक्ति को ध्यान करना चाहिए। व्यक्ति का मन स्वभावतः चंचल माना गया है और मन की यह चंचलता या विकल्पात्मकता ही व्यक्ति को तनावग्रस्त कर देती है। उत्तराध्ययनसूत्र में मन को दुष्ट अश्व की संज्ञा दी गई है, जो कुमार्ग में भागता है।[104] गीता में मन की चंचलता बताते हुए कहा गया है कि मन को निग्रहित करना, वायु को रोकने के समान अति कठिन है।[105] मन में विकल्प उठते रहते हैं। चंचल मन हर क्षण कुछ न कुछ पाने की चाह में आकुल या अशांत बना रहता है और यह अशांति ही तनाव की उपस्थिति की सूचक है। चित्त की आकुलता या असमाधि ही दुःख को जन्म देती है और यह दुःख की अनुभूति ही तनाव का ही एक रूप है। इसी दुःख–विमुक्ति के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए ध्यान पद्धति को अपनाना चाहिए। व्यक्ति अपने तनाव को दूर करने के लिए सदैव प्रयत्न करता रहता है, इस हेतु वह भौतिक संसाधनों पर निर्भर रहता है, किन्तु इन संसाधनों की उपलब्धि न होना या उपलब्धि होने पर भी अतृप्त बना रहना व्यक्ति को और अधिक तनावग्रस्त बना देता है। इसलिए आवश्यकता है –ध्यान प्रक्रिया की। ध्यान–प्रक्रिया चित्तवृत्ति की अचंचलता के बिना संभव नहीं है। वस्तुतः जैनाचार्यों ने ध्यान को 'चित्तनिरोध' कहा है।[106] चित्त का निरोध हो जाना ही तनावमुक्ति की अवस्था है, क्योंकि चित्तवृत्ति के निरोध से मन की चंचलता, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ आदि समाप्त हो जाती है। योगदर्शन में

---

[104] उत्तराध्ययनसूत्र – 23/55–56

[105] भगवद्गीता – 6/34

[106] तत्त्वार्थसूत्र – 9/27

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योग को परिभाषित करते हुए लिखा है कि –चित्तवृत्ति का निरोध ही 'योग' है।[107] जैन–परम्परा में सामान्यतया मन, वाणी और शरीर की गतिशीलता को ही योग कहा जाता है।[108] इसका अर्थ तो यह हुआ कि योग–निरोध ध्यान का लक्ष्य है। जैन–परम्परा में मानसिक, वाचिक और शारीरिक क्रियाओं को योग कहा गया है और इनमें भी मन की प्रधानता होती है। जब मनयोग का निरोध हो जाता है, अर्थात् मन की चंचलता समाप्त हो जाती है तो वचनयोग व काययोग स्वतः ही नियंत्रित हो जाते हैं। निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि 'योग' शब्द का अर्थ जैन–परम्परा और योगदर्शन में भले ही अलग–अलग हों, किन्तु दोनों का लक्ष्य चित्तवृत्ति का निरोध ही है। तनावमुक्ति के लिए मन की चंचलता को समाप्त करना आवश्यक ही है। योगदर्शन यह मानता है कि चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है।[109] योग शब्द का एक अर्थ जोड़ना भी है।[110] इस दृष्टि से डॉ. सागरमलजी के अनुसार आत्मा को परमात्मा से जोड़ने की कला को योग कहा गया है।[111] इसी अर्थ में योग को तनावमुक्ति या मोक्ष अवस्था को प्राप्त करने का साधन मान सकते हैं।

वस्तुतः ध्यान–साधना और योग–साधना दोनों ही तनाव की जन्मस्थली मन की वृत्तियों को समाप्त कर तनावमुक्त होने के लिए एक साधन बन जाती है। योग एवं जैनदर्शन दोनों ही साधना की प्रक्रिया तो मन की चंचलता को समाप्त करना ही मानते हैं। जिस प्रकार हवा को रोकना कठिन है, सागर की लहरों को रोकना कठिन है, उसी प्रकार मन में उठती विकल्प रूपी लहरों को रोकना भी कठिन है, फिर भी आत्म जागृति की अवस्था में यह सम्भव है। ध्यान

---

[107] गीता – 6/34

[108] कायवाङ्मनः कर्म योगः। – तत्त्वार्थसूत्र –6/1

[109] योगश्चित्त वृत्ति निरोधः। योगसूत्र–1/2, पतजंलि

[110] 'युजपी योगे' –हेमचन्द्र धातुमाला, गण–7

[111] जैन साधना पद्धति में ध्यान, –डॉ. सागरमल जैन, पृ.13

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं योग साधना द्वारा चित्त–निरोध के लिए या तनावमुक्ति के लिए जैन साधना पद्धति में एक सरल प्रक्रिया दी गई है, जो निम्न है –

ध्यान में सर्वप्रथम मन को वासना रूपी विकल्पों से मोड़कर धर्म–चिन्तन में लगाया जाता है, फिर क्रमशः आत्म सजगता के द्वारा इस चिन्तन की प्रक्रिया को शिथिल किया जाता है। अन्त में एक ऐसी स्थिति आ जाती है, जब मन पूर्णतः निष्क्रिय हो जाता है, उसकी भागदौड़ समाप्त हो जाती है। इस स्थिति में उसकी तनावों को जन्म देने की क्षमता समाप्त हो जाती है और व्यक्ति शांति एवं आनंद की अनुभूति करता है। यह अनुभूति ही पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है।

आर्त्त और रौद्र ध्यान तनाव के हेतु तथा धर्म और शुक्ल ध्यान से तनावमुक्ति –

इसके पूर्व ध्यान और योग साधना में हमनें ध्यान के महत्त्व एवं ध्यान की प्रक्रिया का विवेचन किया है। ध्यान के आलम्बन तो अनेक हो सकते हैं, किन्तु ध्यान किसका किया जाए ? ध्यान का कौन सा आलम्बन तनाव को अधिक बढ़ा देगा और कौनसा तनावमुक्ति का सम्यक् साधन बनेगा ? इस प्रश्न का उत्तर हमें ध्यान के प्रकारों को समझने से मिल सकता है। जैनधर्म के अनुसार ध्यान के चार प्रकार बताए गए हैं[112] – **'चत्तारि झाणा पण्णत्ता, तं जहा – अट्टेझाणे, रोद्देझाणे, धम्मेझाणे, सुक्केझाणे'** –अर्थात् आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यान।

सामान्यतया आर्त्तध्यान व रौद्रध्यान को तनाव का हेतु और धर्मध्यान, शुक्लध्यान को तनावमुक्ति का साधन माना गया है। वस्तुतः जो ध्यान मन में

---

112 (1) तत्त्वार्थसूत्र–9/29ए (2) स्थानांगसूत्र, चतुर्थ स्थान, 1/60 (3) औपपातिकसूत्र–30 (4) पडिक्कमामि चउहिं झाणेहिं –अट्ठेणंझाणेण, रूदेणझाणेणं, धम्मेणंझाणेणं, सुक्केणं झाणेण – आवश्यक श्रमणसूत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विकल्पों को जन्म देता है या जिस ध्यान से चैत्तसिक स्तर पर व्यक्ति और अधिक विचलित हो जाता है, वे आर्त्त व रौद्रध्यान हैं। इसके विपरीत जिन ध्यानों से मन की चंचलताएँ, वासनाएँ, दुःख आदि शांत होते हैं, वे धर्म एवं शुक्ल ध्यान हैं। ध्यानशतक में कहा गया है –

अट्टं रूद्दं धम्मं सुक्कं झाणाइ तत्थ अंताइं
निव्वाणसाहणाइं भवकारणमट्ट–रूद्दाइं।।5।।[113]

अर्थात् आर्त्त और रौद्रध्यान संसार के कारण हैं और धर्मध्यान और शुक्लध्यान निर्वाण के हेतु हैं। आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान राग–द्वेष जनित होने से तनावग्रस्तता के कारण हैं, इसलिए इन्हें अप्रशस्त या अशुभ ध्यान कहा गया है। जबकि धर्मध्यान व शुक्लध्यान कषाय भाव से रहित होने से तनावमुक्ति के हेतु हैं, इसलिए इन्हें प्रशस्त या शुभ ध्यान कहते हैं।

यहाँ हमें सर्वप्रथम आर्त्त और रौद्र का अंतर समझ लेना होगा। चाह, चिंता, इच्छा–आकांक्षा, अपेक्षा आदि से युक्त चित्तवृत्ति आर्त्तध्यान है। दूसरे शब्दों में कहें तो इष्ट का वियोग होने पर, अनिष्ट का संयोग होने पर, इच्छित की प्राप्ति न होने पर तथा अनइच्छित की प्राप्ति होने पर चित्त में जो आकुलता–व्याकुलता उत्पन्न होती है, वही आर्त्तध्यान है। यही आकुलता–व्याकुलता तनाव उत्पन्न करती है। इष्ट के संयोग में राग और अनिष्ट के संयोग में द्वेष की वृत्ति होती है, जब तक वह वृत्ति प्रतिक्रिया का रूप नहीं लेती तब तक चित्त–विक्षोभ नहीं होता है, किन्तु जब द्वेष की वृत्ति प्रतिक्रिया का रूप ले लेती है, तब वह आर्त्तध्यान को रौद्रध्यान में परिवर्तित कर देती है। आर्त्तध्यान की उत्पत्ति राग से होती है और रौद्रध्यान की उत्पत्ति द्वेष से होती है। द्वेषजन्य प्रतिक्रियाएँ जब दूसरे के अहित के विचार से जुड़ जाती है, तो वे रौद्रध्यान का रूप ले लेती हैं।

---

113 ध्यानशतक, श्लोक–5, जिनभद्रगणिकृत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्त्तध्यान हताशा की स्थिति है, रौद्रध्यान आवेगात्मक स्थिति है। प्रथम में मन निराशा में डूब जाता है, चिन्तित व दुःखी होता है। निराशा, चिंता, दुःखी होना ये सब तनाव के ही प्रकार कहे जा सकते हैं, क्योंकि इन्हीं से मन अशांत होता है। स्थानांग में भी दुःख के निमित्त को या दुःख रूप मनोदशा या परिणति को आर्त्तध्यान कहा गया है।[114] ज्ञानार्णव में शुभचन्द्र लिखते हैं कि –'ऋते भवम् आर्त्तम्' इस निरूक्ति के अनुसार दुःख में होने वाली संक्लिष्ट परिणति का नाम आर्त्तध्यान है।[115]

इसी प्रकार राग भाव से जो उन्मत्तता होती है, वह केवल अज्ञान के कारण ही होती है, जिसके फलस्वरूप जीव उस अवांछनीय वस्तु की प्राप्ति से और वांछनीय की अप्राप्ति से दुःखी होता है, यही आर्त्तध्यान है।[116] रौद्रध्यान को तनाव की अंतिम सीमा भी कह सकते हैं। क्रूर, कठोर एवं हिंसक व्यक्ति को रूद्र कहा जाता है और उस रूद्र प्राणी के द्वारा जिस भाव से कार्य किया जाता है, उसके भाव को रौद्र कहते हैं। इस प्रकार अतिशय क्रूर भावनाओं तथा प्रवृत्तियों से संश्लिष्ट ध्यान रौद्रध्यान है।[117] जो पुरुष प्राणियों को रुलाता है, वह रूद्र व क्रूर कहलाता है और उस पुरुष के द्वारा जो ध्यान किया जाता है, वह रौद्रध्यान कहलाता है।[118]

रौद्रध्यान में व्यक्ति स्वयं के स्वभाव को छोड़कर **'पर'** में द्वेष प्रवृत्ति करता है। **'पर'** पर राग व द्वेष दोनों ही तनाव के हेतु हैं। आर्त्तध्यान के चार भेद किए गए हैं[119] –

1. अनिष्ट संयोग रूप आर्त्तध्यान

---

[114] स्थानांगसूत्र – 247

[115] ज्ञानार्णव – 25/23

[116] दशवैकालिक

[117] (1) ज्ञानार्णव –26/2 (2) सर्वार्थसिद्धि–9/28/445/10

[118] (1) महापुराण –21/42 (2) भगवती आराधना, मूल–1703/1528 (3) मूलाचार–396

[119] (1) ध्यानशतक –श्लोक 6, 7, 8, 9, (2) स्थानांगसूत्र – 4/60–72

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. आतुर चिंता रूप आर्त्तध्यान
3. इष्ट वियोग रूप आर्त्तध्यान
4. निदान चिंतन रूप आर्त्तध्यान

प्रथम प्रकार के आर्त्तध्यान में अमनोज्ञ शब्द, रूप, रस आदि का संयोग होने पर उनसे वियोग कैसे हो, इसकी चिंता ही अनिष्ट संयोग रूप आर्त्तध्यान है। दूसरे शब्दों में अनिष्ट का संयोग होने पर चित्त में एक प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न होती है। जैसे– कान से अप्रिय शब्द सुनने या अपने प्रति निन्दासूचक शब्द सुनने पर या नासिका में दुर्गंध आने पर अथवा जीभ को कड़वा आदि स्वाद आने पर अथवा त्वचा को कठोर, उष्ण आदि स्पर्श होने पर जब चित्त में यह वृत्ति बनती है कि यह संयोग कैसे शीघ्रता से दूर हो अथवा इनके कारण मन में एक प्रकार का विषाद उत्पन्न होता है, वह विषाद ही तनाव का रूप ले लेता है। तनाव का एक अर्थ यह भी है कि व्यक्ति में जो अनिष्ट संयोगों को दूर करने अथवा यह सोचने की वृत्ति, कि इनका मुझसे वियोग कब होगा, यही अनिष्ट संयोग रूप आर्त्तध्यान है। स्पष्ट है कि अनिष्ट संयोग के स्पर्श से चित्त की शांति समाप्त हो जाती है और एक प्रकार का तनाव उत्पन्न हो जाता है। तनाव के उत्पन्न होने में अनिष्ट का संयोग भी एक कारण है। इसलिए अनिष्ट के संयोग रूप आर्त्तध्यान को हम तनाव के हेतु के रूप में स्वीकार कर सकते हैं। आर्त्तध्यान का दूसरा रूप आतुर चिंता रूप आर्त्तध्यान है। अनुकूल के संयोग और प्रतिकूल के वियोग की चिंता ही आतुर चिंता रूप आर्त्तध्यान कही जाती है। आतुरता चित्त की विकल्पता की सूचक है। चित्त का अनुकूल को पाने के लिए और प्रतिकूल के वियोग के लिए अधिक सक्रिय होना ही आतुरता है। जहाँ आतुरता है, वहाँ चिंता है ही और आतुरता और चिंता दोनों ही तनाव के मुख्य हेतु हैं। जैसे – एक विद्यार्थी को जब तक परीक्षा का परिणाम नहीं आता है, तब तक यह चिंता सताती रहती है कि कब मुझे पास होने की सूचना मिले, कहीं मैं फेल तो नहीं हो जांऊ ? यह चिंता रहती है, तब तक वह तनावग्रस्त ही रहता

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। इस प्रकार आतुर चिंतायुक्त दूसरा प्रकार भी चित्त के तनावयुक्त होने का ही सूचक है।

तनाव का मुख्य कारण राग है और राग में आसक्त व्यक्ति को इष्ट विषय की प्राप्ति होने पर उसका वियोग न हो जाए, ऐसा चिंतन आर्त्तध्यान का तीसरा प्रकार इष्ट–वियोग रूप आर्त्तध्यान है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छित वस्तु को प्राप्त करने पर अथवा उसे जीवन में अनुकूल अनुभव होने पर उसका वियोग न हो जाए, इसकी चिन्ता में तनावग्रस्त बन रहा है। इसी प्रकार अनुकूल के संयोग को चिरकाल तक बनाए रखने की अभिलाषा के कारण उसका चित्त विचलित या तनावग्रस्त रहता है। प्रिय वस्तु के वियोग की सम्भावना का मात्र चिंतन करने से ही उसके मन में विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है। यह विक्षोभ तनाव का ही एक लक्षण है। इस प्रकार इष्ट वियोग की चिन्ता एवं इष्ट संयोग की चाह – दोनों ही आर्त्तध्यान या तनाव को ही जन्म देती है।

आर्त्तध्यान का चौथा रूप निदान चिन्तन है। "पाँचों इन्द्रियों से सम्बन्धित कामभोगों इच्छा करना, भोगेच्छा चिन्तन रूप आर्त्तध्यान है।"[120] इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त और जीवन में निरन्तर बनी रहती हैं। उन्हें पूरा करने की चिंता में पूरा जीवन व्यतीत हो जाता है, फिर भी इच्छाएँ समाप्त नहीं होती हैं। ये इच्छाएँ या आकांक्षाएँ ही व्यक्ति के मन में एक द्वन्द्व उत्पन्न करती हैं। व्यक्ति दिन–रात इच्छाओं के पीछे भागता रहता है। व्यक्ति क्षणभर भी संतोष का अनुभव नहीं कर पाता है। भविष्य में इच्छाओं को पूर्ण करने की लालसा में व्यक्ति मन के माध्यम से प्रयासरत रहता है। इस हेतु अपनी क्षमता से अधिक कार्य करना भी तनाव उत्पन्न करता है, फिर चाहे वह कार्य शारीरिक हो या मानसिक।

इस प्रकार उपरोक्त चारों आर्त्तध्यान तनाव को उत्पन्न करते हैं। कभी व्यक्ति अनिष्ट के संयोग से दुःखी होता है, तो कभी इष्ट के वियोग की चिंता में

---

[120] (1) ध्यानशतक –9

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तनावग्रस्त रहता है। एक ओर रोगादि से प्राप्त वेदना को दूर करने की चिंता रहती है, तो दूसरी ओर पाँचों इन्द्रियों की लालसा का पूर्ण करने की इच्छा रहती है, जो मस्तिष्क को अशांत बनाए रखती हैं। चिंता, दुःख, परेशानी, वेदना अशान्तता तनाव के ही उपनाम हैं। आर्त्तध्यान वह ध्यान है जिसमें आध्यात्मिक शक्तियाँ क्षीण होती हैं और तनाव उत्पन्न करने वाली स्थितियों का विकास होता हैं। कहते हैं कि चित्त की एकाग्रता के लिए जितना ध्यान किया जाता है, वह सफल होता है और एक दिन मन अपनी चंचलता के स्वभाव को छोड़कर शांत या एकाग्रचित्त हो जाता है। इस प्रकार आर्त्तध्यान जितना अधिक होगा तनाव भी उतने ही बढ़ते जाएंगे। आर्त्तध्यान और तनाव का सह–सम्बन्ध बताते हुए यह भी कह सकते हैं कि जो लक्षण आर्त्तध्यान के हैं, वही लक्षण एक तनावग्रस्त व्यक्ति में भी पाए जाते हैं। आर्त्तध्यान के लक्षण रूदन, शोक, विलाप, चिड़चिड़ाहट, चिंता आदि हैं। तनावग्रस्त व्यक्ति में भी ये ही सारे लक्षण पाए जाते हैं। वह भी दुःखी एवं चिन्तित रहता है। व्यक्ति जब इच्छाओं की पूर्ति नहीं कर पाता तो उसका स्वभाव चिड़चिड़ा एवं क्रोधी हो जाता है। इष्ट के वियोग पर रूदन, विलाप आदि करता है। ध्यानशतक में आर्त्तध्यान के ये ही चार लक्षण निरूपित करते हुए कहा गया है कि –आर्त्तध्यानी के आक्रन्दन, शोचन, परिवेदन और ताड़न आदि लक्षण होते हैं।[121] उववाईसूत्र में भी आर्त्तध्यान के चार लक्षण बताए गए हैं – 1.कंदणया, 2. सोयणय, 3. तिप्पणया, और 4. विलवणया।

कंदणया अर्थात् रूदन करना, सोयणया का अर्थ है शोक करना अर्थात् चिंता करना। तिप्पणया का आशय आंसू गिराना या दुःखी होना है और विलयण से तात्पर्य विलाप करना है।

जिस व्यक्ति में उपरोक्त चारों लक्षण पाए जाते हैं, वह आर्त्तध्यानी होता है और जो व्यक्ति आर्त्तध्यानी होता है वह नियमतः तनावग्रस्त होता है। आर्त्तध्यानी हीन भावना से ग्रस्त रहता है। वह स्वयं अपने जीवन को तनावग्रस्त

---

[121] ध्यानशतक – 15

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बनाता है, साथ ही दूसरों के जीवन में भी अशांति फैलाता है। दूसरों के पास रही हुई वस्तु को या उनके सुखों को देखकर ईर्ष्या करता है। उसमें अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने की अत्यन्त तृष्णा रहती है, उसकी आकांक्षा अधिकाधिक बढ़ती जाती है और इसी में उसका जीवन पूरा हो जाता है, फिर भी उसकी तृष्णा समाप्त नहीं होती। वह दूसरों की वस्तु को प्राप्त करने के लिए शोक, विलाप, माया आदि करता है और दूसरों को भी हानि पहुँचाता है। इच्छाओं की पूर्ति को ही तनावमुक्ति की दवा समझता है।

रौद्रध्यान के भेद, लक्षण व तनाव से उनका सम्बन्ध –

रौद्रध्यान के चार भेद कहे गए हैं[122] –

1. हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान
2. मृषानुबन्धी रौद्रध्यान
3. स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान
4. विषयसंरक्षणानुबन्धी रौद्रध्यान

1. **हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान** – निरन्तर हिंसक प्रवृत्ति में तन्मयता कराने वाली चित्त की एकाग्रता।[123] हिंसानुबन्धी रौद्रध्यान में चित्त दूसरों को पीड़ित करने का, दुःख देने का, उनके ताड़न या मारने का ही चिंतन करता रहता है। जिस प्रकार अग्नि जलाती है, उसी प्रकार रौद्रध्यानी क्रोध रूपी अग्नि में जलता रहता है। उत्तराध्ययनसूत्र में क्रोधादि कषाय को अग्नि की उपमा दी है।[124] उसके मन में शांति नहीं रहती। अशांत व्यक्ति स्वयं भी अशांत रहता है, अर्थात् तनावयुक्त रहता है और दूसरों को भी तनावग्रस्त कर देता है। आचारांगसूत्र से इस बात की पुष्टि होती

---

122 (अ) रौद्दे झाणे चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा –हिंसाणुबन्धि, मोसाणुबन्धि, तेणाणुबन्धि, सारक्खणाणुबन्धि। – स्थानांगसूत्र –4/1/63, पृ. 223 (ब) ध्यानशतक – श्लोक 19–22 (स) ज्ञानार्णव – 24/3 (द) हिंसाऽनृतस्तेयविषय संरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः – तत्त्वार्थसूत्र 9/36

123 जैन साधना पद्धति में ध्यान, –डॉ. सागरमल जैन, पृ. 28

124 कसाया अग्गिणो वुत्ता – उत्तराध्ययनसूत्र–23/53

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। कहा गया है कि –**आतुरा परितावेंति** अर्थात् जो स्वयं आतुर होता है, वह दूसरों को भी परिताप देता है।[125] रौद्रध्यानी इतना क्रूर होता है कि क्रोध में अंधा हुआ मनुष्य पास में खड़ी माँ, बहिन और बच्चे को भी मारने लग जाता है।[126] क्रोध से मनुष्य का हृदय रौद्र बन जाता है।[127]

2. **मृषानुबन्धी रौद्रध्यान** – इस दूसरे रौद्रध्यान का सम्बन्ध माया से है। दूसरों को ठगना, झूठ बोलना, लोभ वश झूठ बोलकर दूसरों के जीवन में अंधेरा कर देना अर्थात् उनके इच्छित विषयों को समाप्त कर देना मृषानुबन्धी रौद्रध्यान है। इस स्थिति में व्यक्ति का मन सदैव दूसरों को ठगने का ही विचार करता रहता है। माया रचता रहता है और एक माया हजारों सत्यों का नाश कर डालती है।[128]

3. **स्तेयानुबन्धी रौद्रध्यान** – इस ध्यान में व्यक्ति तीव्र क्रोध और लोभ से आकुल होकर प्राणियों का उपहनन, अनार्य आचरण और दूसरे की वस्तु का अपहरण करने का चिन्तन करता रहता है।[129] अपहरण करने से अपहरणकर्ता भी तनावयुक्त रहता है और जिसका सामान चोरी हुआ है, वह भी चिंतित व अशांत रहता है।

4. **विषयसंरक्षणानुबन्धी** – तीव्र क्रोध और लोभ से आक्रान्त व्यक्ति का चित्त रूचिकर विषयों की प्राप्ति के साधन रूप धन की रक्षा में संलग्न रहता है। अनिष्ट चिन्तन में रत रहना, सभी के प्रति शंकालु होना, दूसरों का घात करने के भावों से आक्रान्त रहना, विषयसंरक्षणानुबन्धी रौद्रध्यान

---

[125] आचारांगसूत्र – 1/1/6

[126] वसुनन्दि श्रावकाचार –66

[127] भगवती आराधना – 1366 (रोसेण रूद्दहिदओ, णारगसीलो णरो होदि)

[128] भगवती आराधना – 1384 (सच्चाण सहसाण वि, माया एक्कानि णासेदि।)

[129] ध्यानशतक – 20

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है।[130] आकुलता तनाव का लक्षण है। ध्यानशतक में चारों रौद्रध्यान को संसार की वृद्धि करनेवाला ओर नरकगति का मूल कहा गया है।[131] जैनधर्म के अनुसार संसार–वृद्धि और नरकगति दोनों ही दुःख के हेतु हैं या तनावयुक्त अवस्था हैं।

आर्तध्यानी हताश और परेशान होता है, रौद्रध्यानी अपनी निराशा को, चिंता को दूर करने के हेतु रौद्रध्यान करता है लेकिन परिणाम यह होता है कि वह और अधिक तनावग्रस्त हो जाता है। रौद्रध्यान के जो लक्षण हैं, वही एक तनावग्रस्त व्यक्ति में भी पाए जाते हैं। ध्यानशतक में रौद्रध्यान के निम्न लक्षण हैं[132] –

लिंगाइं तस्स उस्सण्ण–बहुल–नाणाविहाऽऽमरणदोसा
तेसिं चिय हिंसाइसु बाहिकरणोवउत्तस्स।।26।।

अर्थात् जो इस हिंसा, मृषावाद आदि में वाणी और शरीर से संलग्न है, उस रौद्रध्यानी के उत्सन्न, बहुल, नानाविध, आमरण दोष – ये चार लक्षण हैं।

1. **उत्सन्न–दोष** – रौद्रध्यानी विषय–भोग, वासना, कामना, राग–द्वेष आदि दोषों से तनावग्रस्त रहता है। उसे दूसरों को देखकर भी प्रसन्नता नहीं होती, अपितु ईर्ष्या से दुःखी होता रहता है। दूसरों के सुख को भंग करने का प्रयत्न करता है।

2. **बहुल–दोष** – दूसरों की प्रसन्नता को निराशा में बदलने के लिए या अपने सुख के लिए उसमें हिंसा, झूठ, चोरी आदि दोषों की बहुलता आ जाती है।

---

130 सद्दाविसयसाहणधणसारक्खणपरायणमणिट्ठं।
सव्वाभिसंकणपरोवघात्कलुसाउलं चित्तं।।22।। ध्यानशतक–22

131 ध्यानशतक – 24

132 ध्यानशतक – 26

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3. **नानाविध–दोष** – रौद्रध्यानी हिंसा, झूठ आदि अनेक क्रूर एवं दुष्ट प्रवृत्तियों को अपने तनावमुक्ति का अर्थात् स्वयं के सुख का हेतु मानता है, इसलिए वह नानाविध दोष करता है।

4. **आमरण–दोष** – रौद्रध्यानी में आमरण–दोष होता है, अर्थात् वह हिंसा, झूठ आदि पापों का सेवन मृत्युपर्यन्त करता रहता है। तनावमुक्ति की चाह में हिंसा आदि प्रवृत्ति में लगा रहता है, क्योंकि उसके लिए हिंसादि प्रवृत्तियाँ ही तनावमुक्ति या शांति के साधन होते हैं।

ये चार प्रकार के रौद्रध्यान राग–द्वेष और मोह से युक्त व्याकुल एवं तनावग्रस्त व्यक्ति के होते हैं। जो लक्षण एक रौद्रध्यानी में होते हैं, वही लक्षण तनावग्रस्त व्यक्ति में भी पाए जाते हैं। तनावग्रस्त व्यक्ति रौद्रध्यान करता हुआ दूसरों को पीड़ित तो करता है, साथ ही दूसरों को दुःखी देखकर प्रसन्नता व शांति की अनुभूति भी करता है, किन्तु उसकी ये अनुभूतियाँ अल्पकालिक ही होती हैं और उसकी दृष्टि को दूषित बनाए रखती हैं।

तुलनात्मक दृष्टि से कहें तो इन दो ध्यानों अर्थात् आर्त्तध्यान एवं रौद्रध्यान के आधार पर हम व्यक्ति के तनाव के स्तर को बता सकते हैं। वस्तुतः इन दोनों ध्यानों में ही तनाव का स्तर तीव्र होता है, किन्तु प्रतिक्रिया की अपेक्षा से रौद्रध्यानी स्वयं को व दूसरों को अधिक तनावग्रस्त करता है।

धर्मध्यान व शुक्लध्यान तनावमुक्ति के हेतु –

जैन आचार्यों ने साधना की दृष्टि से केवल धर्मध्यान और शुक्लध्यान को ही ध्यान की कोटि में रखा है। वस्तुतः तनावमुक्ति की विधियों में भी ये ही दो ध्यान उपयोगी हैं। धर्मध्यान करते हुए शुक्लध्यान में प्रवेश किया जाता है। धर्मध्यान में तनावमुक्त होने के लिए प्रयास प्रारम्भ होता है, धर्मध्यान करते–करते शुक्लध्यान में प्रवेश होता है। शुक्लध्यानी को पूर्णतः तनावमुक्त व्यक्ति कह सकते हैं। यही कारण है कि आध्यात्मिक दृष्टि से, आत्मा के उत्थान के लिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन दोनों को ही ध्यान की कोटि में रखा गया है। दिगम्बर–परम्परा की धवला टीका[133] में तथा श्वेताम्बर–परम्परा के हेमचन्द्र के योगशास्त्र[134] में ध्यान के दो ही प्रकार बताए गए हैं – धर्म और शुक्ल।

धर्मध्यान के भी चार उपप्रकार कहे गए हैं[135], वे निम्न हैं –

1. **आज्ञाविचय** – मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कहें, तो जो पूर्णतः तनावमुक्त हैं, उनके द्वारा बताए गए तनावमुक्ति के मार्ग का चिन्तन करना। जैन शब्दावली में कहें, तो जो वीतरागी है, तनाव के मूल हेतु राग–द्वेष से जो पूर्णतः मुक्त है, उसके उपदेशों पर चिन्तन करना आज्ञाविचय धर्मध्यान है।

2. **अपायविचय** – राग–द्वेष से जनित दुःख का एवं उनके कारणों का चिन्तन कर उनसे छुटकारा कैसे हो, इस सम्बन्ध में विचार करना अपायविचय है।

3. **विपाकविचय** – विपाक का अर्थ है, फल या परिणाम। जैनधर्म के अनुसार पूर्वकर्मों के विपाक के परिणामस्वरूप उदय में आने वाली सुखदुःखात्मक विभिन्न अनुभूतियों का समभावपूर्वक वेदन करते हुए उनके कारणों का विश्लेषण करना विपाकविचय है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि तनाव व तनावमुक्ति दोनों में होने वाली मानसिक अशांति व शांति की अनुभूति करते हुए उनके परिणामों का चिन्तन करे।

4. **संस्थानविचय** – लोक एवं संस्थान शब्द का अर्थ आगमों में शरीर भी है व संसार भी है।[136] मन का शरीर व संसार से आसक्त होकर चिन्तित होना ही तनाव है। संस्थानविचय धर्म–ध्यान में व्यक्ति शरीर व संसार की

---

[133] धवला पुस्तक –13, पृ. 70

[134] योगशास्त्र – 4/115

[135] (1) स्थानांगसूत्र –4/64 (2) ध्यानशतक – 45

[136] जैन साधना पद्धति में ध्यान – डॉ. सागरमल जैन, पृ.29

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गतिविधियों से मुक्ति के लिए अपनी चित्तवृत्तियों को केन्द्रित कर नियंत्रित रखना है।

धर्मध्यानी में मुख्य रूप से निम्न लक्षण पाए जाते हैं[137] –

1. **आज्ञारूचि** – धर्मध्यानी व्यक्ति वीतराग प्रभु के बताए मार्ग का अनुसरण करता है, अर्थात् तनाव उत्पन्न करने वाले तत्त्वों के प्रति उदासीन भाव रखता है।
2. **निसर्गरूचि** – स्व स्वभाव में रूचि होना निसर्गरूचि है। तनावग्रस्त व्यक्ति विभाव दशा में होता है। धर्मध्यानी विभावदशा का त्याग कर स्व स्वभाव में रमण करने का प्रयत्न करता है।
3. **सूत्ररूचि** – तनावमुक्ति के लिए उन उपदेशों को ग्रहण करना, जो सही दिशा–निर्देश करते हैं।
4. **आगमरूचि** – आगम के उपदेशों को सुनकर उन पर चिन्तन–मनन करना आगमरूचि है।

शुक्लध्यान – यह धर्मध्यान के बाद की स्थिति है। धर्मध्यान के द्वारा तनावग्रस्त व्यक्ति के मन को वासनारूपी विकल्पों से मोड़कर धर्मध्यान में लगाया जाता है। शुक्लध्यान के द्वारा मन को शान्त और तनावमुक्त किया जाता है। इसकी अन्तिम परिणति मन की समस्त प्रवृत्तियों का पूर्ण निरोध है।[138] शुक्लध्यान के चार भेद कहे गए हैं[139] –

---

[137] स्थानांग – 4/66

[138] जैन साधना पद्धति में ध्यान – डॉ. सागरमल जैन, पृत्र 30

[139] (1) स्थानांगसूत्र – 4/69 (2) ध्यानशतक – 78–84

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1. **पृथक्त्व–वितर्क–सविचार** – इस ध्यान में ध्याता द्रव्य की पर्यायों का चिन्तन करता है। व्यक्ति के राग–द्वेष के भाव द्रव्य पर ही होते हैं। द्रव्य की पर्यायों का चिन्तन करते–करते वह उस द्रव्य के प्रति राग–द्वेष से रहित होकर तनावमुक्त हो जाता है।
2. **एकत्व–वितर्क–अविचार** – यह पृथक्त्व–वितर्क–सविचार का विरोधी है। इसमें विचार का अभाव होता है।
3. **सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती** – इस अवस्था में मन, वचन और शरीर के व्यापार का निरोध हो जाता है। व्यक्ति शांति का आनन्द का अनुभव करता है।
4. **समुच्छिन्न–क्रिया–निवृत्ति** – यह पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है।

पूर्णतः तनावमुक्त व्यक्ति में निम्न लक्षण पाए जाते हैं, जो शुक्लध्यानी के होते हैं[140] –

1. किसी भी पीड़ा की स्थिति में अल्पमात्रा में भी दुःखी या तनावग्रस्त नहीं होता, इसे ही स्थानांगसूत्र में अव्यथ–परीषह कहा गया है।
2. तनाव उत्पन्न करने वाली इच्छाओं, आकांक्षाओं का अंत हो जाता है, अर्थात् वह किसी भी प्रकार से मोहित नहीं होता।
3. विवेक – **स्व** और **पर** के भेद को समझकर शुद्धात्म स्वस्वभाव में रमण करता है।
4. व्युत्सर्ग – तनाव उत्पत्ति का मुख्य कारण ममत्व है। इस अवस्था में शुक्लध्यानी अपने शरीर, उपधि आदि के प्रति ममत्व भाव का पूर्ण त्याग कर देता है।

---

[140] (1) स्थानांगसूत्र – 4/70 (2) जैन साधना पद्धति में ध्यान – डॉ. सागरमल जैन, पृ.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थानांगसूत्र में शुक्लध्यान के चार आलम्बन बताए गए हैं[141] – 1. शांति, 2. मुक्ति (निर्लोभता), 3. आर्जव (सरलता) और 4. मार्दव। डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं कि –शुक्लध्यान के ये चार आलम्बन चार कषायों के त्यागरूप ही हैं।[142] वस्तुतः तनाव का मूल कारण कषाय हैं और कषाय का पूर्णतः त्याग ही तनावमुक्ति है। पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था ही शुक्लध्यान है।

आचारांग में ममत्व का स्वरूप, ममत्व के त्याग एवं तृष्णा पर प्रहार –

यह मेरा धन है, मेरा राज्य है, मेरी वस्तु है ऐसा मानना ममत्व है, ममता है। परिवार या सम्पत्ति के मोह में बंधी हुए व्यक्ति की ममत्व बुद्धि ही व्यक्ति के तनाव का हेतु होती है। आचारांग में लिखते हैं कि –"यह मेरी माता है, मेरी बहन है, मेरा भाई है, मेरा पुत्र है, मेरी पत्नि है, मेरे संगी–साथी हैं, इन्होंने मेरे लिए भोजन, वस्त्र, मकान आदि की व्यवस्था की है, इस प्रकार आसक्त व्यक्ति दिन–रात बिना विचार किए दुष्कर्म करता है।[143] वस्तुतः **'पर'**, पर **'स्व'** का आरोपण ही ममत्व बुद्धि का लक्षण है। प्राणी इस ममत्व भाव के कारण ही संसार में जन्म–मरण करता है। जैनधर्म का यह मानना है कि जन्म–मरण दुःख है। यह दुःख ही तनाव है। व्यक्ति जिस वस्तु को 'मैं' रूप मानता है, या मेरी मानता है, उसका विनाश या वियोग अवश्य ही होता है और जब उस वस्तु का नाश हो जाता है, तो यह मेरापन ही दुःख का या तनाव का कारण बन जाता है। गौतमस्वामी को भी तब तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं हुआ, जब तक उन्होंने प्रभु महावीर पर अपनी ममत्वबुद्धि रखी थी, कि यह मेरे गुरू हैं। जब उनकी ममता टूटी तब ही उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया।

---

[141] स्थानांगसूत्र – 4/71

[142] जैन साधना पद्धति में ध्यान – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 31

[143] आचारांग – 2/1/63

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ममत्वबुद्धि व्यक्ति को बांधकर रखती है। ममत्वबुद्धि के अनेक उदाहरण जैन कथाओं में मिलते हैं। नन्दन मणियार को अपनी बनाई पानी की बावड़ी से इतनी अधिक ममता जुड़ी थी, कि उन्होंने मरकर उसी बावड़ी में मेंढक रूप में जन्म लिया। वस्तुतः देखा जाए तो यह ममत्वबुद्धि हमें पराधीन बना देती है। जो मेरा है, उस पर स्वामित्व भाव हो जाता है और व्यक्ति उस मेरेपन के भाव से ही तनावग्रस्त हो जाता है। व्यक्ति प्रसन्न तब होता है जब उसको वस्तुओं पर मेरेपन का अधिकार मिलता है। कन्हैयालालजी लोढ़ा लिखते हैं कि –"दुःख का कारण वस्तुओं व व्यक्तियों के प्रति रहा हुआ हमारा ममत्व व स्वामित्व भाव ही है और उस पराधीनता के दुःख से छूटने का उपाय है, वस्तुओं से स्वामित्वभाव या मेरेपन का त्याग।"[144] हमने शरीर को भी 'मेरा' मान लिया है और इस शरीर के अधीन होकर इसकी उन जरूरतों की पूर्ति करने में लगे हुए हैं, जो कभी समाप्त नहीं होती।

यह ममत्वबुद्धि एक साथ कई दुःखित भावों को जन्म देती है, जो तनाव का कारण बनते हैं। जैसे – जब धन का संचय होता है तो मेरे पास और अधिक धन हो, यह भाव परिग्रह बढ़ाता है। मैं सबसे बड़ा करोड़पति आदमी हूँ, यह भाव अहंकार पैदा करता है। इस प्रकार यह मेरेपन का भाव बंधन है, ममत्व है, अहं है और तनाव उत्पत्ति का कारण है, यह ममत्व ही तृष्णा को जन्म देता है। यह तृष्णा, इच्छा, कामना व्यक्ति को दुःखी व तनावग्रस्त करती है, क्योंकि तृष्णा कभी समाप्त नहीं होती। प्यास लगने पर पानी पी लेते हैं, किन्तु कुछ समय बाद प्यास पुनः लग ही जाती है। इसी प्रकार व्यक्ति का यह स्वभाव हे कि उसकी तृष्णा कभी समाप्त नहीं होती। तनावमुक्ति के लिए हमें इस मेरेपन का या ममत्व का त्याग करना होगा। यह समझना होगा कि सिर्फ आत्मा ही **'स्व'** है, बाकी सब पराया है। सूत्रकृतांग में लिखा है – आत्मा और है, शरीर

---

[144] दुःखरहित सुख – कन्हैयालाल लोढ़ा, पृ. 61

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

और है।[145] शब्द, रूप आदि कामभोग के पदार्थ अन्य हैं, मैं (आत्मा) अन्य हूँ।[146] कोई किसी दूसरे के दुःख को बँटा नहीं सकता,[147] अर्थात् जो ये सगे–सम्बन्धी हैं, वे ही तनाव उत्पत्ति के निमित्त हैं। हर प्राणी अकेला जन्म लेता है, अकेला मरता है।[148] कहने का तात्पर्य यही है कि व्यक्ति अकेला है, उसका शरीर भी उसका नहीं होता। वह भी राख हो जाता है, किन्तु हम शरीर से ममता रखते हुए दिन–रात उसकी कामनाओं की पूर्ति करने में लगे रहते हैं। यह मेरा है, वह मेरा है –इस ममत्व बुद्धि के कारण ही व्यक्ति दुःख पाता है। इस बात की पुष्टि सूत्रकृतांग से होती है। उसमें वर्णित है –**"ममाइं लुप्पई बाले"**[149] जब तक ममत्व का त्याग नहीं होगा, तनाव–मुक्ति मिलना सम्भव नहीं है। मरूदेवी माता ने भी जब पुत्र से मेरेपन के भाव का त्याग किया, उसी वक्त केवलज्ञान प्राप्त कर मुक्ति को प्राप्त हो गई। जितना–जितना त्याग बढ़ता जाएगा व्यक्ति की ममत्वबुद्धि या आसक्ति घटती जाएगी और जैसे–जैसे ममत्वबुद्धि या आसक्ति घटेगी, तनावमुक्ति की अनुभूति होगी। इस ममत्ववृत्ति या मेरेपन के विकल्प की समाप्ति ध्यान से होगी, अतः ध्यान तनावप्रबन्धन की एक विधि भी है। यहाँ उसकी चर्चा तनाव प्रबंधन की एक विधि के रूप में की जा रही है।

स्थानांगसूत्र और ध्यानशतक में तनाव प्रबंधन की विधि– ध्यानसाधना–

स्थानांगसूत्र और ध्यानशतक दोनों ही संभवतः जैन–परम्परा के ध्यान सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं।

जहाँ स्थानांगसूत्र में ध्यान के प्रकार, लक्षण आदि की चर्चा है, वहाँ ध्यान शतक पूर्णतया ध्यान का ही ग्रन्थ है। इसमें भी ध्यान के लक्षण, प्रकार, आदि

---

[145] सूत्रकृतांग – 2/1/9

[146] सूत्रकृतांग – 2/1/13

[147] सूत्रकृतांग – 2/1/13

[148] सूत्रकृतांग – 2/1/13

[149] सूत्रकृतांग – 2/1/1/4

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की विस्तृत चर्चा है। जैन परम्परा के ग्रंथों में जहाँ एक ओर राग–द्वेष को तनाव का मूलभूत कारण बताया गया है, वहीं दूसरी ओर तनावमुक्ति के लिए ध्यान–साधना को एक उचित साधन बताया गया है।

वस्तुतः ध्यान साधन भी है और साधना भी है। मन और इन्द्रियों को नियंत्रण करने की शक्ति ध्यान में ही है। तनावमुक्ति रूपी लक्ष्य की प्राप्ति ध्यान साधना से ही सम्भव है। इस साधना से साध्य को प्राप्त करने का साधन भी ध्यान ही है। ध्यान अगर सही दिशा में हो तो वह तनावमुक्ति की ओर ले जाता है, अन्यथा वह तनावग्रस्तता का कारण बन जाता है। जैनदर्शन के अनुसार आर्त्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल –इन चार ध्यानों में से आर्त और रौद्र ध्यान तो तनावों का कारण है या तनाव रूप ही है, जबकि धर्म और शुक्ल ध्यान तनावों से मुक्ति के हेतु हैं। वस्तुतः शुक्ल ध्यान तो तनाव रहित अवस्था का ही सूचक है।

स्थानांगसूत्र में न केवल ध्यान के प्रकारों का वर्णन है, अपितु प्रत्येक प्रकार के ध्यान के लक्षण आदि का भी विवेचन दिया गया है।

स्थानांगसूत्र में ध्यान के प्रकार व लक्षण –

ध्यान की सभी प्रक्रियाएँ अपनाने योग्य नहीं होती। स्थानांग में चार प्रकार के ध्यान कहे गए हैं। उनमें से प्रथम दो ध्यान मन को एकाग्र तो करते हैं, किन्तु उसे गलत दिशा में ले जाकर तनावग्रस्त बना देते हैं। शेष दो ध्यान अर्थात् धर्म और शुक्ल ध्यान ही व्यक्ति को तनावमुक्त करते हैं। कौन सा ध्यान करने योग्य है और कौन सा ध्यान नहीं करने योग्य है, इसका निर्णय स्थानांगसूत्र में दिए गए ध्यान के प्रकारों एवं लक्षणों के आधार पर स्वतः ही किया जा सकता है। स्थानांगसूत्र में ध्यान के प्रकारों एवं लक्षणों का विवरण इस प्रकार हैं –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्त्तध्यान –

किसी भी प्रकार के दुःख के आने पर शोक--मग्नता तथा चिन्तायुक्त मन की एकाग्रता आर्त्तध्यान है।[150] आर्त्तध्यान निराशा की स्थिति है। आर्त्तध्यान में व्यक्ति दुःख आने पर शोकाकुल और चिंतित हो जाता है। वह उसी दुःख का स्मरण करता रहता है। आर्त्तध्यान में व्यक्ति के चिन्तायुक्त मन की एकाग्रता उसे तनावग्रस्त ही करती है। स्थानांगसूत्र में इस ध्यान के चार उपप्रकार बताए गए हैं।[151]

1. अमनोज्ञ वस्तु का संयोग होने पर उसको दूर करने हेतु बार–बार चिन्तन करना।
2. मनोज्ञ वस्तु का संयोग होने पर उसका कभी वियोग न हो, ऐसा बार--बार चिन्तन करना।
3. आतंक या भय होने पर उसको दूर करने का बार–बार चिन्तन करना।
4. प्रीतिकारक काम–भोग का संयोग होने पर उनका वियोग न हो, ऐसा बार–बार चिंतन करना।

आर्त्तध्यान के इन चारों उपप्रकारों में 'चिंतन' शब्द का प्रयोग अवश्य है, किन्तु यहाँ चिन्तन का अर्थ चिंता से है और जहाँ चिंता होती है, वहाँ तनाव अवश्य होता है। चिंतायुक्त व्यक्ति तनावग्रस्त होता ही हैं। मनोविज्ञान में तनावग्रस्त व्यक्ति के जो लक्षण बताए जाते हैं, स्थानांगसूत्र में प्रायः वही लक्षण आर्त्तध्यान से युक्त व्यक्ति के कहे गए हैं। जैसे –

1. क्रन्दनता – उच्च स्वर से आक्रन्दन करना अर्थात् रोना।

---

[150] स्थानांगसूत्र – ध्यानसूत्र 4/1/60 मधुकर

[151] स्थानांगसूत्र – ध्यानसूत्र 4/1/61 मधुकर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. शोचनता – दीनता प्रकट करते हुए शोक करना।
3. तेपनता – आँसू बहाना।
4. परिवेदनता – करूणाजनक विलाप करना।[152]

अनिष्ट वस्तु का संयोग या इष्ट का वियोग होने पर जो मनुष्य दुःख शोक, संताप, आक्रन्दन या विलाप करता है। वह सब उसकी तनावग्रस्तता को ही प्रकट करते हैं। रोग को दूर करने के लिए या प्रिय वस्तु नष्ट न हो जाए, इसके लिए चिन्तातुर रहना, वस्तुतः तनावग्रस्तता का ही लक्षण है।

जब दुःख आदि के चिन्तन में चित्त की एकाग्रता बनती है तो वह ध्यान की कोटि में आ जाती है। किन्तु ऐसा ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है और आर्त्तध्यान तनावग्रस्तता का ही सूचक है।

रौद्रध्यान –

'हिंसा या परपीड़न की क्रूर मानसिकता में चित्तवृत्ति की एकाग्रता रौद्रध्यान है।'[153] तनाव का सबसे पहला प्रभाव मानव के मानस पर पड़ता है। तनाव की जन्मस्थली मन है और मन की अशांति मस्तिष्क को भी अशांत बना देती है। जब मस्तिष्क अशांत होता है तो व्यक्ति रौद्रध्यान करने लगता है। रौद्रध्यान तनाव की स्थिति को और अधिक बढ़ा देता है। स्थानांगसूत्र में रौद्र ध्यान के चार प्रकार कहे गए हैं[154] –

1. हिंसानुबन्धी – निरन्तर हिंसक प्रवृत्ति में तन्मयता कराने वाली चित्त–वृत्ति की एकाग्रता।
2. मृषानुबन्धी – असत्य भाषण सम्बन्धी चित्त की एकाग्रता।

---

[152] स्थानांगसूत्र – 4/1/62

[153] स्थानांगसूत्र – 4/1/60, मधुकर मुनि

[154] स्थानांगसूत्र – 4/1/63, मधुकर मुनि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

3. स्तेयानुबन्धी – निरन्तर चोरी करने–कराने की प्रवृत्ति सम्बन्धी चित्त की एकाग्रता।

4. संरक्षणानुबन्धी – परिग्रह के अर्जन और संरक्षण सम्बन्धी तन्मयता।

उपर्युक्त चारों रौद्रध्यान के उपप्रकार व्यक्ति की तनावग्रस्त अवस्था का ही संकेत करते हैं और ये आर्त्तध्यान की अपेक्षा भी अधिक तनावग्रस्त बना देते हैं। आर्त्तध्यान में तो सिर्फ चिन्तन होता है, किन्तु उस चिन्तन से मुक्त होने के लिए व्यक्ति जिन दुष्प्रवृत्तियों को अपनाता है, उसे रौद्रध्यान कहते हैं। अनिष्ट वस्तु को दूर करने व इष्ट वस्तु को प्राप्त करने में चिन्तित तनावग्रस्त व्यक्ति अपनी चिन्ता को दूर करने या तनावमुक्त होने के लिए जब हिंसक प्रवृत्ति करता है, चोरी करता है, झूठ बोलता है और यही हिंसकादि प्रवृत्तियाँ उसे तनाव के उस उच्चस्तर पर ले जाती है, जहाँ व्यक्ति का विवेक ही नष्ट हो जाता है और विवेक के नष्ट हो जाने पर तनावमुक्ति भी अशक्य हो जाती है।

रौद्रध्यान के लक्षण बताते हुए स्थानांगसूत्र में कहा गया है[155] –

रौद्रध्यान के चार लक्षण हैं –

1. उत्सनदोष – हिंसादि किसी एक पाप में निरन्तर प्रवृत्ति करना।
2. बहुदोष – हिंसादि विविध पापों के करने में संलग्न रहना।
3. अज्ञानदोष – कुसंस्कारों से हिंसादि आदि अधार्मिक कृत्यों जैसे बलि आदि को ही धर्म मानना।
4. आमरणान्तदोष – भरणकाल तक भी हिंसादि करने का अनुताप न होना, अर्थात् मृत्यु को समीप देखकर भी हिंसादि पाप प्रवृत्तियों का पश्चाताप नहीं होना।

यह स्पष्ट है कि ये सभी लक्षण भी व्यक्ति की तनावग्रस्तता के सूचक हैं। जैन शास्त्रों में आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को अशुभध्यान कहा गया है। ये दोनो

---

[155] स्थानांगसूत्र – 4/1/64, मधुकर मुनि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ध्यान अशुभकर्म का बंध कराते हैं। अग्रिम दो अर्थात् धर्मध्यान और शुक्लध्यान तनावमुक्ति के उपाय हैं, इन्हें ही जैन धर्मदर्शन में मोक्ष प्राप्ति के उपाय भी बताया है और मोक्ष पूर्णतः तनावमुक्ति अवस्था ही है।

धर्मध्यान –

'श्रुतधर्म और चारित्रधर्म के चिन्तन में चित्त की एकाग्रता का होना धर्मध्यान है।'[156] श्रुतधर्म का अर्थ है, आगमों में वर्णित उपदेशों का या तीर्थंकरों की आज्ञा का चिन्तन करना और चारित्र धर्म का अर्थ है, आगमों में दिए गए आचार का अर्थात् जिनाज्ञा का पालन करना।

इसका तात्पर्य यही है कि साधक यह चिन्तन करे कि उसके लिए क्या करणीय या आचरणीय है और क्या अकरणीय या अनाचरणीय है। इस प्रकार धर्मध्यान का आलम्बन लेकर व्यक्ति तनावों से मुक्त हो सकता है, क्योंकि जिनाज्ञा इच्छाओं और आकांक्षाओं से ऊपर उठने में ही है।

धर्मध्यान के भेद – धर्मध्यान के चार भेद बताए गए हैं[157] –

1. आज्ञाविचय – जिनाज्ञा के चिन्तन में संलग्न रहना और उसके पालन में तत्पर रहना।
2. अपायविचय – संसार पतन के कारणों का विचार करते हुए उनसे बचने का उपाय करना।
3. विपाकविचय – अच्छे–बुरे कर्मों के फल का विचार करना।
4. संस्थानविचय – जन्म–मरण के आधारभूत पुरुषाकार इस लोक के स्वरूप का चिन्तन करना।

---

[156] स्थानांगसूत्र – 4/1/65

[157] स्थानांगसूत्र – 4/1/65

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त चारों प्रकारों का विवेचन इसी अध्याय में पूर्व में भी कर चुके हैं, यहाँ मात्र इतना कहना ही काफी होगा कि ये चारों प्रकार व्यक्ति को तनावमुक्त करने में सहायक बनते हैं, किन्तु ये सहायक तभी बन सकते हैं, जब व्यक्ति धर्मध्यान की साधना में प्रवृत्त हों, अर्थात् तनाव प्रबन्धन करें।

स्थानांगसूत्र में धर्मध्यान के चार लक्षण कहे गए हैं। जैसे –

1. आज्ञारूचि – जिनाज्ञा के मनन–चिन्तन में रूचि, श्रद्धा एवं भक्ति होना।
2. निसर्गरूचि – धर्म कार्यों के करने में स्वाभाविक रूचि होना।
3. सूत्ररूचि – आगम शास्त्रों के पठन–पाठन में रूचि होना।
4. अवगाढ़ रूचि – द्वादशांगी के अवगाहन में प्रगाढ़ रूचि होना।[158]

तनावमुक्ति के लिए धर्मध्यान का आलम्बन ले सकते हैं, किन्तु धर्मध्यान के लिए भी कुछ आलम्बन आवश्यक माने गए हैं। बिना आलम्बन के धर्मध्यान का होना भी सम्भव नहीं है। स्थानांगसूत्र में धर्मध्यान के चार आलम्बन बताए गए हैं[159]–

1. वाचना – आगमसूत्र आदि का पठन करना।
2. प्रतिपृच्छना – शंका निवारणार्थ गुरूजनों से पूछना।
3. परावर्तन – पठित सूत्रों का पुनरावर्तन करना या उन्हें दोहराना।
4. अनुप्रेक्षा – आगमों के अर्थ का चिन्तन करना।

उपर्युक्त वाचनादि आलम्बन से धर्मध्यान की सिद्धि होती है, किन्तु जब तक व्यक्ति के जीवन में तनाव का स्तर होता है, तब तक धर्मध्यान में स्थिरता

---

[158] स्थानांगसूत्र – 4/1/66

[159] स्थानांगसूत्र – 4/1/67

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नहीं आती है। स्थिरता के अभाव में सिद्धि भी नहीं होती। स्थिरता के लिए स्थानांग में चार प्रकार की अनुप्रेक्षाएँ बताई गई हैं।[160]

1. एकात्वानुप्रेक्षा – जीव संसार में सदा अकेले ही परिभ्रमण करता है और अकेला ही सुख–दुःख का भोग करता है, ऐसा चिन्तन करता है।
2. अनित्यानुप्रेक्षा – सांसारिक वस्तुओं की अनित्यता का चिन्तन करना।
3. अशरणानुप्रेक्षा – जीव के लिए कोई दूसरा व्यक्ति, धन, परिवार आदि शरणभूत नहीं होते हैं, ऐसा चिन्तन करना।
4. संसारानुप्रेक्षा – चतुर्गति रूप संसार की दशा का चिन्तन करना।

तनावयुक्त व्यक्ति धर्मध्यान के आलम्बनों का सहारा लेकर तनाव से मुक्त होने का प्रयत्न करता है, किन्तु असफलता के कारण कभी–कभी ऐसी परिस्थिति का भी सामना करना पड़ता है, जहाँ धर्मध्यान से उसकी श्रद्धा डगमगाने लगती है और वह अधिक तनावग्रस्त हो जाता है। ऐसी स्थिति में भी तनावमुक्ति के साधनों जैसे शास्त्र, गुरूवचन आदि पर श्रद्धा रखने के लिए अनुप्रेक्षा को भी नित्य नियम से करना आवश्यक है।

शुक्लध्यान –

धर्मध्यान के बाद शुक्लध्यान का क्रम है। डॉ. सागरमल जी जैन लिखते हैं कि –"शुक्लध्यान के द्वारा मन को शान्त और निष्कम्प किया जाता है।"[161] तनाव की जन्मस्थली मन है और मन का अमन होना ही तनावमुक्ति है। शुक्लध्यान में मन अमन हो जाता है, अर्थात् मन में इच्छाएँ–आकांक्षाएँ या अन्य कोई विकल्प नहीं रह जाते हैं, जो व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाते हैं। चित्त शांत हो जाता है। यही कारण है कि जैनदर्शन में मुक्ति का अन्तिम साधन शुक्लध्यान

---

[160] स्थानांगसूत्र – 4/1/68

[161] जैन साधना पद्धति में ध्यान – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 30

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माना गया है। शुक्लध्यान के अंतिम चतुर्थ चरण को प्राप्त व्यक्ति मोक्ष को प्राप्त कर लेता है, जो कि आत्मा का अंतिम लक्ष्य है।

तनावमुक्ति का लक्ष्य रखते हुए व्यक्ति शुक्लध्यान की प्रथम अवस्था से क्रमशः आगे बढ़ते हुए अन्त में सिद्धावस्था अर्थात् पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था को प्राप्त कर लेता है। स्थानांगसूत्र में शुक्लध्यान की चार अवस्थाएँ बताई गई हैं। ये चार अवस्थाएँ ही शुक्लध्यान के चार प्रकार भी कहे गए हैं[162] –

1. **पृथकत्ववितर्क सविचार** – इस ध्यान में ध्याता के चित्त में विचार तो रहते हैं, परन्तु चित्त में चंचलता नहीं रहती है। व्यक्ति किसी वस्तु पर चित्त को केन्द्रित करता है, उसका विश्लेषण करता है, जैसे किसी एक ही वस्तु के किसी एक गुण विशेष का चिन्तन करता है, तो कभी उसकी विविध अवस्थाओं या पर्यायों का चिन्तन करता है।

2. **एकत्ववितर्क अविचार** – मनोवृत्ति में इतनी स्थिरता हो जाती है कि जीव एक ही विश्लेषित गुण या पर्याय पर अपने चिन्तन को केन्द्रित कर लेता है।

3. **सूक्ष्मक्रिया–अनिवृत्ति** – इसमें मन, वचन और काया की स्थूल क्रियाएँ तो रूक जाती है, किन्तु उनकी सूक्ष्म क्रियाएँ चलती रहती है। उदाहरण – हाथ, पाँव का हिलना डुलना तो बंद हो जाता है, परन्तु स्वप्न आदि की क्रियाएँ तो चलती रहती हैं।

4. **समुछिन्नक्रिया–अप्रतिपाती** – इस ध्यान में मन, वचन और काया की सूक्ष्म प्रवृत्तियाँ भी समाप्त हो जाती है। इस ध्यान का ध्याता चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त कर पाँच ह्रस्व स्वरों या व्यंजनों के उच्चारण में जितना समय लगाता है, उतने समय में मुक्त हो जाता है। उपर्युक्त ध्यान के प्रकारों का तनाव–प्रबन्धन के साथ क्या सम्बन्ध है ? यह इसी अध्याय के पूर्व में दिया गया है।

---

[162] स्थानांगसूत्र – 4/1/69

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थानांगसूत्र में शुक्लध्यान के चार लक्षण बताए गए हैं, वे निम्न हैं –

1. अव्यथ–व्यथा से रहित अर्थात् परीषह या उपसर्गादि से पीड़ित नहीं होने वाला।
2. असम्मोह –देवादिकृत माया से मोहित नहीं होने वाला।
3. विवेक – सभी संयोगों को आत्मा से भिन्न मानने वाला।
4. व्युत्सर्ग – शरीर और उपधि से ममत्व का त्यागकर पूर्ण निःसंग हो जाना।

तनावमुक्त व्यक्ति में भी ये ही लक्षण पाए जाते हैं, वह किसी भी व्याधि, रोग, परीषह या उपसर्गादि से दुःखी नहीं होता है, न ही किसी संयोग से प्रसन्न होता है। वह मात्र शांति व आनंद का अनुभव करता है, क्योंकि उसके अन्तरमन में क्षमा, निर्लोभता, नैतिकता, सरलता, मृदुता, सहिष्णुता आदि का वास होता है। स्थानांगसूत्र में शुक्लध्यान के चार आलम्बन भी बताए हैं, जो तनावमुक्त व्यक्ति में गुणरूप में विद्यमान रहते हैं।[163]

1. क्षान्ति (क्षमा)
2. मुक्ति (निर्लोभता)
3. आर्जव (सरलता)
4. मार्दव (मृदुता)

ध्यानशतक में ध्यान के लक्षण –

ध्यानशतक भी पूर्णतः ध्यान पर ही आधारित ग्रन्थ है। ध्यान के बिना समत्व और समत्व बिना मुक्ति सम्भव नहीं है, अतः तनाव प्रबन्धन के लिए ध्यान आवश्यक है। ध्यानशतक में भी ध्यानों के स्वरूप, लक्षण, आलम्बन आदि की विस्तृत चर्चा हुई है। ध्यानशतक ध्यान के चार भेदों का निरूपण करने से पूर्व ध्यान के लक्षण का विवेचन करता है कि –"स्थिर अध्यवसाय ध्यान है। स्थिर

---

[163] स्थानांगसूत्र – 4/1/71

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्यवसायों को ध्यान कहा जाता है, क्योंकि भावना, अनुप्रेक्षा और चिन्तन को स्थिर करने में ध्यान सहायक है।"[164] वस्तुतः ध्यानशतक में भी ध्यान के प्रकार या भेद, ध्यान के लक्षण वही बताए गए हैं, जो स्थानांगसूत्र में कहे गए हैं। अन्तर सिर्फ इतना है कि इसमें सभी ध्यानों की विस्तृत चर्चा की गई है।

आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान को तनावयुक्त होने का कारण कहा है, और धर्मध्यान और शुक्लध्यान को तनावमुक्ति का हेतु बताया है। ध्यानशतक में जिनभद्रगणि लिखते हैं कि –"आर्त्त और रौद्रध्यान संसार के कारण हैं और अन्तिम दो ध्यान धर्मध्यान और शुक्लध्यान निर्वाण में सहायक हैं।"[165] वस्तुतः जो संसार का कारण है, वही तनावग्रस्तता का कारण है और जो निर्वाण में सहायक तत्त्व हैं वे ही तनावमुक्ति के कारण हैं।

ध्यानशतक में धर्मध्यान के वे ही भेद, लक्षण, आलम्बन एवं अनुप्रेक्षा आदि दी गई है, जो स्थानांग में है। साथ ही ध्यानशतक में शुभध्यान अर्थात् धर्मध्यान के पहले अभ्यास के लिए चार भावनाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, वे इस प्रकार हैं– 1. ज्ञान भावना, 2. दर्शन भावना, 3. चारित्र भावना और 4. वैराग्य भावना।

वस्तुतः देखा जाए तो ये भावनाएँ भी तनावमुक्ति के साधन हीं है। 'ध्यान से मन की विशुद्धि करता है।'[166] 'दर्शन से शंका–कांक्षादि दोषों से रहित होता है।'[167] चारित्र और भावना से नवीन कर्मों का आस्रव नहीं होता है।[168] वैराग्य भाव से पूरित ऐसे व्यक्ति का चित्त सहज स्थिर हो जाता है, अर्थात् वह तनावमुक्त हो जाता है।[169]

---

[164] ध्यानशतक –2

[165] ध्यानशतक –5

[166] ध्यानशतक –31

[167] ध्यानशतक –32

[168] ध्यानशतक –33

[169] ध्यानशतक –34

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इच्छानिर्मूलन और तनावमुक्ति –

जैसा कि हमने पूर्व में उल्लेख किया है कि तनाव के अनेक कारणों में एक कारण व्यक्ति की इच्छाएँ व आकांक्षाएँ भी हैं। व्यक्ति दूसरों से अथवा अपने परिजनों से अथवा अपने परिवेश से यह अपेक्षा रखता है कि उसकी इच्छा की पूर्ति हो। जैसा कि पूर्व में कहा गया है – इच्छाएँ अनन्त हैं। आचारांग में भी लिखा है कि –"कामा दुरतिक्कम्मा" अर्थात् कामनाओं का पार पाना बहुत कठिन है।[170] "इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त होती हैं।"[171] उनका कोई अन्त नहीं है और उनकी पूर्ति के साधन सीमित हैं। सीमित साधनों से असीमित इच्छाओं की पूर्ति सम्भव नहीं होती। अतः इच्छाएँ अपूर्ण रहती हैं। अपूर्ण इच्छाएँ चेतना में तनाव उत्पन्न करती हैं, अतः तनावमुक्ति के लिए इच्छाओं का निर्मूलन करना आवश्यक है। दशवैकालिक में भी कहा गया है कि –"वह साधना कैसे कर पाएगा, जो कि अपनी कामनाओं–इच्छाओं को रोक नहीं पाता ?[172] तनावमुक्ति के लिए इच्छाओं को दूर करना होगा। भगवान् महावीर ने कहा भी है –"कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।" अर्थात् कामनाओं–इच्छाओं को दूर करना ही तनाव (दुःखों) को दूर करना है।[173]

दुर्भाग्य से वर्तमान में जो अर्थनीति चल रही है, उसके अनुसार यह माना जाता है कि इच्छाओं में वृद्धि की जाए। विज्ञापन के द्वारा व्यक्ति की इच्छाओं को उत्तेजित करने का प्रयत्न किया जाता है और उसके पक्ष में यह कहा जाता है कि जब इच्छाएँ बढ़ेगीं तो वस्तुओं की मांग बढ़ेगी। मांग बढ़ने से उत्पादकों को उत्पादन बढ़ाने की प्रेरणा मिलेगी, उत्पाद बढ़ाने की वृत्ति से लोगों को रोजगार मिलेगा और उससे लोगों की गरीबी दूर होगी। दूसरे उत्पादन के बढ़ने से और उपभोक्ता में क्रय की इच्छा होने से व्यापार बढ़ेगा। व्यापार के बढ़ने से

---

[170] आचारांगसूत्र – 1/2/5

[171] इच्छा हु आगाससमा अणंतिया। – उत्तराध्ययनसूत्र – 9/48

[172] कहं नु कुज्जा सामण्णं, जो कामे न निवारए। – दशवैकालिकसूत्र –211

[173] दशवैकालिकसूत्र – 2/5

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनाफा बढ़ेगा। मुनाफा बढ़ने से क्रयशक्ति बढ़ेगी। क्रयशक्ति बढ़ने से पुनः माल की खपत बढ़ेगी। इस प्रकार देश और व्यक्ति दोनों के आर्थिक विकास में सहायता मिलेगी। संक्षेप में कहें तो आज की अर्थशक्ति इन तीन सिद्धांतों पर खड़ी हुई है – इच्छाएँ बढ़ाओं, माल खपाओ और मुनाफा कमाओ। इस सबके आधार पर उपभोक्तावादी संस्कृति का विकास हो रहा है और यह उपभोग की प्रवृत्ति इच्छाओं को जन्म देती है और जिससे तनाव बढ़ता है। उत्तराध्ययनसूत्र के चतुर्थ असंस्कृत अध्ययन में स्पष्टतः कहा गया है कि –'वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते' अर्थात् धन व्यक्ति की सुरक्षा करने में समर्थ नहीं है।[174] यही कारण है कि आज आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न देश भी तनाव से मुक्त नहीं है। इच्छाओं की वृद्धि से उपभोग की आकांक्षा उत्पन्न होती है। उपभोग के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है, अतः व्यक्ति येन–केन– प्रकारेण अर्थ अर्जन करना चाहता है। इससे शोषण और दोहन की प्रवृत्ति बढ़ती है। दोहन की प्रवृत्ति से पर्यावरण असंतुलित होता है और शोषण वृत्ति से समाज में वर्गभेद व वर्ग संघर्ष जन्म लेते हैं, फलतः तनाव बढ़ते ही जाते हैं। इस प्रकार यदि तनावों से मुक्त होना है तो इस अर्थ चक्र को ही परिवर्तित करना होगा, क्योंकि चल–अचल सम्पत्ति, धन, धान्य और गृहोपकरण भी दुःख से, तनाव से मुक्त करने में समर्थ नहीं होते हैं।[175]

इच्छाओं का निर्मूलन एकमात्र ऐसा उपाय है जो व्यक्ति को तनावों से मुक्त कर सकता है। उपभोक्तावाद का आधार अनियन्त्रित इच्छाएँ हैं और जैनधर्म इच्छाओं को सीमित या उनके निर्मूलन करने की बात करता है। दशवैकालिक में कहा भी है[176] –**"कामे कमाही कमियं खु दुक्खं"**, कामनाओं, इच्छाओं को दूर करना ही दुःखों को दूर करना है, अर्थात् इच्छाओं का निर्मूलन होना ही तनावों से मुक्ति या तनाव प्रबंधन है।

---

[174] उत्तराध्ययनसूत्र – 4/5

[175] उत्तराध्ययनसूत्र – 6/5

[176] दशवैकालिकसूत्र – 2/5

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्मदर्शन में तनाव प्रबंधन

अध्याय - 6 जैनदर्शन में तनावों के निराकरण के उपाय

1. सम्यक्-दर्शन, ज्ञान और चारित्र एवं तनाव निराकरण
2. अपरिग्रह का सिद्धांत और तनावमुक्ति
3. अहिंसा का सिद्धांत और तनावमुक्ति
4. अनेकांत का सिद्धांत और तनावमुक्ति
5. इन्द्रिय विजय और तनावमुक्ति
6. कषाय विजय और तनावमुक्ति
7. लेश्या परिवर्तन और तनावमुक्ति
8. विपश्यना/प्रेक्षाध्यान से तनावमुक्ति
9. धर्म और तनावमुक्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–6

त्रिविध साधना मार्ग और तनाव प्रबंधन

जैनदर्शन मोक्ष की प्राप्ति के लिए त्रिविध साधना मार्ग प्रस्तुत करता है। यही त्रिविध साधना मार्ग तनावमुक्ति का मार्ग भी प्रस्तुत करता है। यह त्रिविध साधना मार्ग तनावमुक्ति का भी महत्वपूर्ण उपाय है। तत्त्वार्थसूत्र के प्रारम्भ में ही कहा गया है –"सम्यग्दर्शन, सम्यक्चारित्र, सम्यग्ज्ञान मोक्षमार्ग हैं।"[1] वस्तुतः मोक्ष तनावमुक्ति की अवस्था है क्योंकि आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है कि मोह और क्षोभ से रहित आत्मा की समत्वपूर्ण अवस्था ही मोक्ष है **(मोह खोह विहीणो अप्पणो समोमोक्खनिद्दिट्ठो)**। त्रिविध साधना मार्ग से मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है और मोक्ष ही तनावमुक्ति की अवस्था है, इससे यह भी सिद्ध होता है कि मोक्ष–मार्ग तनावमुक्ति का मार्ग है।

बौद्धदर्शन, गीतादर्शन और पाश्चात्यदर्शन में भी इस त्रिविध साधना–मार्ग के उल्लेख मिलते हैं। त्रिविध साधना–मार्ग के विधान सें जैन, बौद्ध, वैदिक परम्परायें तथा पाश्चात्य चिन्तक भी सहमत हैं।[2] यदि मोक्ष की प्राप्ति सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से सम्भव है, तो फिर तनावमुक्ति भी इस त्रिविध साधना मार्ग से ही मानना सम्भव होगा। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि दर्शन (सम्यक्श्रद्धान) के बिना ज्ञान नहीं होता और जिसमें ज्ञान नहीं है, उसका आचरण भी सम्यक् नहीं होता और सम्यक आचरण के अभाव में आसक्ति से मुक्ति भी सम्भव नहीं है और जो आसक्ति से मुक्त नहीं उसका निर्वाण भी नहीं होता है।[3] जैनदर्शन में अनुसार तनावयुक्त होने का मूल कारण रागात्मकता या आसक्ति है। अतः जब तक आसक्ति नहीं टूटेगी तब तक तनाव

---

[1] तत्त्वार्थसूत्र –9/9

[2] जैन,बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 13

[3] उत्तराध्ययनसूत्र –28/30

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

से मुक्ति भी संभव नहीं होगी और आसक्ति से मुक्त होने के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्–चारित्र की साधना आवश्यक है।

सम्यग्दर्शन और तनावमुक्ति –

सम्यग्दर्शन और तनावमुक्ति का सह–सम्बन्ध जानने से पूर्व हमें सम्यक्, दर्शन और सम्यग्दर्शन –इन तीन शब्दों का अर्थ समझना होगा। सामान्य रूप से सम्यक् शब्द यथार्थता या सत्यता का सूचक है। सम्यक् का अर्थ सही समझ है और सही समझ साधक जीवन के लिए आवश्यक है। वस्तु जैसी है वैसी मानना। साधक जीवन का मुख्य लक्ष्य आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानना या मोक्ष की प्राप्ति है और मोक्ष तनावमुक्ति की अवस्था है। जैन–विचारणा यह मानती है कि अनुचित साधन से प्राप्त किया गया लक्ष्य भी अनुचित ही होता है। तनावमुक्त अवस्था पाने के लिए अगर हम भौतिक पदार्थों का अर्थात् **'पर'** का सहारा लेंगे तो हम तनावमुक्त नहीं हो पायेंगे। तनाव का मुख्य कारण राग–द्वेष है और राग या द्वेष दोनों ही **'पर'** पदार्थों पर होता है। सम्यक् को सम्यक् से ही प्राप्त किया जा सकता है। असम्यक् से जो भी मिलता है वह भी असम्यक् ही होता है। व्यक्ति की यह मिथ्यादृष्टि (असम्यक्ता) ही है कि वह तनावमुक्त या मोक्ष की अवस्था पाने के लिए **'पर'** पदार्थ को अपनी साधना का साधन मान लेता है, अतः जैनदर्शन में तनावमुक्त अवस्था की प्राप्ति के लिए जिन साधनों का विधान किया गया, उनका सम्यक् होना आवश्यक माना गया। वस्तुतः ज्ञान, दर्शन, तथा चारित्र का नैतिक मूल्य उनके सम्यक् होने में ही है, तभी वे मुक्ति या निर्वाण के साधन बनते हैं। सम्यक् साधनों से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है, अतः तनावमुक्ति के लिए भी सम्यक् साधनों की अपेक्षा है। सम्यक् साधन ही हमें तनाव से मुक्ति दिला सकते हैं। यदि हमारे ज्ञान, दर्शन और चारित्र मिथ्या होते हैं, तो वे बन्धन का कारण बनते हैं। वस्तुतः तनावपूर्ण जीवन अर्थात् इच्छा और आकांक्षा से युक्त जीवन ही बन्धन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन का अर्थ –

सामान्यतया दर्शन शब्द का अर्थ 'देखना' है, लेकिन यहाँ दर्शन शब्द का अर्थ मात्र आँखों से देखना नहीं है। उसमें इन्द्रिय–बोध, मन–बोध और आत्म–बोध सभी सम्मिलित है। जीवादि पदार्थों के स्वरूप को देखना, जानना, श्रद्धा करना 'दर्शन' है।[4] उपर्युक्त बोध होने पर ही व्यक्ति इच्छा, आकांक्षा आदि तनाव के कारणों को समझेगा, तत्पश्चात् आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होगा और फिर एक दिन स्वयं को तनावमुक्त पाएगा।

सम्यक् दर्शन से तनावमुक्ति –

सम्यक् दर्शन का मूल अर्थ है –यथार्थ दृष्टिकोण, जो मात्र वीतराग पुरुष का ही हो सकता है।[5] वीतरागता की अवस्था ही मोक्ष की अवस्था है और मोक्ष की अवस्था ही तनावमुक्ति की अवस्था है। जो व्यक्ति राग और द्वेष से युक्त है, वह तनावग्रस्त है और तनावग्रस्त व्यक्ति का दृष्टिकोण भी तनावपूर्ण ही होगा, अर्थात् उसका दृष्टिकोण यथार्थ नहीं हो सकता है। यथार्थ दृष्टिकोण के अभाव में व्यक्ति का व्यवहार तथा साधना सम्यक् नहीं हो सकती, क्योंकि गलत दृष्टिकोण जीवन के व्यवहार और ज्ञान को सम्यक् नहीं बना सकता है और जहां व्यवहार और ज्ञान दोनों ही सम्यक् नहीं है, वहाँ तनावपूर्ण स्थिति बन जाती है। मिथ्यादृष्टि से व्यक्ति की आत्मा में राग–द्वेष की उपस्थिति होती है। अतः व्यक्ति को तनावमुक्त होने के लिए सर्वप्रथम अपने दृष्टिकोण को सम्यक् बनाना होगा। **'पर'** को **'पर'** और **'स्व'** को **'स्व'** मानना होगा और **'पर'** के प्रति ममत्व को समाप्त करना होगा। वस्तुतः जो व्यक्ति सम्यक् दृष्टिकोण से युक्त होता है वही तनावमुक्ति की अवस्था को या मोक्ष की अवस्था को पा सकता है। क्योंकि **'स्व'** और **'पर'** का भेद जानता है और **'पर'** पर ममत्व का आरोपण नहीं करता है। जो अयथार्थता को समझता है, जानता है और उसके

---

[4] अभिधानराजेन्द्रकोष, खण्ड–5, पृ. 2425

[5] जैन,बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, पृ. 49

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कारणों को तथा उससे होने वाले परिणाम जानता है, वही तनाव से मुक्ति को प्राप्त सकता है। अयथार्थता को अयथार्थ जानने वाला साधक यथार्थता को न जानते हुए भी सम्यग्दृष्टि ही है, क्योंकि वह असत्य को असत्य मानता है। वह व्यक्ति कभी भी असत्य का निराकरण कर सत्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा, जो मिथ्यादृष्टि है। डॉ. सागरमल जैन ने अपनी पुस्तक 'जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन' में स्पष्ट शब्दों में कहा है कि –"साधक के दृष्टिकोण की यथार्थता के लिए, दृष्टि का राग–द्वेष से पूर्ण विमुक्त होना आवश्यक नहीं है; मात्र इतना आवश्यक है कि व्यक्ति अयथार्थता को और उसके कारणों को जाने।"[6] किसी भी साधारण व्यक्ति के लिए पूर्णतया राग–द्वेष से मुक्त होना सम्भव नहीं है, फिर भी उसकी राग–द्वेषात्मक वृत्तियों में स्वाभाविक रूप से जब कमी होती है, तो वह स्वतः एक शांति का अनुभव करता है। इस स्वाभाविक परिवर्तन के कारण वह अयथार्थ को अयथार्थ मान लेता है एवं असत्य को असत्य समझकर सत्य की ओर अभिमुख होता है। इसके पश्चात् उसे यह भी ज्ञात हो जाता है कि उसका दृष्टिकोण दूषित है, अतः इसका परित्याग कर देना चाहिए। यद्यपि यहां सत्य तो प्राप्त नही होता, लेकिन असत्यता और उसके दुष्परिणामों का बोध हो जाता है। वह यह जान जाता है कि उसकी चेतना की तनावपूर्ण स्थिति का कारण क्या है ? परिणामस्वरूप उसमें तनावमुक्ति की अभीप्सा जाग्रत हो जाती है। यही तनावमुक्ति की अभीप्सा ही तनावमुक्ति की अवस्था तक पहुंचाती है। जैसे–जैसे वह तनावमुक्ति के पथ पर अग्रसर होता जाता है, ज्ञान और चारित्र की शुद्धता से पुनः तनाव के कारणों अर्थात् राग–द्वेषादि में क्रमशः कमी होती जाती है। इसके परिणामस्वरूप उसके दृष्टिकोण में यथार्थता या सम्यक्ता आ जाती है और यही सम्यक्ता तनावमुक्ति की अवस्था को प्राप्त करती है। **'आवश्यकनिर्युक्ति'**[7] में कहा गया है कि –"जल जैसे–जैसे स्वच्छ होता जाता है, त्यों–त्यों द्रष्टा उसमें प्रतिबिम्बित रूपों

---

[6] जैन,बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, भाग–1, पृ. 50

[7] आवश्यकनियुक्ति, 1163

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को स्पष्टतया देखने लगता है, उसी प्रकार अन्तर में ज्यों–ज्यों मलिनता समाप्त होती जाती है; तत्त्व–रूचि जाग्रत होती है, त्यों–त्यों तत्त्वज्ञान प्राप्त होता जाता है और उस तत्त्वज्ञान को आत्मसात कर मुक्ति को प्राप्त करता हैं। इसे जैन परिभाषा में प्रत्येकबुद्धो का (स्वतः ही सत्य को जानने का मार्ग) साधना–मार्ग कहते हैं, जो मोक्ष मंजिल पर पहुंचता है और यह मोक्ष मंजिल ही तनावमुक्ति की अवस्था है। सामान्य व्यक्ति के लिए स्वतः ही यथार्थता को जानना या सम्यक् दृष्टि होना सम्भव नहीं है। जब तक व्यक्ति सत्य को जानता नहीं है, वह सन्देहशील रहता है और सन्देह या संशय में होना भी तनाव ही है। संदेहशील या संशयात्मा व्यक्ति तनाव से मुक्त नहीं हो सकता। सत्य की स्वानुभूति का मार्ग कठिन है। सामान्य साधक के लिए दूसरा सरल मार्ग यह है कि जिन्होंने स्वानुभूति से सत्य को जाना है और स्वयं को तनावमुक्त बनाया है, उनकी अनुभूति ने जो भी सत्य का स्वरूप बताया है, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। यह आस्था या श्रद्धा की अवस्था है। आस्था और विश्वास ही अभय प्रदान कर हमें तनावमुक्त बना देता है।

सम्यक्त्व के पाँच अंग और तनाव –

सम्यक् दर्शन से मोक्ष की प्राप्ति होती है और मोक्ष की प्राप्ति अर्थात् तनावमुक्ति की अवस्था। तनाव से मुक्ति प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को सम्यक् दृष्टिकोण प्राप्त करना होगा और उसके लिए व्यक्ति को सम्यक्त्व के उन पाँचों अंगों को अपनाना होगा जिनसे सम्यग्दृष्टि की उपलब्धि होती है। जब तक साधक इन्हें अपना नहीं लेता है, तनावों से मुक्त नहीं हो सकता है। क्योंकि यही सम्यक्त्व मोक्ष की उपलब्धि कराता है। सम्यक्त्व के वे पांच अंग इस प्रकार हैं –

सम – सम्यक्त्व का पहला लक्षण है 'सम'। सामान्यतया 'सम्' शब्द के दो अर्थ हैं – पहले अर्थ में यह समानुभूति है, अर्थात् सभी प्राणियों को अपने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समान समझना। जहाँ राग होता है, वहाँ द्वेष भी होता है और जहाँ राग, द्वेष होते हैं, वहीं तनाव उत्पन्न होता है। राग, द्वेष ही व्यक्ति के समभाव को क्षीण करते हैं। ऐसा व्यक्ति ही प्राणियों की हिंसा करता है। हिंसा से तनाव उत्पन्न होता है। दूसरे यही समभाव 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्त की स्थापना करता है, जो अहिंसा का आधार है। अहिंसा ही सम्पूर्ण विश्व में सुख–शांति फैलाती है। हिंसा व्यक्ति के मन में भय पैदा कर देती है। व्यक्ति यही चिन्तन करता रहता है कि मुझे या मेरे परिवार को कोई नुकसान न पहुंचा सके। भय उसका मानसिक संतुलन बिगाड़कर उसे तनावग्रस्त बना देता है, उसके जीवन की शांति भंग कर देता है, फिर धीरे–धीरे अपने बचाव के लिए वह हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ भी करने लगता है। कहा जाता है कि एक गंदी मछली पूरे तालाब को गंदा कर देती है, उसी प्रकार हिंसात्मक व्यक्ति पूरे समाज को, देश को और पूरे विश्व को हिंसात्मक बना देता है। इस प्रकार व्यक्ति ही क्या पूरा विश्व ही इन हिंसात्मक प्रवृत्तियों से तनावग्रस्त हो जाता है। इस तनावपूर्ण स्थिति से तनावमुक्त अवस्था में जाने के लिए व्यक्ति को 'समभाव' में रहना होगा। सभी को एक समान समझना होगा। **बृहद्कल्पभाष्य** में कहा गया है कि –"जो तुम अपने लिए चाहते हो वही दूसरों के लिए भी चाहो तथा जो तुम अपने लिए नहीं चाहते हो, वह दूसरों के लिए भी न चाहो।"[8] इस उपदेश से यह सिद्ध होता है कि जो कोई भी व्यक्ति तनावपूर्ण स्थिति में नहीं रहना चाहता है, तो वह दूसरों के लिए भी भय का या अविश्वास का निमित्त न बने। जब व्यक्तियों में इस प्रकार से समभाव का विकास होगा, तो एक–दूसरे के प्रति विश्वास बढ़ेगा और भय समाप्त हो जाएगा। भय की शून्यता भी तनावमुक्ति की स्थिति होती है।

दूसरे अर्थ में सम् को चित्तवृत्ति का समत्व भी कहा जा सकता है, अर्थात् सुख–दुःख, हानि–लाभ एवं अनुकूल–प्रतिकूल दोनों स्थितियों में समभाव रखना, चित्त विचलित नहीं होने देना। चित्त की चंचलता मानसिक संतुलन को

---

[8] बृहद्कल्पभाष्य – 4584

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अस्त–व्यस्त कर उसे तनावग्रस्त बना देती है। मानसिक संतुलन भंग होने से व्यक्ति तनाव की स्थिति में आ जात है। दूसरे के निमित्त से जब कोई सुख मिलता है, तो व्यक्ति प्रसन्न–चित्त हो जाता है, किन्तु काल हमेशा एक–सा नही रहता है, कालान्तर में वही जब निमित्त से दुःख पाता है तो उसका चित्त शोकग्रस्त हो जाता है और व्यक्ति विलाप करने लगता है। विलाप तनाव की स्थिति को प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार लाभ–हानि में भी व्यक्ति सम नहीं रह पाता है। अनुकूल स्थिति में भी वह शांत, तो प्रतिकूल स्थिति में व्याकुल हो जाता है। अतः तनाव–मुक्ति के लिए समत्व की साधना आवश्यक है। व्यक्ति का मन इतना चंचल होता है कि एक सुख आया नहीं कि उसमें दूसरे सुख की कामना जाग्रत हो जाती है और उस कामना की पूर्ति हेतु वह व्यक्ति फिर तनावग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार मानव किसी भी स्थिति में समत्व में नहीं रह पाता है। वह मन की चंचलता के कारण तनावग्रस्त ही रहता है। अतः तनाव–मुक्त जीवन जीने के लिए समभाव में रहने की साधना करनी होगी। चित्तवृत्तियों को संतुलित करना होगा। सुख में न प्रसन्न होना होगा और न दुःख में विचलित होना होगा। हर परिस्थिति का सामना समभाव से करना ही 'समत्व' है। 'समत्व' की साधना ही तनावमुक्ति का साधन है।

प्राकृत भाषा के 'सम' शब्द के संस्कृत भाषा में तीन रूप होते हैं – 1.सम्, 2. शम, 3. श्रम। संस्कृत 'शम' के रूप में इसका अर्थ होता है – शांत करना अर्थात् कषायाग्नि या वासनाओं को शांत करना। कुछ व्यक्तियों में कषायादि या वासनाओं की इतनी तीव्रता रहती है कि उनको उन्हें शांत करने के लिए वह, दुष्कर्म करने से भी पीछे नहीं हटता। वासनाएँ स्वादिष्ट भोजन के समान हैं। एक बार भोज्य पदार्थों के सेवन करने से अल्प समय के लिए भोजन करने की वासना समाप्त होगी, किन्तु फिर उसी स्वादिष्ट पदार्थ को खाने के लिए मन आतुर हो जावेगा। कामभोग की वासना भी एक बार भोग करने से शांत नहीं होती है, अपितु पुनः–पुनः भोगने की इच्छा जाग्रत करती है और जहाँ शांति नहीं वहाँ तनाव होता ही है। इसलिए हमें वासनाओं को शांत करने के लिए उनका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शमन करना ही होगा। उत्तराध्ययनसूत्र में भी कहा गया है कि –"काम–भोग क्षणभर को सुख और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं।"[9] दुःख तनावपूर्ण स्थिति को जन्म देता है. अतः वासनाओं का शमन करके ही तनावों से मुक्ति पाई जा सकती है। इस प्रकार शमन भी तनावमुक्ति का अनुपम साधन है, फिर भी यह समझना आवश्यक है कि यह शमन, दमन से भिन्न है।

संस्कृत के तीसरे रूप 'श्रम' के आधार पर इसका अर्थ होगा –सम्यक् प्रयास या पुरुषार्थ। अनुकूल–प्रतिकूल परिस्थितियों में समत्व बनाए रखना सम्यक् प्रयास है। इसी प्रकार तपादि के माध्यम से इन्द्रियों को नियंत्रित करने का अभ्यास भी सम्यक् पुरुषार्थ है। जब समत्व होगा तो चित्त–वृत्तियाँ विचलित नहीं होंगी और चित्त–वृत्तियों का यह संतुलन तनाव की अनुभूति को कम करता है। भोग इन्द्रियों के द्वारा ही होता है, इन्द्रियां मांग करती रहती है और हम उन्हें पूर्ण करने के लिए आतुर रहते हैं। अतः इन्द्रियों को नियंत्रण में रखने का प्रयत्न ही सम्यक् पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ से इन्द्रियों की चंचलता पूरी तरह समाप्त हो जाती है तथा व्यक्ति स्वयं को तनावमुक्त अनुभव करता है।

संवेग – संवेग शब्द का शाब्दिक विश्लेषण करने पर उसका निम्न अर्थ प्राप्त होता है – सम्+वेग। सम = सम्यक्, उचित। वेग = गति अर्थात् सम्यक् गति। सम्यक् गति मोक्ष गति तक पहुंचाती है, मोक्ष तनावमुक्ति की ही अवस्था है। दूसरे अर्थ में क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रवृत्तियों को सम करना संवेग है। जहाँ राग होता है, वहाँ ये चार कषाय भी आ जाते हैं। संवेग से इन कषायों पर विजय पा सकते हैं। क्रोधादि आवेग को समभाव से सहन कर कोई प्रतिक्रिया नहीं करना, संवेग है और समभाव की क्रिया तनावमुक्ति की अवस्था पाने की क्रिया है।

निर्वेद – निर्वेद शब्द का अर्थ है – उदासीनता, वैराग्य या अनासक्ति। तनावमुक्ति के लिए सांसारिक प्रवृत्तियों के प्रति उदासीनता का भाव रखना

---

[9] खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा – उत्तराध्ययन –14 / 13

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक है, इसके अभाव में तनावों से मुक्त होना सम्भव नहीं होता है। हम जानते हैं कि तनावमुक्ति का मार्ग ही साधना का मार्ग है। जो बाधाएँ साधना मार्ग में आती हैं, वे ही तनावमुक्ति के मार्ग में भी हैं। जब संसार के प्रति रूचि होगी, तो उसमें आसक्ति भी होगी। आसक्ति राग का ही रूप है और राग तनावों को उत्पन्न करने का मूल कारण है। सांसारिक प्रवृत्तियों के प्रति उदासीन का भाव रखना, तनावमुक्ति का मार्ग है। वैराग्य एवं उदासीनता के इस भाव को हम निम्न उदाहरण से समझ सकते हैं – मान लीजिए कि आपको किसी ने गाली दी या अपशब्द कहें, तो उन शब्दों का आपके मन पर असर होना स्वाभाविक है, परन्तु बाहर कोई अभिव्यक्ति नहीं करना, यह तो संवेग है, जबकि अपशब्द का आपके चित्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ना 'निर्वेद' है। जब किसी भी बात का चित्त पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा तो चाहे वह घटना सुख देने वाली हो या दुःख, तो चित्त में विचलन नहीं होगा। चित्त का विचलित या क्षुभित न होना ही तनावमुक्त होना है।

अनुकम्पा – इस शब्द का शाब्दिक अर्थ इस प्रकार है – अनु +कम्प, अनु का अर्थ है –तदनुसार, कम्प का अर्थ है –कम्पित होना, अर्थात् किसी के अनुसार कम्पित होना। दूसरे शब्दों में, दूसरे व्यक्ति के दुःख से पीड़ित होने पर उसी के अनुसार अनुभूति होना। यहाँ इसका अर्थ समझना आवश्यक है। इसका अर्थ है दूसरे व्यक्ति के दुःख को, अपना दुःख समझना। दूसरे के सुख–दुःख को अपना सुख–दुःख समझना ही अनुकम्पा है।[10] जिस व्यक्ति ने 'सम' की साधना कर ली है या निर्वेद भाव जिसके चित्त में हो वह व्यक्ति तनावमुक्त होता है, उसे हम ज्ञानी कह सकते हैं और ज्ञानी दूसरों के दुःख को अपना दुःख समझकर भी तनावमुक्त रह सकता है। दुःख ही तनाव का कारण है और अज्ञानता से दुःख प्राप्त होता है। साथ ही अज्ञानतावश ही व्यक्ति 'पर' पर 'स्व' को आरोपण कर जीवन जीता है। जो व्यक्ति ज्ञानी होता है, वह दूसरे को

---

[10] जैन,बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों को तुलनात्मक अध्ययन – पृ. 57

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मवत् समझकर अनुकम्पा का भाव तो रखता है, किन्तु ममता से मुक्त होने के कारण, दूसरे के दुःख से तनावग्रस्त नहीं होते हैं। समुचित मार्गदर्शन से उसके दुःख या तनाव के कारणों को समझाकर उनसे मुक्ति का मार्ग बता देता है।

आस्तिक्य – आस्तिक्य या आस्तिकता का शाब्दिक अर्थ है –आस्था। जहाँ आस्था होती है, वहीं पारस्परिक विश्वास होता है और जहाँ विश्वास होता है, वहाँ निर्भयता होती है और जहाँ निर्भयता होती है, वहाँ तनाव नहीं होता, क्योंकि आज तनावग्रस्तता का मूल कारण एक–दूसरे के प्रति अनास्था या भय ही है।

सम्यक्दर्शन के आठ दर्शनचार और तनाव –

उत्तराध्ययनसूत्र में सम्यग्दर्शन की साधना के आठ अंगों का वर्णन है। ये आठ अंग इस प्रकार है –निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़वृत्ति, उपबृंहण, स्थिरीकरण, वात्सल्य और प्रभावना[11] इन आठ अंगों में कुछ अंग तनाव मुक्ति के साधन हैं।

निःशंकता – संशयशीलता को अभाव ही निःशंकता है। जिन–प्रणीत तत्त्वदर्शन में शंका नहीं करना, उसे यथार्थ एवं सत्य मानना ही निःशंकता है।[12] शंका दीमक की तरह होती है, जिसे साफ न किया जाए तो वह अंदर ही अंदर हमारी सोचने–समझने की क्षमता को खत्म कर देती है। मानसिक संतुलन पूरी तरह अस्त–व्यस्त हो जाता है। शंका व्यक्ति को किसी पर भी विश्वास नहीं करने देती और विश्वास कर भी ले तो वह भी संशयात्मक विश्वास होता है, जो व्यक्ति के हर रिश्ते को चाहे वह पारिवारिक हो, सामाजिक हो या धार्मिक हो, उसे तोड़ देती है। साथ ही गलत धारणाएँ उत्पन्न करती है, ये गलत धारणाएँ

---

[11] उत्तराध्ययनसूत्र – 28/31

[12] आचारांगसूत्र – 1/5/5/163

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तनाव उत्पन्न करती हैं। अविश्वास भय को उत्पन्न करता है। तनावमुक्ति के लिए भय से मुक्त होना आवश्यक है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साध्य, साधन और साधना–पथ इन तीनों पर अविचल श्रद्धा होनी चाहिए। जिस साधक की मनःस्थिति संशयात्मक होगी वह संसार में परिभ्रमण करता रहेगा तथा अपने लक्ष्य को नहीं पा सकेगा। "जिस साधक की मनःस्थिति संशय के हिंडोले में झूल रही हो, वह इस संसार में झूलता रहता है।"[13] जो साधक थोड़ा सा भी संशय करेगा वह इस साधना मार्ग में अपने लक्ष्य से च्युत हो जाएगा। मूलाचार में निःशंकता को निर्भयता कहा गया है।[14] तनावमुक्ति के लिए निर्भयता आवश्यक है। भयपूर्ण जीवन तनावपूर्ण जीवन है। अतः निःशंकता के गुण के द्वारा ही तनाव प्रबन्धन सम्भव है।

निष्कांक्षता – **'पर'** की आकांक्षा नहीं करना निष्कांक्षता है। आकांक्षा का अर्थ है, इच्छा एवं निष्कांक्षा का अर्थ है इच्छा का अभाव। इच्छा तनाव उत्पन्न करती है। "स्वकीय आनन्दमय परमात्मस्वरूप में निष्ठावान रहना और किसी भी पर--वस्तु की आकांक्षा या इच्छा नहीं करना निष्कांक्षता है।"[15] व्यक्ति की यह मानसिकता होती है, कि वह भौतिक वैभव की उपलब्धि में सुख खोजता रहता है, किन्तु भौतिक वैभव की यह इच्छा आकांक्षा को जन्म देती है। इच्छा या आकांक्षा तनाव पैदा करने का साधन है। साधनात्मक जीवन में भौतिक वैभव, ऐहिक तथा परलौकिक सुख को लक्ष्य बनाना ही जैनदर्शन के अनुसार 'कांक्षा' है।[16] भौतिक सुखों के पीछे भागने वाला साधक अपने लक्ष्य तनावमुक्ति को प्राप्त नही कर पाते हैं, साथ ही प्रलोभन और चमत्कार में स्वयं को उलझा लेता है। जब परिणाम नही मिलता तो तनाव की स्थिति में आ जाता है।

---

[13] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – पृ. 61

[14] मूलाचार – 2/52–53

[15] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – पृ. 61

[16] रत्नकरण्डकश्रावकाचार – 12

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अमूढ़दृष्टि – मूढ़ता या अज्ञान भी तनावों को जन्म देता है। मूढ़ता का अर्थ है, अज्ञानता। "हेय और उपादेय, योग्य और अयोग्य के मध्य निर्णायक क्षमता का अभाव ही मूढ़ता है।"[17] जब व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं होगा कि क्या त्यागने योग्य है और क्या ग्रहण करने योग्य है, क्या सही है और क्या गलत है, तो ऐसी मूढ़ता की स्थिति में व्यक्ति तनावयुक्त रहता है। अमूढ़ व्यक्ति ही तनावमुक्ति के सही मार्ग को समझ सकता है। साथ ही स्वयं को और दूसरों को भी तनावमुक्त जीवन का मार्ग दिखा सकता है।

उपसंहार – सम्यग्दर्शन जीवन जीने के प्रति एक दृष्टिकोण है।[18] हमारे जीवन की सार्थकता और जीवन के लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति भी इसी जीवन दृष्टिकोण के आधार पर ही होती है। मोक्ष ही तनावमुक्ति की अवस्था है। जैसी हमारी दृष्टि होगी, वैसा ही हमारा जीवन होगा। क्योंकि जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही जीवन जीने की शैली होती है। हमारी जीवन जीने की शैली ही हमारे जीवन का निर्माण करती है। सम्यक् दृष्टिकोण तनावमुक्त करेगा और मिथ्या दृष्टिकोण तनावग्रस्त बनाएगा। मिथ्यादृष्टि का जीवन दुःख, पीड़ा और तनावों से युक्त होता है। यदि व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् नहीं होगा, तो वह कभी भी तनावमुक्त स्थिति को नहीं पा सकेगा। उसका जीवन सुख और शान्तिमय नहीं होगा। जिस प्रकार परिवार में बालक अपने योगक्षेम की सम्पूर्ण की जिम्मेदारी माता–पिता पर छोड़कर चिन्ताओं से मुक्त एवं तनावों से रहित सुख और शान्तिपूर्ण जीवन जीता है, उसी प्रकार साधक व्यक्ति भी अपने योगक्षेम की चिन्ता से मुक्त होकर निश्चिन्त, तनावरहित, शान्त और सुखद जीवन जी सकता है। इस प्रकार तनावरहित, शान्त और समत्वपूर्ण जीवन जीने के लिए सम्यग्दर्शन एवं आस्थावान होना आवश्यक है। इससे वह दृष्टि मिलती है,

---

[17] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – पृ. 61

[18] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – पृ. 61

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिसके आधार पर हम अपने ज्ञान को भी सही दिशा में नियोजित कर उसे यथार्थ बना सकते हैं।[19]

सम्यक्ज्ञान और तनाव प्रबंधन –

सम्यक्ज्ञान ही तनाव प्रबन्धन का आधार है। सम्यक्ज्ञान से ही तनावमुक्ति संभव है। तनावमुक्ति ही आनन्द की अवस्था है। अज्ञान दशा में विवेकशक्ति का अभाव होता है और विवेकहीन व्यक्ति को उचित और अनुचित का अन्तर ज्ञात नहीं होता। प्रबन्धन की पहली शर्त यही है कि व्यक्ति अपने अज्ञान अथवा अयथार्थ ज्ञान का निराकरण कर सम्यक् ज्ञान को प्राप्त करे। क्योंकि सम्यग्ज्ञान तथा आत्म–अनात्म या स्व–पर के विवेक द्वारा **'पर'** के प्रति ममत्व के आरोपण से बचता है, क्योंकि **'पर'** पदार्थों पर ममत्व का आरोपण ही व्यक्ति के तनावों का मुख्य कारण होता है। जो अपना नहीं है उसे अपना मानकर उसके निमित्त से व्यक्ति तनावों से ग्रस्त होता है, जो व्यक्ति को तत्त्वों के ज्ञान के माध्यम से स्व–परस्वरूप का भान कराता है, हेय और उपादेय का ज्ञान कराता है, वही सम्यग्ज्ञान है। सम्यक्–ज्ञान की साधना ही व्यक्ति के चित्त का निरोध करती है और चित्त का निरोध कर तनावमुक्ति की दशा में ले जाने का प्रयत्न करती है। मूलाचार में भी कहा गया है –"जिससे तत्त्व का ज्ञान होता है, चित्त का निरोध होता है तथा आत्मा विशुद्ध होती है, उसी को जिनशासन में सम्यग्ज्ञान कहा गया है।"[20] जिससे जीव राग–विमुख होता है, श्रेय में अनुरक्त होता है और जिससे मैत्री भाव प्रभावित होता है, उसको ही जिनशासन में सम्यग्ज्ञान कहा गया है।"[21] ऐसा ज्ञान ही तनावमुक्ति का साधन है। आचार्य यशोविजयजी ज्ञानसार में लिखते हैं कि –"मोक्ष अर्थात् तनावमुक्ति के हेतुभूत एक पद का ज्ञान भी श्रेष्ठ है, जबकि तनावमुक्ति में अनुपयोगी विस्तृत ज्ञान भी

---

[19] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन – पृ. 62

[20] मूलाचार – 5/85

[21] मूलाचार – 5/86

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यर्थ है।"[22] मोक्ष अथवा तनावमुक्ति के लिए आध्यात्मिक ज्ञान ही श्रेष्ठ है। आध्यात्मिक ज्ञान के अभाव में व्यक्ति तनावपूर्ण जीवन जीता है। उसे इस बात का भान भी नहीं होता कि उसके तनाव के कारण आखिरकार हैं क्या ? आध्यात्मिक ज्ञान ही सम्यक् ज्ञान है और इस ज्ञान के होने पर व्यक्ति स्वयं ही तनावों के कारणों को जान लेता है, समझता है और उनका निराकरण भी करता है। सम्यक्ज्ञान से ही आत्म–बोध होता है, स्व का साक्षात्कार होता है। जो विकल्प या विचारशून्यता की अवस्था है, विकल्पशून्यता की अवस्था ही तनावमुक्ति की अवस्था है। ज्ञान की यह निर्विकल्प अवस्था ही मोक्ष है और मोक्ष पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है। हम यह भी कह सकते हैं कि पूर्णज्ञान या केवलज्ञान तनावमुक्ति की अवस्था है। साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि तनावमुक्ति होने पर ही मोक्ष होता है। आचार्य कुन्दकुन्द कहते हैं कि –"जो सर्वनयों (विचार–विकल्पों) से शून्य है, वही आत्मा है और वही केवलज्ञान और केवलदर्शन से युक्त कहा जाता है।"[23] केवलज्ञान वाला मोक्ष को प्राप्त करता है। आत्मस्वरूप का चिन्तन करना एवं आत्मा, अनात्मा का विवेक कर राग आदि तनावों के कारणों से बचने के लिए व्यक्ति का ज्ञान सम्यक् होना आवश्यक है। 'भक्तपरिज्ञा' में कहा गया है –"जैसे धागा पिरोयी हुई सुई कचरे में गिर जाने पर भी खोती नहीं है, वैसे ही ससूत्र अर्थात् शास्त्रज्ञान से युक्त जीव संसार में पड़कर भी नष्ट नहीं होता।"[24] ठीक इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान प्राप्त किया हुआ व्यक्ति कभी भी अपने तनावमुक्ति के लक्ष्य से च्युत नहीं होता और तनावमुक्ति पाकर ही रहता है।

ज्ञान ही व्यक्ति को आत्म–अनात्म का विवेक सिखाता है। जो **'स्व'** एवं **'पर'** के स्वरूप को जान लेता है, **स्व** को जानकर **'पर'** पदार्थों के प्रति ममत्व भाव नहीं रखता है, वही मुक्त होता है। यहाँ हम यह भी कह सकते हैं, कि

---

[22] ज्ञानसार – 5/2

[23] समयसार – 144

[24] भक्त परिज्ञा – 86

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसको यह भी ज्ञात हो जाता है कि उसका यह जो शरीर है, वह भी पुद्गल रूपी **'पर'** पदार्थ है। जहाँ **'पर'** से ममत्व हटा, **स्व** तथा **पर** का भेद–ज्ञान हुआ, वहाँ सभी तनाव शांत हो जाते हैं। मात्र शांति का अनुभव होता है। ऐसा अनुभव ही तनावमुक्ति की अवस्था है।

सम्यग्चारित्र और तनाव –

सम्यक तनाव प्रबंधन के लिए सम्यग्दर्शन एवं विवेकज्ञान के साथ–साथ सम्यक आचरण होना अतिआवश्यक है। दर्शन मात्र एक अनुभूति है, उस अनुभूति की समीक्षा करना ज्ञान है, किन्तु सम्यग्ज्ञान होने पर भी उसका अनुसरण या पालन करना आवश्यक है। सम्यग्ज्ञान के द्वारा प्राप्त योग्य विधि का प्रयोग करना ही सम्यग्चारित्र है। डॉ. सागरमल जैन ने अपनी शोध कृति में लिखा है –"दर्शन एक परिकल्पना (हाइपोथेसिस) है, ज्ञान प्रयोग–विधि है और चारित्र प्रयोग है।"[25] वस्तुतः सम्यक्चारित्र तनावमुक्ति की दिशा में उठाया गया चरण है। सिर्फ सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान अकेला कुछ नहीं कर सकता। उसके लिए सम्यग्चारित्र होना अतिआवश्यक है। तीनों के संयोग से ही व्यक्ति तनावों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है। ज्ञान का सार आचरण है और आचरण का सार निर्वाण या मोक्ष अर्थात् पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था की उपलब्धि है।[26] ज्ञान के द्वारा हम तनावों के कारणों, जैसे – इच्छाएँ, अपेक्षाएँ, वासनाएँ, कषाय और राग–द्वेष की वृत्तियों, जो आत्मा को तनावयुक्त बनाती है, के स्वरूप को जानते हैं, साथ ही इन तनावों के कारणों के निराकरण के उपायों को भी जानते हैं। हम यह जानते हैं कि त्यागने योग्य क्या है और ग्रहण करने योग्य क्या है। तनावों के कारणों एवं उनके निराकरण के उपायों को जानकर उन पर विश्वास रखकर एवं तनावमुक्ति के लिए प्रयत्न करना सम्यक्चारित्र है। दूसरे शब्दों में

---

[25] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, – पृ. 84

[26] आचारांग निर्युक्ति – 244

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तनावों के निराकरण का प्रयत्न करना ही सम्यक्चारित्र है। वस्तुतः तनावमुक्त शुद्ध आत्मा, जिसका हमें साक्षात्कार करना है, वह हमारे भीतर ही है। जिस प्रकार बीज में यह सामर्थ्य होती है कि वह उसके ऊपर के आवरणको तोड़कर स्वयं को वृक्ष के रूप में विकसित कर सकता है, उसी प्रकार आत्मा में यह शक्ति है कि वह वासनाओं, कषायों और राग-द्वेष की वृत्तियों से उत्पन्न तनावों के निराकरण कर तनावमुक्त आत्मदशा का साक्षात्कार कर सकता है। सम्यक्चारित्र तनावों के कारणों अर्थात् वासनाओं, कषायों और राग-द्वेष की वृत्तियों के निराकरण करने में है। वह स्व सृजित आवरणों को तोड़ने का प्रयास है।

सम्यक् चारित्र का स्वरूप –

सम्यक्चारित्र का अर्थ है चित्त या आत्मा की वासनाओं की मलिनता और अस्थिरता को समाप्त करना।[27] जिस प्रकार पानी में हवा से धूल-मिट्टी मिल करके पानी को गंदा कर देती है, उसी प्रकार हमारी आत्मा में कषाय रूपी कचरा मिलकर उसे अशुद्ध कर देता है। आत्मा की शुद्धि की जो प्रक्रिया है, वही सम्यक्चारित्र है। चित्त अथवा आत्मा की वासनाजन्य मलिनता और अस्थिरता ही तनावों को उत्पन्न करती है। तनाव आत्मा की वैभाविक दशा है। निश्चयनय की दृष्टि से तो आत्मा स्वाभाविक रूप से शुद्ध है। समयसार में कहा गया है कि –"तत्त्व दृष्टि से आत्मा शुद्ध है।"[28] भगवान् बुद्ध भी कहते हैं –"भिक्षुओं, यह चित्त स्वाभाविक रूप से शुद्ध है।"[29] गीता में भी आत्मा को अविकारी कहा है।[30] फिर भी विषयवासना या कषाय रूपी कचरा भी इसी में है।

उपर्युक्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि आत्मा का स्वभाव तो शुद्ध ही है, किन्तु बाह्य तत्त्वों के कारण आत्मा विभावदशा के प्राप्त करती है। आत्मा का

---

[27] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, – पृ. 84

[28] समयसार – 151

[29] अंगुत्तर निकाय – 1/5/9

[30] गीता – 2/25

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुद्ध स्वभाव ही आत्मा की तनावमुक्त अवस्था है। कषायें, वासनाएँ चित्त में विकलता एवं चंचलता उत्पन्न कर देती हैं, जिसके परिणामस्वरूप आत्मा अशुद्ध या विभाव दशा में चली जाती है। यही विभाव दशा आत्मा की तनावयुक्त दशा है। इस तनावयुक्त दशा से तनावमुक्त अवस्था में आने की प्रक्रिया ही सम्यग्चारित्र है। सम्यग्चारित्र तनाव प्रबंधन का साधन है। स्वभावतः नीचे की ओर बहने वाला पानी दबाव से उपर चढ़ने लगता है, इसी प्रकार आत्मा स्वभाव से शुद्ध होते हुए भी बाह्यमलों, कषाय आदि के दबाव से अशुद्ध बन जाती है। वस्तुतः तनाव बाह्य निमित्तों से आत्मा के जुड़ाव के कारण होता है। बाह्य विषयों के प्रति आसक्ति समाप्त होने पर आत्मा तनावमुक्त हो जाती है। वह अपने स्वाभाविक रूप को प्राप्त करता है। सम्यक्चारित्र का कार्य बाह्य पदार्थों के प्रति आत्मा की आसक्ति को समाप्त कर उसे स्वाभाविक दशा अर्थात् वीतरागदशा में ले जाना है।

चारित्र के प्रकार – तनाव उत्पन्न करने वाली प्रवृत्तियों से विमुख होकर तनावमुक्ति की दिशा में किया जाने वाला प्रयत्न चारित्र है। उस प्रयत्न से आत्मा के परिणामों में वासनाजन्य विकल्प शांत होते हैं एवं उसमें विशुद्धि आती है। विशुद्धि या तनावमुक्त की इस प्रक्रिया (चारित्र) के पांच प्रकार माने गए हैं – 1. सामायिक चारित्र, 2. छेदोपस्थापनीय चारित्र, 3. परिहारविशुद्धि चारित्र, 4. सूक्ष्मसम्पराय चारित्र, और 5. यथाख्यात चारित्र।

सामायिक चारित्र –

सामायिक का अर्थ है समभाव की प्राप्ति एवं विषय भावों का निवारण। अशान्ति का मूल कारण चित्तवृत्ति की विषमता है और इसी का परिणाम है कलह अर्थात् तनाव। जब तक मन में राग–द्वेष, क्रोध, ईर्ष्या, अहंकार आदि विषमभावों की भयंकर ज्वालाएँ जलती रहेगी, तनावमुक्ति सम्भव नहीं होगी तनावमुक्ति संभव नहीं होगी। तनावमुक्ति हेतु सामायिक समभाव की साधना आवश्यक है। चारित्र की अनुपासना समभाव की साधना का एक प्रयत्न है। सामायिक चारित्र का साधक यह प्रयत्न करता है कि वह अनुकूल और प्रतिकूल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिस्थितियों में मन को विचलित नहीं करे। शत्रु व मित्र के प्रति समभाव रखे। सामायिक चारित्र को दूसरे शब्दों में सावध योग क्रिया विरति कहा गया है, अर्थात् पापक्रियाओं अथवा तनाव उत्पन्न करने वाली क्रियाओं का त्याग करना। जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों के तुलनात्मक अध्ययन में डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं कि –"वासनाओं, कषायों एवं राग–द्वेष की वृत्तियों से निवृत्ति तथा समभाव की प्राप्ति सामायिक चारित्र है। सामायिक चारित्र का ग्रहण तनाव प्रबधन में एक सहायक तत्त्व है।

छेदोपस्थापनीय चारित्र –

सामायिक चारित्र में सामान्य रूप से सावद्य योग का त्याग किया जाता है। छेदोपस्थानीय चारित्र में पांच महाव्रतों का ग्रहण होता है। व्यक्ति तनावों से ग्रसित तब होता है जब उसके हृदय में अशान्ति हो। यह अशान्ति तब आती है, जब वह हिंसक, असत्यवादी, चौर्य कर्म करनेवाला, कामभोगाभिलाषी और वस्तु का संग्रह करने वाला हो। यही पांच मुख्य रूप से व्यक्ति के मन को चंचल बनाते हैं और राग–द्वेष भाव को उत्पन्न करते हैं और राग–द्वेष तनावयुक्त जीवन का मूल कारण हैं। श्रमण जीवन में राग–द्वेष के लिए कोई स्थान नहीं होता, इसलिए तनाव उत्पन्न करने वाला प्राणातिपातादि व्रतों का जीवन भर के लिए त्याग किया जाता है। इसी को छेदोपस्थानीय चारित्र कहते हैं। सामान्यतः इसे बड़ी दीक्षा भी कहा जाता है।

परिहारविशुद्धि चारित्र –

परिहारविशुद्धि का अर्थ है– गण या शिष्य–परिवार का त्याग करके आत्म विशुद्धि की विशिष्ट साधना करना। जिस आचरण के द्वारा कर्मों का अथवा दोषों का परिहार होकर निर्जरा के द्वारा विशुद्धि हो वह परिहारविशुद्धि चारित्र है। कर्मों के बंध का हेतु है, कषाय और कषाय ही तनावपूर्ण जीवन का कारण है। परिहारविशुद्धि चारित्र में कषायों का परिहार कर आत्मविशुद्धि की जाती है। आत्म विशुद्धि की अवस्था ही तनावमुक्ति की अवस्था है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मसम्पराय चारित्र –

जिस अवस्था में कषायवृत्तियाँ क्षीण होकर किंचित रूप में ही अवशिष्ट रही हों, वह सूक्ष्म सम्पराय चारित्र है। कषाय प्रवृत्तियाँ जितनी तीव्र होती हैं, व्यक्ति उतना ही अधिक अशांत होता है। कषाय की तीव्रता जितनी होगी उतना तनाव बढ़ेगा और जहाँ कषाय का सूक्ष्म अंश ही शेष हो वहाँ तनाव का भी सूक्ष्म अंश ही रहेगा, जिसे समाप्त होने में समय नहीं लगता। यह चारित्र दसवें गुणस्थान में मात्र सूक्ष्मलोभ अर्थात् मात्र देह भाव की अवस्था में होता है। तनाव की इस अंशमात्र स्थिति में क्रोध, मान और माया पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। जिस अवस्था में इन तीनों कषायों का उपशम व क्षय हो जाता है, केवल सूक्ष्म लोभ का अंश विद्यमान रहता है, उस अवस्था को सूक्ष्मसम्पराय चारित्र या सूक्ष्म तनावयुक्त अवस्था कह सकते हैं।

यथाख्यात चारित्र –

यथाख्यात चारित्र की अवस्था को पूर्णतः तनावमुक्त अवस्था कहा जा सकता है। इस अवस्था में मोह तद्जन्य कषाय और नोकषाय समग्रतः उपशांत व क्षीण हो जाते हैं। यथाख्यात चारित्र में आत्मा शुद्ध व निर्मल होती है और आत्मविशुद्धि की सदशा ही तनावमुक्त दशा है।

डॉ. सागरमल जैन ने वासनाओं के क्षय, उपशम और क्षयोपशम के आधार पर चारित्र के भी तीन भेद किए हैं –1. क्षायिक, 2. औपशमिक और 3. क्षयोपशमिक

1. **क्षायिक** – क्षायिक चारित्र हमारे आत्म स्वभाव से प्रतिफलित होता है। तनाव की शून्यता से आत्मा में जो विशुद्धता और निर्मलता होती है, वह क्षायिक चारित्र है। तनाव उत्पन्न होने का मूल कारण है राग–द्वेष एवं मोह। मोहनीय कर्म के सम्पूर्णतः क्षय होने पर ही क्षायिक चारित्र की उपलब्धि होती है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि समग्रतः तनावमुक्त अवस्था होने पर जिसकी उपलब्धि होती है, वह क्षायिक चारित्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

है। एक बार पूर्णतः तनावमुक्त होने पर वापस व्यक्ति तनावयुक्त नहीं होता क्योंकि इस अवस्था में तनाव के कारणों का अभाव होता है।

2. **औपशमिक चारित्र** – औपशमिक भाव को उपशम भी कहते हैं। कर्मों के विद्यमान रहते हुए भी उनके फल देने की शक्ति को कुछ समय के लिए दबा देना उपशम है। तनाव के कारणों के होने पर भी उससे तनावग्रस्त नहीं होना उपशम है। वासनाओं और कषायों का दमन कर देने पर जो स्थिति होती है, वह औपशमिक भाव है। इनके कारण जो तनाव उत्पन्न होता है उसे कुछ काल के लिए दबा दिया जाता है, परन्तु वे दमित वासनाएँ कालान्तर में सजग होकर पुनः तनाव उत्पन्न कर देती हैं। इस प्रकार सम्पूर्णतः तनावमुक्ति व आत्मशुद्धि की अवस्था की प्राप्ति नहीं होती। जैसे पानी में फिटकरी डालकर गंदगी को कुछ समय के लिए दबा दिया जाता है, किन्तु हल–चल होने पर गंदगी पुनः ऊपर आ जाती है। इसी प्रकार उपशम का काल समाप्त होते ही चित्त पुनः अशांत हो जाता है और पुनः व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है।

3. **क्षायोपशमिक** – क्षयोपशमिक शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है –'क्षय' और 'उपशम'। इस चारित्र में कुछ तनाव के कारणों का निराकरण अर्थात् क्षय हो जाता है और कुछ कारणों की सत्ता या उपस्थिति बनी रहती है। केवल उनके विपाक या उदय को कुछ समय के लिए रोक दिया जाता है, यही क्षायोपशमिक चारित्र है।

एक अन्य दृष्टि से जैनदर्शन के तीन मूलभूत सिद्धान्त हैं – अपरिग्रह, अहिंसा और अनेकांत। हिंसा का कारण परिग्रह है, अतः यहाँ मैंने प्रथम स्थान अपरिग्रह को दिया है।

अपरिग्रह और तनाव मुक्ति –

पदार्थ असीम हैं और उन्हें प्राप्त करने की इच्छाएँ या आकांक्षाएँ भी आकाश के समान असीम है। असीम को प्राप्त करने की चाह ही तनाव है और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संचयवृत्ति को सीमित करने का प्रयत्न व्यक्ति को तनावमुक्त करता है। अतः अपरिग्रह तनावमुक्त करता है एवं परिग्रह तनावयुक्त अवस्था का सूचक होता है।

परिग्रह का अर्थ – परिग्रह शब्द परि + ग्रहण से मिलकर बना है। 'परि' शब्द का अर्थ विपुल मात्रा में और ग्रहण का अर्थ है प्राप्त करना, संग्रह करना आदि। अतः परिग्रह का अर्थ है, विपुल मात्रा में वस्तुओं का संग्रह करना। दूसरे शब्दों में कहें तो पदार्थों का असीमित संग्रह परिग्रह है। जैनदर्शन के अनुसार, लोभ मोहनीय कर्म के उदय से संसार के कारणभूत सचित्ताचित्त् पदार्थों को आसक्तिपूर्वक ग्रहण करने की अभिलाषारूप क्रिया को परिग्रह कहा है।[31] उपासकदशांगसूत्र[32] में व्रती गृहस्थ के परिग्रहपरिमाण व्रत को इच्छापरिमाण व्रत भी कहा गया है।

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि पदार्थों के संचय करने की वृत्ति, आसक्तिपूर्वक संग्रह या संग्रह करने की इच्छा या अभिलाषा, लोभ की प्रवृत्ति आदि परिग्रह है और यही संचय करने की वृत्ति, आसक्ति, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ या अभिलाषा आदि नियमतः तनाव उत्पत्ति के प्रमुख कारण हैं।

परिग्रह संचय की वृत्ति है, जहाँ संचय की वृत्ति है, वहाँ इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और अपेक्षाएँ हैं। अन्य शब्दों में कहें तो जो अनुकूल प्रतीत होता है, जिसके प्रति पुनः–पुनः भोग की वृत्ति होती है, उसी के लिए संचय किया जाता है और जहाँ संचय होता है, वहाँ राग है और राग तनाव का हेतु है। 'पातजंल योगसूत्र'[33] में अपरिग्रह को पाँचवें यम के रूप में स्वीकार किया गया है। कहा है कि –परिग्रह का मूल कारण ममत्त्व, आसक्ति या तृष्णा है। जैनदर्शन के अनुसार

---

[31] लोभोदयात्प्रधान भवकारणाभिएवंड्ग्पूर्विका सचित्तेतर द्रव्योपादानक्रियैव संज्ञायतेऽनयेति परिग्रह संज्ञा– प्रज्ञापनासूत्र – 8/725

[32] उपसकदशांग – 1/45

[33] अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। – पातंजलयोगसूत्र –2/30

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यही ममत्वबुद्धि, आसक्ति या तृष्णा दुःख का या कर्मबंध (तनाव) का कारण है। आचार्य कुन्दकुन्द ने इच्छा या आसक्तिपूर्वक ग्रहण किए आहार को भी परिग्रह कहा है।[34]

इच्छाएँ तभी होती है जब उस इच्छित वस्तु के प्रति राग या आसक्ति हो। दूसरे शब्दों में कहें, तो यदि हमें तनावमुक्त होना है तो रागमुक्त होना होगा। इस प्रकार जहाँ भी राग या आसक्ति होगी, वहाँ उसके परिग्रहण और संग्रहण की वृत्ति होगी। अतः यह सुस्पष्ट है कि जहाँ परिग्रह है, वहाँ तनाव है ही। मनोवैज्ञानिकों ने भी यह स्पष्ट किया है कि संग्रह बुद्धि तनाव को जन्म देती है। अतः परिग्रह से मुक्ति या तनावों से मुक्ति तभी सम्भव होगी, जब व्यक्ति की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ कम से कम होंगी। सूत्रकृतांगचूर्णि में कहा गया है कि परिग्रह भी हिंसा ही है, क्योंकि हिंसा के बिना परिग्रह करना असंभव है।[35] संग्रह के द्वारा दूसरों के हितों का हनन होता है। परिग्रह वृत्ति में अर्जन है, समर्पण नहीं और जहाँ पर भी अर्जन की वृत्ति है, वहाँ न केवल व्यक्ति स्वयं अपितु उसके परिजन भी तनावग्रस्त बनते हैं। जिस प्रकार हिंसा का सम्बन्ध तनाव से है, उसी तरह से परिग्रह का सम्बन्ध भी तनाव से है। अतः अहिंसा और अपरिग्रह की स्थापना तभी सम्भव हो सकती है। जब व्यक्ति तनावमुक्त बने।

जैनदर्शन में कहा गया है कि परिग्रह दो प्रकार का होता है – बाह्य परिग्रह और आभ्यांतर परिग्रह। वस्तुओं का संचय बाह्य परिग्रह में आता है, और राग, द्वेष, कषाय आदि आभ्यांतर परिग्रह में आते हैं।

आचार्य हरिभद्र[36] ने बाह्य परिग्रह के निम्न नौ भेद कहे हैं –

1. क्षेत्र – खेत या खुली भूमि आदि।

---

[34] अपरिग्गहो अविच्छो भणिदो णाणी य णिच्छदि असणं
अपरिम्महो दु असणस्स जाणगो तेण सो होदि।। – समयसार, गाथा–212

[35] आरंभपूर्वका परिग्रहः। – सूत्रकृतांगचूर्णि –1/2/2

[36] आवश्यक हरिभद्रीयवृत्ति, अ. 6

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. वास्तु – मकान, दुकान आदि।
3. हिरण्य – चांदी के सिक्के, आभूषण आदि।
4. स्वर्ण – स्वर्णमुद्रा या स्वर्ण निर्मित वस्तुएँ आदि।
5. धन – हीरे, पन्ने, माणक, मोती आदि।
6. धान्य – गेहूँ, चावल, मूंग आदि।
7. द्विपद – नौकर--नौकरानी, दास–दासी आदि।
8. चतुष्पद – गाय, भैंस आदि चार पैर वाले पशु।
9. कुप्य – घर–गृहस्थी का सामान

आभ्यांतर परिग्रह के 14 भेद बताए गए हैं – मिथ्यात्व, राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और वेद (काम--वासना)।

परिग्रह की सत्ता ममत्ववृत्ति आदि पर निर्भर है। ममत्ववृत्ति, आसक्ति या मूर्च्छाभाव ही परिग्रह है। आचारांग में कहा गया है[37] –

"जे ममाइ मइं जहाई, से चयइ ममाइयं,
से हु दिट्ठपहे मुणि जस्स नत्थि ममाइयं"

जो व्यक्ति ममत्वभाव का परित्याग करता है, वह स्वीकृत परिग्रह का त्याग कर सकता है। ममत्वबुद्धि बाह्य वस्तुओं के प्रति व्यक्ति की ग्रहणबुद्धि रूप है। ग्रहण बुद्धि कहीं न कहीं इच्छा या ममत्व रूप ही होती है और जहाँ इच्छा है, वहाँ तनाव है। अतः परिग्रह के साथ तनाव जुड़ा हुआ है। यदि तनावों से मुक्त होना है तो परिग्रह से मुक्त होना होगा। यहाँ हमें वस्तु के उपयोग और परिग्रह का अन्तर समझ लेना आवश्यक है।

उपयोग – किसी वस्तु का भोग व उपभोग करना उपयोग है।

---

[37] आचारांगसूत्र प्रथम श्रुतस्कंध – 2/6/99

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रह – संचय बुद्धि का आधार 'पर' होता है। जहाँ संचय बुद्धि होती है, वहाँ कभी–कभी व्यक्ति उसके उपयोग से भी वंचित रहता है। जैसे कृपण व्यक्ति धन संचय तो करता है, पर उसका उपयोग नहीं कर पाता है।

"कण संचय किड़ी करे,
ते तितर चुग जाए
जो कृपण धन संचिये
यूँ ही जाए विलाय"

आचार्य भिक्षु के इस कथन का मूल आधार आचारांगसूत्र है। उसमे कहा गया है कि –व्यक्ति धन का संचय करता है, लेकिन वह संचित धन या तो परिजनों के द्वारा बाँट लिया जाता है अथवा राजा के द्वारा उसका अपहरण कर लिया जाता है अथवा चोर चोरी करके ले जाता है अथवा अग्नि आदि से नष्ट हो जाता है।[38] इसलिए कहा गया है कि जो व्यक्ति धन का संचय करता है, वह उसका उपभोग भी नहीं कर पाता है। धन के संचय के साथ रक्षण की वृत्ति काम करती है और जहाँ रक्षण की वृत्ति होती है, वहाँ अंतस में भय होता है और जहाँ भय है, वहाँ तनाव है ही और इसी प्रकार संचित धन के नष्ट हो जाने का भय, छीन लिए जाने का भय, तनाव ही है। जो व्यक्ति ममत्व वृत्ति रखता है, वह निश्चय ही उसके संरक्षण एवं उसको विनाश से बचाने आदि के लिए सदैव चिन्तित रहता है और जहाँ चिन्ता है, वहाँ तनाव है। इसलिए तनावों से मुक्ति अपरिग्रह से ही सम्भव है।

परिग्रह वृत्ति से बचने के लिए कुछ सूत्र निम्न हैं –

1. भगवती आराधना में कहा गया है कि जब तक राग (इच्छा) मोह और लोभ (मूर्च्छा/आसक्ति) मन में उत्पन्न होती रहती है, तब तक ही आत्मा

---

[38] आचारांगसूत्र –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

में बाह्य परिग्रहण करने की बुद्धि होती है।"[39] इसलिए सर्वप्रथम हमें अपनी संग्रहेच्छा और आसक्तिवृत्ति का त्याग करना होगा।

2. परिग्रह के मूल में कामना होती है और दशवैकालिक में कहा गया है। –"कामे कामहि कमियं खु दुक्खं"[40] कामना ही दुःख का (तनाव का) कारण है, अतः हमें अपनी कामनाओं, इच्छाओं और आकांक्षाओं को अल्पतम करना होगा या उनका निरसन करना होगा।

3. "त्याग एवं सर्वेषां मोक्ष साधनमुत्तमम्"[41] जितने भी मोक्ष के साधन हैं, उनमें त्याग को सर्वोत्तम साधन माना है। इसलिए अपने संचय किए हुए धन या वस्तुओं में से दान देने की अर्थात् त्याग की भावना होनी चाहिए।

4. जितना उपयोग में आए उतना ही अपने समीप रखें। इससे संचय किए गए धन के रक्षण से मुक्त हो जाएंगे। दूसरे शब्दों में कहें तो धन के नष्ट या विनाश के भय से मुक्त हो जाएगें।

अपरिग्रह तनावमुक्ति का साधन है, अतः तनावमुक्ति के लिए परिग्रह वृत्ति का त्याग आवश्यक है।

अहिंसा और तनावमुक्ति –

दशवैकालिकसूत्र[42] के पहले अध्याय की पहली गाथा है –'धम्मो मंगलमुक्किट्ठ अहिंसा संजमो तवो' अर्थात् अहिंसा संयम और तप रूप धर्म ही सर्वश्रेष्ठ मंगल है। जैनदर्शन में अहिंसा को सर्वोपरि सिद्धान्त माना गया है।

व्रत चाहे श्रमण का हो या श्रावक का पहला स्थान अहिंसा को ही दिया गया है। अहिंसा ही जैनधर्म का सार है। अहिंसा का सिद्धांत सिर्फ व्यक्ति या

---

[39] भगवती आराधना –19/12

[40] दशवैकालिकसूत्र –

[41] अणु से पूर्ण की यात्रा – पृ. 151

[42] दशवैकालिकसूत्र – 1/1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समाज के लिए नहीं, अपितु पूरे विश्व को तनावमुक्त रखने के लिए है। जहाँ एक ओर हिंसा ने विश्व को अशांत बना रखा है, वहीं दूसरी ओर अहिंसा अपनाने से विश्व–शांति होती है। प्राचीनकाल ही से अहिंसा का सिद्धांत विश्व को शांति प्रदान करता रहा है। जब अंग्रेजों ने भारत देश पर कब्जा किया तो महात्मा गाँधी ने अहिंसा व सत्य के शस्त्र से देश को आजाद करवाया था।

आज के युग में हर समस्या का समाधान हिंसा में ही ढूंढा जाता है। किन्तु विश्व में जैसे–जैसे हिंसा बढ़ती जा रही है, तनावपूर्ण स्थिति और भी विकट होती जा रही है। आज तनावमुक्ति के लिए अहिंसा ही एक ऐसा शस्त्र है, जो बिना किसी तनाव या गहरी चोट के विश्व में शांति प्रदान कर सकता है।

अहिंसा का अर्थ –

सरल शब्दों में कहें तो हिंसा नहीं करना अहिंसा है। प्रायः यह समझा जाता है कि किसी की हत्या नही करना अहिंसा है। किसी जीव के प्राणों का घात नहीं करना अहिंसा है। किसी व्यक्ति को चोट पहुँचाना हिंसा है, किन्तु अहिंसा का अर्थ इससे कहीं अधिक व्यापक है। गांधीजी ने कहा है – "अहिंसा वह स्थूल वस्तु नहीं है, जो आज हमारी दृष्टि के सामने है। किसी को न मारना इतना तो है ही, कुविचार मात्र भी हिंसा है। उतावली हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, जगत के लिए जो आवश्यक वस्तु है उस पर कब्जा करना भी हिंसा है।"[43] उपर्युक्त कार्य नही करना अहिंसा है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि व्यक्ति में प्रेम, सद्भावना, सेवा, दया, करूणा, नैतिकता और आत्मीयता का गुण होना और उसी के अनुरूप व्यवहार करना अहिंसा है। प्रेम, सद्भावना, सेवा, दया, करूणा, नैतिकता आदि गुण व्यक्ति में होते हैं, अर्थात् ये व्यक्ति के मानवीय गुण हैं। व्यक्ति के मानवीय गुण ही उसका मानसिक संतुलन बनाए रखते हैं। विश्वशांति बनाए रखने के लिए व्यक्ति को

---

[43] मंगल प्रभात, जीवन धर्म : अहिंसा, भगवानदास केला, पृ. 11

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मानसिक शांति की आवश्यकता है। आचार्य महाप्रज्ञजी ने भी यही सूत्र दिया है। सुधरे व्यक्ति से समाज, राष्ट्र स्वयं सुधरेगा। उन्होंने विश्वशांति का मूल मंत्र बताते हुए लिखा है – "व्यक्ति–व्यक्ति में सामूहिक (समता) चेतना को जगाना ही विश्वशांति का मूलमंत्र है।"[44]

व्यक्ति की चेतना को जगाने से तात्पर्य है स्व हिंसा से बचना। हिंसा दो प्रकार की होती है, पहली **'स्व'** की हिंसा और दूसरी **'पर'** की हिंसा। सामान्यतः लोग अहिंसा का तात्पर्य दूसरों की हिंसा नहीं करना, दूसरों को दुःख नहीं देना यही मानते हैं। किन्तु जैन दार्शनिकों का मानना है कि –**'स्व'** की हिंसा के बिना **'पर'** की हिंसा नहीं होती है। व्यक्ति दूसरों की हिंसा तभी कर पाता है, जब वह अपने शुद्ध स्वरूप की हिंसा करता है। स्वभाव से विभाव में जाना अर्थात् राग–द्वेष कषायादि से युक्त होना **स्व** की हिंसा है। **स्व** की हिंसा के बिना **पर** की हिंसा सम्भव नही होती है। इसका तात्पर्य यही है कि दूसरों को दुःख देने की प्रवृत्ति राग–द्वेष के बिना नहीं होती और राग–द्वेष कषायों से युक्त होना **स्व** के शुद्ध स्वरूप की हिंसा है। प्रश्नव्याकरणसूत्र में इससे सम्बन्धित कुछ निम्न सूत्र मिलते हैं –**"कुद्धा हणंति, लुद्धा हणंति, मुद्धा हणंति,"** अर्थात् कुछ लोग क्रोध से हिंसा करते हैं, कुछ लोभ से हिंसा करते हैं और कुछ लोग आसक्ति से हिंसा करते हैं।[45]

पाणवहो चंडो, रूद्दो, सुद्दो (क्षुद्र), अणारियो, निग्घिणो, निसंसो, महब्भयो ...

अर्थात् प्राणवध (हिंसा) चण्ड है, रौद्र है, क्षुद्र है, अनार्य है, करूणारहित है, क्रूर है और महाभंयकर है।[46] जहाँ तक तनावों को प्रश्न है, उनका जन्म राग–द्वेष कषायों से होता है, अतः तनाव भी एक प्रकार से स्वस्वरूप की हिंसा है, क्योंकि तनाव भी विभाव दशा है। विभाव दशा में व्यक्ति जो कुछ करेगा, वह सब हिंसा के अंतर्गत ही आता है। दूसरे शब्दों में कहें तो बाह्य हिंसा या दूसरों

---

[44] विश्वशांति और अहिंसा –आचार्य महाप्रज्ञ

[45] प्रश्नव्याकरणसूत्र –1/1

[46] वही – 1/1

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

की हिंसा तनावपूर्ण स्थिति में ही होती है और यह तनावपूर्ण स्थिति स्वयं अपने आप में हिंसा ही है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि तनावों का मूल कारण तो स्व स्वरूप की हिंसा है। इस प्रकार हिंसा का सिद्धांत तनाव उत्पत्ति का मूलभूत कारण है, जबकि अहिंसा का सिद्धांत तनावमुक्ति का कारण है। जैनदर्शन के अनुसार तनावों से निवृत्ति ही अहिंसा है और तनावों की प्रवृत्ति ही हिंसा है। अतः तनाव मुक्ति की दिशा में आगे बढ़ने के लिए व्यक्ति को हिंसा का परित्याग करना होगा, क्योंकि बिना अहिंसा के तनावमुक्ति सम्भव नहीं है।

आचारांगसूत्र में कहा गया है कि 'आतुरा परितावेंति'[47], अर्थात् आतुर व्यक्ति अर्थात् तनावग्रस्त व्यक्ति ही दूसरों को कष्ट देता है। दूसरे शब्दों में कहें तो हिंसा का जन्म तनावपूर्ण स्थिति में होता है। जहाँ हिंसा है, वहाँ तनाव है। आचारांगसूत्र में दुःख (तनाव) का कारण हिंसा को ही बताया है। लिखा है –"आरंभजं दुक्खमिणं"[48] यह सब दुःख आरम्भज है, हिंसा में से उत्पन्न होता है। "कम्ममूलं च जं छणं"[49] अर्थात् कर्म का मूल अर्थात् हिंसा है। जो कर्म का मूल है, वही तनाव का भी हेतु है। कर्मबन्ध की जो स्थिति है, वही तनावयुक्त अवस्था की भी है। यह आरम्भ (हिंसा) ही वस्तुतः ग्रन्थ बन्धन है, यही मोह है, यही मार–मृत्यु है और यही नरक है।[50] अतः तनावमुक्ति अहिंसा की स्थिति में ही संभव है। अहिंसक चेतना ही तनावमुक्त होती है, हिंसक चेतना के मूल में कहीं ना कहीं भय रहा हुआ है और भय एक तनाव है। उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि –यदि तुम अभय चाहते हों तो दूसरों को भी अभय प्रदान करो। भय हिंसा है और अभय अहिंसा है। भययुक्त चित्त ही हिंसा को जन्म देता है। व्यक्ति ने भय के कारण ही हिंसक शस्त्र बनाए हैं भय के कारण ही असत्य

---

[47] आचारांगसूत्र –1/1/6

[48] वही –1/3/1

[49] वही – 1/3/1

[50] एस खलु गंथे एस खलु मोहे, एस खलु मारे एस खलु णारए। – आचारांगसूत्र–1/1/2

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कहता है। भय के कारण ही माया भी करता है तो भय के कारण ही क्रोधी व दुःखी भी होता है। अतः भय से मुक्त होने पर भी हिंसा से मुक्त हो सकते हैं। कहा गया है कि –दूसरों को भय से मुक्त करो क्योंकि भय से हिंसा जन्म लेती है और अभय से अहिंसा।

अनेकांत का सिद्धांत –

"जेण विणा लोगस्य ववहारो सव्वहा ण निव्वडइ।
तस भुवणेक्कागुरूणो, णमो अणेगंतवायस्स।।[51]

सन्मति–तर्क प्रकरण –3/70

अर्थात् जिसके बिना लोक–व्यवहार का निर्वहन भी सर्वथा सम्भव नहीं है या जिसके बिना जगत् का व्यवहार नहीं चलता, उस अनेकांतवाद को मैं नमस्कार करता हूँ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अनेकांतवाद एक व्यावहारिक दर्शन है। यह संसार व्यवहार से चलता है और व्यक्ति का व्यवहार ही व्यक्ति की मानसिकता का या तो विकास करता है या उसे संकुचित कर देता है। व्यक्ति के व्यवहार से उसमें तनाव की उत्पत्ति होती है और तनाव से ही व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन होता है। आज राष्ट्र हो या प्रांत, समाज हो या परिवार, व्यष्टि हो या समष्टि सभी में पारस्परिक मतभेद दिखाई देता है। प्रत्येक व्यक्ति में विचारों और हितों में अन्तर होने के कारण सभी तथ्यों को अपनी–अपनी दृष्टि से व्याख्यायित करते हैं। आज व्यक्ति की दृष्टि एकपक्षीय और संकुचित हो गई है। यही एकांत दृष्टि विश्वशांति को भंग कर रही है। हर एक व्यक्ति अपने जीवन में सुख–शांति लाने के लिए अपने हितों को साधने के लिए दूसरों के हितों का अपलाप कर उनके जीवन में अशांति फैलाता है। ऐसा करके न तो वह स्वयं शांत रहता है और न ही दूसरे को शांत रहने देता है। आज शांति स्थापना के

---

[51] सन्मति–तर्क–प्रकरण – 3/70

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम पर युद्ध लड़े जाते हैं। विवादों को मिटाने के लिए विनाश के प्रयत्न किए जा रहे हैं, किन्तु जहाँ परस्पर संघर्ष या युद्ध हो, नष्ट करने की प्रवृत्ति हो, वहां शांति या तनावमुक्तता कैसे हो सकती है ? इसी कारण आज हर व्यक्ति पर दबाव है, वह तनावग्रस्त है। यदि आज प्रत्येक व्यक्ति संकुचित एकांत दृष्टि को त्यागकर उसके स्थान पर अनेकांत दृष्टि को अपना ले तो परस्पर कुछ समाधान या समझौता किया जा सकता है। यदि पारस्परिक हितों में समाधान खोजा जाता है तो किसी भी व्यक्ति को तनाव में रहने की आवश्यकता नहीं रहेगी। अनेकता में एकता और एकत्व में अनेकत्व को देखना अनेकांत दृष्टि है। कहने का तात्पर्य यही है कि एक वस्तु में अनेक गुण–धर्म होते है, उसके सभी गुणधर्मों को स्वीकार करना अनेकांतवाद है।

अनेकांतवाद का स्वरूप व अर्थ –

प्राचीन समय से ही अनेकांत को जैनदर्शन का मुख्य सिद्धांत माना गया है। यद्यपि मूल आगमों में तो अनेकान्तवाद की विशेष चर्चा नहीं है, किन्तु भगवतीसूत्र में गौतम के द्वारा पूछे गए कुछ प्रश्नों के भगवान् महावीर ने जो उत्तर दिए हैं वे अनेकांतवाद की दृष्टि से ही दिए गए हैं।[52] केवल जैनों के भगवतीसूत्र में ही नहीं, अपितु प्राचीनतम वेदों, उपनिषदों में भी इस अनेकांत दृष्टि के उल्लेख उपलब्ध हैं, जिनके प्रमाण आगे दिए जाएंगे।

अनेकांतवाद का मूल प्रयोजन सत्य के उसके विभिन्न आयामों में देखने एवं समझने का प्रयत्न है। जैनदर्शन में वस्तु या सत् को अनन्तधर्मात्मक एवं अनेकान्तिक माना गया है। वस्तु की इस अनंतधर्मात्मकता एवं अनैकान्तिकता को स्वीकार करना ही अनेकांतवाद है।

---

[52] भगवतीसूत्र – 7/3/273

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेकांतवाद को हम तीन आधारों पर समझ सकते हैं – प्रथम, प्रत्येक वस्तु या सत् में अनेक गुणधर्म हैं। दूसरे – प्रत्येक वस्तु में विरोधी गुणधर्म भी होते हैं। तीसरे –वस्तु की अनेकांतिकता।

वस्तुतत्त्व की अनन्तधर्मात्मकता को हम कई उदाहरणों से समझ सकते हैं। जैसे –सोने को एक अंगूठी का आकार दिया जाए तो वह अंगूठी कहलाती है, किन्तु उसमें अंगूठी के साथ–साथ सोने की होने का भी गुण विद्यमान रहता है। एक ही व्यक्ति किसी का पिता, तो किसी का पति होता है। एक ही व्यक्ति में चाचा, मामा, भाई, भतीजे आदि अनेक रिश्ते सम्भव है। व्यक्ति के ये सभी रिश्ते अपनी–अपनी अपेक्षा से सही हैं, उसमें से किसी एक का भी निषेध नहीं किया जा सकता है। इसी तथ्य का समाधान करते हुए आचार्य महाप्रज्ञजी लिखते हैं कि –"मनुष्य जब राग–भावना से प्रेरित होकर किसी वस्तु को देखता है, तब वह वस्तु उसे दूसरे रूप में दीखती है और जब वह उसी वस्तु को द्वेष–भावना से प्रेरित होकर देखता है तब वह दूसरे रूप में दीखती है।"[53] वस्तु एक है पर राग–द्वेष के कारण रूप बदल जाता है। दोनो ही रूप सही हैं। यही अनेकांतवाद की अनन्तगुणात्मक दृष्टि है। उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुतत्त्व अनन्तधर्मात्मक या बहुआयामी है, अतः उसके प्रत्येक पक्ष की सम्भावनाओं को स्वीकार करना आवश्यक है और यह बात एक सर्वांगीण दृष्टि से ही सम्भव है। यह सर्वांगीण या व्यापक दृष्टि ही तनाव प्रबन्धन की सफलता का मूल सूत्र है। तनाव प्रबन्धन या तनावमुक्ति के लिए भी इस दृष्टि का विकास आवश्यक है।

दूसरे स्वरूप में अनेकांतवाद परस्पर विरोधी विचारधाराओं के समन्वय का प्रयास करता है। डॉ. सागरमलजी जैन का कहना है कि –"वस्तुतत्त्व की अनन्तधर्मात्मकता में उसकी बहुआयामिता और उसकी बहुआयामिता में उसकी अनन्तधर्मात्मकता सन्निहित है। यह एक सत्य है कि वस्तु में न केवल विभिन्न

---

[53] अनेकांत है तीसरा नेत्र – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 20

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणधर्मों की प्रतीति होती है, अपितु उसमें अनेक विरोधी धर्मयुगल भी पाये जाते हैं"[54] आचार्य महाप्रज्ञजी ने अनेकान्त का एक सूत्र सह–प्रतिपक्ष दिया है।[55] बृहदारण्यकोपनिषद में भी परस्पर विरोधी गुणधर्मों की उपस्थिति के संकेत मिलते हैं। उसमें ऋषि कहता है कि 'वह स्थूल भी नहीं है और सूक्ष्म भी नहीं है।'[56] तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि –'वह परम सत्ता मूर्त–अमूर्त, वाच्य–अवाच्य, विज्ञान (चेतन)–अविज्ञान (जड़), सत्–असत् रूप है।'[57]

प्रत्येक वस्तु में विरोधी गुण होते हैं। आज के युग में देखा जाए तो विश्व के तनावयुक्त होने का एक कारण विरोधाभास ही है। एक ही पदार्थ में नाना प्रकार की विरोधी धारणाएँ होती हैं और यही विरोधी धारणाएँ द्वन्द्व की स्थिति को उत्पन्न करती है। सत्य के एक पक्ष को देखने से व्यक्ति उसके प्रतिपक्ष का विरोध कर तनाव उत्पन्न करता है। विवाद विरोध से ही उत्पन्न होता है और जहाँ विवाद है, वहाँ अशांति व तनावयुक्त माहौल होता है। कोई भी व्यक्ति एक पक्ष को स्वीकार करता है, तो उसके प्रतिपक्ष का केवल अस्वीकार ही नहीं करता, अपितु उसका विरोध कर विवाद करने को तैयार हो जाता है। ऐसी स्थिति में अनेकांतवाद परस्पर विरोधी अवधारणाओं के मध्य समन्वय स्थापित करता है। अनेकान्त विरोधी के अस्तित्व को स्वीकृत करने के साथ–साथ प्रतिपक्ष को भी स्वीकार करता है। अगर जीवन में सुख–शांति चाहिए तो यह जरूरी है, कि हमें पक्ष–प्रतिपक्ष दोनों को हमेशा स्वीकार करना होगा, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ में विरोधी गुण विद्यमान है। जैसे– हमारे शरीर में पिनियल और पिच्यूटरी – ये दोनों ग्रन्थियाँ ज्ञान के विकास की ग्रन्थियाँ हैं तो गोनाड्स काम–विकास की ग्रन्थि है। दोनों विरोधी बातें हमारे शरीर की संरचना में समाई हुई हैं। व्यक्ति को दोनों तत्त्वों को स्वीकार करना होगा। विरोधी युगल नहीं

---

[54] अनेकांतवाद, स्याद्वाद और सप्तभंगी : सिद्धान्त और व्यवहार, डॉ. सागरमल जैन, पृ. viii

[55] अनेकांत है तीसरा नेत्र – आचार्य महाप्रज्ञजी, पृ. 12

[56] बृहदारण्यकोपनिषद् – 3/8/8

[57] तैत्तिरीयोपनिषद् – 2/6

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होगा तो जीवन भी समाप्त हो जाएगा, क्योंकि जीवन है तो मृत्यु भी है। ऊँचा है तो नीचा भी है, बन्धन है तो मुक्ति के अस्तित्व को भी स्वीकार करना पड़ेगा। अनेकांत के तीसरे स्वरूप में वस्तुतत्त्व की अनेकांतिकता को स्वीकार करने का कथन मिलता है। एक ही वस्तु में रहे हुए अनन्त गुणों में से समय–समय पर कुछ गुणधर्म प्रकट होते हैं और कुछ गौण रहते हैं, जैसे कच्चे आम में खट्टापन व्यक्त रहता है और मीठापन गौण होता है। कालान्तर में मीठापन प्रमुख हो जाता है और खट्टापन गौण हो जाता है। इसी प्रकार एक बालक में उत्तम बुद्धि लब्धि होने पर भी समझ अविकसित रहती है, कालान्तर में वह विकसित हो जाती है। इसका अर्थ यह हुआ कि व्यक्ति में विकास की अनन्त सम्भावनाएँ हैं, उन्हीं अविकसित सम्भावनाओं को विकसित करना, यही प्रबंधन की उपयोगिता है। साथ ही अनेकांतवाद यह भी मानता है कि वस्तु में परस्पर विरोधी धर्म–युगल एक साथ पाए जाते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि व्यक्ति में तनावग्रस्त होने और तनावमुक्त होने की सम्भावनाएँ हैं। अतः तनावप्रबन्धन की दृष्टि से जैनदर्शन का मानना है कि व्यक्ति को तनावग्रस्त होने की अपेक्षा तनावमुक्ति की दिशा में प्रयत्न करना चाहिए।

तत्त्वार्थसूत्र में 'उत्पादव्ययध्रौव्यात्मकं सत्' कहकर वस्तु के अनेकान्तिक स्वरूप को स्पष्ट किया गया है।[58] एक वस्तु उत्पन्न होती है, वही नष्ट भी होती है और वही ध्रौव्य भी होती है। वस्तु की पर्याय बदलती है पर द्रव्य वही होता है। उदाहरण – सोने की अंगूठी का गलाकर उसकी चूड़ी बनाई जा सकती है, उसका आकार बदला जा सकता है, पर सोने के परमाणु तो वही होते हैं। कहने का तात्पर्य यही है कि हम वस्तुतत्त्व या सत् के प्रत्येक पक्ष को, उसकी अनेकान्तिकता को या अनन्तधर्मात्मकता को स्वीकार करें।

प्रत्येक व्यक्ति, समाज, देश तथा विश्व में शांति स्थापित करने में अनेकान्त शांतिदूत के समान है। हमें तनावमुक्ति के लिए अनेकान्त के महत्त्व

---

[58] तत्त्वार्थसूत्र – 5/29, उमास्वाति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को समझना होगा कि यह किस प्रकार हर क्षेत्र में विवादों के मध्य एक समन्वय स्थापित करता है।

अनेकान्तवाद और तनावमुक्ति –

शांतिपूर्ण जीवन जीने के लिए आवश्यक है कि व्यक्ति सामंजस्य को अपने जीवन में उतारे। जीवन के विविध आयामों में समायोजन स्थापित करे। विविध पक्षों में सम्यक् समायोजन ही अनेकांतवाद है और यही तनावप्रबंधन की प्रक्रिया भी है। अनेकांत एक समग्र एवं समायोजन पूर्ण जीवनदृष्टि है। इस अनेकांत दृष्टि का उपयोग अति प्राचीनकाल से होता आ रहा है। जैन साहित्य में आचारांग अत्यन्त प्राचीन ग्रंथ है। इसमें कहा गया है कि –"जे आसवा ते परिस्सवा, जे परिस्सवा तो आसवा"[59], अर्थात् जो आस्रव (बंधन) के कारण हैं, वे ही निर्जरा (मुक्ति) के कारण भी बन सकते हैं और जो निर्जरा (मुक्ति) के कारण हैं, वे ही आस्रव (बंधन) के कारण भी बन सकते हैं। महावीर का कथन उसी अनेकान्त दृष्टि का परिचायक है। तनाव प्रबन्धन की दृष्टि से हम इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जो तनाव के हेतु हैं, वे ही तनावमुक्ति के हेतु बन जाते हैं और जो तनावमुक्ति के हेतु हैं वे ही तनाव के कारण बन जाते हैं। जैसे सम्पत्ति की प्राप्ति हमें तनावमुक्त भी करती है और तनावग्रस्त भी बनाती है। भगवतीसूत्र में जब भगवान् महावीर से पूछा गया कि –सोना अच्छा है या जागना ? तो उन्होंने कहा –"पापियों का सोना अच्छा है और धार्मिकों का जागना अच्छा है।"[60] इस प्रकार अनेकांतवाद सापेक्षिक दृष्टि से विरोधों को समाप्त करने का एक माध्यम है।

दैनिक जीवन में तनाव प्रबंधन के लिए अनेकांतवाद के व्यवहारिक पक्ष को अपनाना होगा। अनेकांत के इस व्यवहारिक पक्ष को सर्वप्रथम

---

[59] आचारांग –

[60] भगवतीसूत्र –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सिद्धसेनदिवाकर ने उजागर किया था। उन्होंने कहा था कि –"संसार के एकमात्र गुरु उस अनेकांतवाद को नमस्कार है, जिसके बिना संसार का व्यवहार भी असम्भव है।"[61] वास्तव में अगर देखा जाए तो व्यवहार जगत् में अनेकांत ही विरोधों के समाहार का सिद्धांत है। उसके बिना जगत् का व्यवहार नहीं चल सकता। अगर व्यवहार जगत् में अनेकांतिक सोच न अपनाया जाए तो विरोधों को समाहार ही सम्भव नहीं होगा। परिवार हो या समाज, देश हो या विदेश या सम्पूर्ण विश्व में यदि अनेकांतवाद को व्यवहार क्षेत्र में नहीं अपनाया गया तो परिवार ही क्या सम्पूर्ण विश्व तनावग्रस्त बन जाएगा। मानव जाति आपस में ही युद्ध कर–करके समाप्त हो जाएगी। एक औरत जो किसी की भाभी है तो किसी की मामी, किसी की मासी या चाची तो किसी की माँ भी है। इसे हरेक को उसे अपनी--अपनी अपेक्षा से समझना होगा। एकान्तरूप से कोई निर्णय नहीं हो सकता।

एक व्यक्ति के लिए एक ही हेतु तनावमुक्ति का कारण है, किन्तु वही हेतु दूसरे व्यक्ति में तनाव उत्पन्न कर देता है। एक सुन्दर स्त्री जिसकी वह पत्नी है, उसे तनावमुक्त करती है, वही दूसरे व्यक्ति में ईर्ष्या का विषय होकर तनाव का कारण बन सकती है। पुनः वही स्त्री एक समय अपने पति को सुख–सन्तोष देकर तनावमुक्त करती है, तो वही दूसरे व्यक्तियों के आकर्षण का कारण होने से ईर्ष्यावश अपने पति को और आकर्षण के कारण दूसरों को तनावग्रस्त भी बनाती है।

तनाव हमारे जीवन के हर क्षेत्र में उत्पन्न होता है और उन्हीं क्षेत्रों में अगर हम अनेकांत का बीज डाल दे तो सुख व शांति की फसल लहराएगी। अनेकांत विभिन्न क्षेत्रों में तनावप्रबंधन का कार्य करता है।

---

[61] सन्मति–तर्क–प्रकरण – 3/70

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विभिन्न क्षेत्रों में अनेकांतवाद की उपयोगिता –

1. अनेकांतवाद धार्मिक क्षेत्र में –

सभी धर्मों का मूल लक्ष्य एक ही है – मोक्ष प्राप्त करना। भक्त से भगवान् बनना। अन्तर केवल इतना है कि रास्ते अलग–अलग हैं, किन्तु उन रास्तों पर चलने की प्रक्रिया भी एक ही है। वह है – राग, आसक्ति, अहं एवं तृष्णा को समाप्त करना। फिर भी एकान्तवादी वैचारिकता आज हिंसा, कलह, अशांति एवं वैश्विक तनाव कर कारण बन गई है। प्राचीन समय से ही धर्म के नाम पर मानव मानवता को ही खत्म करता आ रहा है। डॉ. सागरमलजी जैन ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में लिखा है –"धर्म मनुष्य को मनुष्य से जोड़ने के लिए था, लेकिन आज वही धर्म मनुष्य–मनुष्य में विभेद की दीवारें खींच रहा है।"[62] वस्तुतः धर्म विश्वशांति और मानव जाति में सहयोग व प्रेम भावना जाग्रत करने के लिए है, किन्तु धार्मिक मतान्धता के कारण धर्म के नाम पर हिंसा, कलह एवं अत्याचार हो रहा है; इसके कई उदाहरण हमारे समक्ष आए हैं। जैसे – अयोध्या मंदिर का विवाद, मथुरा में कृष्ण जन्मभूमि का विवाद व मुस्लिम दरगाह की एक दीवार का विवाद आदि।

प्राचीन समय में ऐसे कई विवाद रहे थे, जिन्हें अनेकांत दृष्टि से ही समाप्त किया गया था। हर व्यक्ति अपने धर्मदर्शन को सही व अन्य धर्मदर्शनों को मिथ्या मानता है। जब भी किसी बात को लेकर कोई विवाद खड़ा होता है तो वहाँ तनावग्रस्त माहौल बन जाता है। ऐसी स्थिति में अनेकांत दृष्टि ही उन दोनों वर्गों के बीच सामंजस्य बना सकती है। अनेकांतदृष्टि दो धर्मों या तथ्यों को एक नहीं करती है, वस्तुतः वह उनके सम्बन्ध में हमारी सोच को सम्यक् बनाती है।

---

[62] अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और सप्तभंगी (सिद्धांत और व्यवहार) – डॉ. सागरमल जैन, पृ.39

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में अनेकांतवाद –

"जिस प्रकार वस्तुतत्त्व विभिन्न गुणधर्मों से युक्त होता है, उसी प्रकार से मानव व्यक्तित्व भी विविध विशेषताओं और विलक्षणताओं का पुंज है।"[63] मनोवैज्ञानिकों का तो काम ही यही है कि व्यक्ति में निहित विविध विशेषताओं और विलक्षणताओं को देखना, समझना और समझकर व्यक्ति की मानसिक स्थिति में विकास करना। व्यक्ति की असंतुलित मानसिक स्थिति का संतुलित करने के लिए, उसमें विद्यमान दोनों गुणों को देखना होता है, अर्थात् तनाव के कारण को और तनावमुक्ति के लिए उनके सम्यक् मार्ग को। व्यक्ति को तनावमुक्त करने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति सभी पक्षों, आयामों या स्थितियों को जान जाए और उनमें जो गुण उसे तनावमुक्त रखे, उसका विकास किया जा सके और जो उसे तनावग्रस्त बनाते हैं, उनका निराकरण किया जा सके। प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व में विविध पक्ष होते हैं और उसी में विरोधी व्यक्तित्व के लक्षण भी पाए जाते हैं। जैसे वासना और विवेक। व्यक्ति में एक ओर अनेक वासनाएँ, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ भरी हुई हैं तो दूसरी ओर इन सभी पर नियंत्रण करने के लिए विवेक का गुणधर्म है। ये दोनों एक साथ ही उपस्थित रहते हैं, किन्तु इनमें एक दृष्टि तनाव उत्पन्न करने का मुख्य कारण है तो दूसरी तनाव को समाप्त करने में सहायक होती है। वासनाएँ व्यक्ति के अंदर क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेषादि भावनाओ को उत्पन्न करती है तो विवेक व्यक्ति में शांति, तृप्ति, वीतरागता, सहिष्णुता, नियंत्रणादि का विकास करता है। इस कड़ी में व्यक्ति में भय व साहस, अज्ञान व ज्ञान, आक्रोश व करुणा, हीनत्व और उच्चत्व, नफरत व प्रेम आदि की ग्रंथियाँ होती है, इनमें से क्रमशः प्रथम तनाव को उत्पन्न करती है व दूसरी तनावमुक्त करती हैं। व्यक्ति को अगर तनावमुक्ति को पाना है, तो उसे इन दोनों पक्षों को समझना होगा और वासना, भय,

---

[63] अनेकान्तवाद, स्याद्वाद और सत्पभंगी (सिद्धांत और व्यवहार) – डॉ. सागरमल जैन, पृ.43

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आक्रोश, हीनत्वादि पर सम्यक् नियंत्रण कर एवं विवेक, साहस, करुणा, उच्चत्वादि के विकास का प्रयास करना होगा।

जिस प्रकार व्यक्ति बहुआयामी होता है, उसी प्रकार उसका व्यक्तित्व भी बहुआयामी होता है और उसे सही प्रकार से समझने के लिए अनेकान्त की दृष्टि आवश्यक होती है। अनेकान्त की दृष्टि से ही व्यक्ति की तनावग्रस्त मानसिक स्थिति को तनावमुक्त व संतुलित बनाया जा सकेगा।

3. राजनैतिक क्षेत्र में अनेकांतवाद के सिद्धांत का उपयोग –

वर्तमान में विश्व में अशांति का एक मुख्य कारण राजनीति भी है। हरेक समूह अपनी सत्ता चाहता है। अपनी–अपनी राजनीतिक विचारधारा को उचित मानकर राजनीतिज्ञों में संघर्ष बढ़ रहा है। पूंजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद, फासीवाद आदि अनेक राजनैतिक विचारधाराएँ तथा राजतन्त्र, कुलतन्त्र आदि अनेकानेक शासन प्रणालियाँ वर्तमान में प्रचलित हैं और एक–दूसरे को समाप्त करने में प्रयत्नशील हैं। आवश्यकता है अनेकांत के सिद्धांत को प्रयोग में लाने की। यह सिद्धांत एक पक्ष को यह विचार देगा कि विरोधी पक्ष भी सही हो सकता है, इसलिए उसने जो दोष बताए हैं, उनका हमें निराकरण करना चाहिए। जब तक सबल विरोधी न हो हमें अपने दोषों का ज्ञान ही नहीं होता है। राजनैतिक क्षेत्र में अगर अनेकांत के सिद्धांत का प्रयोग किया जाए तो सरकार चाहे बहुमत दल की हो तो भी अल्पमत वालों की बातों कों सुनकर दोनों में सामंजस्य बैठाया जा सकता है।

4. प्रबन्धशास्त्र और अनेकांतवाद –

प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह किसी संस्था का हो या व्यवसाय का, समाज का हो या राज्य का हो, प्रबन्धशास्त्र का महत्त्व सबसे अधिक है। प्रबन्धन को कई रूपों में परिभाषित किया गया है। प्रबन्धन लोगों से कार्य करवाने की एक प्रक्रिया है तो दूसरी ओर प्रबन्धन को एक कला भी कहा गया है। किस व्यक्ति से किस प्रकार कार्य लिया जाए ताकि उसकी सम्पूर्ण योग्यता का लाभ उठाया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जा सके, यह प्रबन्धन है। प्रबन्धक को प्रत्येक कर्मचारी के भिन्न–भिन्न गुणों की परख कर उन्हें उनकी योग्यता के अनुरूप कार्य सौंपना चाहिए। प्रबन्धक को अनेकान्तिक दृष्टि से ही व्यक्ति के व्यक्तित्व और उसके प्रेरक तत्त्वों को समझना होगा। एक व्यक्ति के लिए मृदु आत्मीय व्यवहार एक अच्छा प्रेरक हो सकता है, तो दूसरे के लिए कठोर अनुशासन की आवश्यकता हो सकती है। एक व्यक्ति के लिए आर्थिक उपलब्धियाँ ही प्रेरक का कार्य करती है तो दूसरे के लिए पद और प्रतिष्ठा ही प्रेरक तत्त्व हो सकते हैं। प्रबन्धक व्यक्ति की इस बहुआयामिता को समझ ले तो कोई भी संगठन या संस्था अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है। साथ ही संस्था में शांतिपूर्ण वातावरण बना रह सकेगा। किसी भी उद्योग में हड़ताल जैसी तनावपूर्ण स्थिति का अभाव होगा।

5. समाजशास्त्र और अनेकांतवाद –

वर्तमान में प्राचीन समाज की कुछ रूढ़िवादिताएँ युवा व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न करती हैं तो दूसरी ओर नए समाज की नई रीतियाँ वृद्धों में तनाव का कारण बनती हैं।

वस्तुतः समाज व्यक्तियों का समूह है। व्यक्तियों के इस समूह में प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता, अभिरूचि आदि भिन्न–भिन्न होती है, अतः सभी व्यक्तियों को समान तंत्र के द्वारा शासित करना सम्भव नहीं होता। सामाजिक दायित्वों के प्रदान करने और उनका निर्वाह करने में अनेकांत दृष्टि की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। सभी व्यक्तियों को समान रूप से समान कार्यों में नियोजित नहीं किया जा सकता। अनेकांत वह विचारधारा है, जो व्यक्ति की योग्यता और क्षमता को समझकर उसके दायित्वों का निर्धारण करती है। जिस प्रकार इंजिन का एक भी कलपुर्जा अपने उचित स्थान से अलग जगह लगा दिया जाए, तो इंजिन की समग्र कार्यप्रणाली ध्वस्त हो जाती है। उसी तरह समाज में किसी भी व्यक्ति को उसकी योग्यता से भिन्न दायित्व प्रदान कर दिया जाए तो वह सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था को ध्वस्त कर देता है। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था के क्षेत्र में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनेकांतदृष्टि को अपनाना आवश्यक होता है। यदि हम उसकी उपेक्षा करते हैं तो सामाजिक व्यवस्था गड़बड़ा जाती है और उसके परिणाम स्वरूप समाज का प्रत्येक सदस्य तनावग्रस्त हो जाता है।

6. पारिवारिक जीवन में अनेकांतवाद –

जिस प्रकार समाज एक समूह है, उसी प्रकार परिवार भी व्यक्तियों का समूह है, जहाँ प्रेम, विश्वास, सहयोग एवं जन्म के आधार पर एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ रिश्ता जुड़ा होता है। ये प्रेम, सद्भावना आदि के गुण परिवार को तनावमुक्त रख शांतिपूर्ण वातावरण बनाए रखती है, किन्तु परिवार के सदस्यों का दृष्टिभेद कुटुम्ब में संघर्ष व कलह उत्पन्न कर देता है। एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के संस्कारों का भेद परिवार में तनाव का माहौल उत्पन्न कर देता है। सास यह अपेक्षा करती है कि बहू ऐसा जीवन जिए जैसा उसने स्वयं बहू के रूप में जिया था, जबकि बहू अपने युग के अनुरूप और अपने मातृपक्ष के संस्कारो से प्रभावित जीवन जीना चाहती है। पिता पुत्र को अपने अनुरूप ढालना चाहता है किन्तु पुत्र अपनी ही सोच के अनुरूप जीवन जीता है। बड़ा भाई छोटे को अपने अनुशासन में रखकर अपनी सोच से व्यवसाय को चलाना चाहता है, तो छोटा अपनी ही बुद्धि को सही मानकर व्यवसाय को अपने तरीके से चलाना चाहता है। इसमें जब तक सहिष्णु दृष्टि और दूसरे की स्थिति को समझने का प्रयास नहीं किया जाता, तब तक परिवार में तनाव की स्थिति बनी रहेगी। वस्तुतः इसके मूल में जो दृष्टिभेद है, उसे अनेकान्त पद्धति से सम्यक् प्रकार से जाना जा सकता है। अनेकान्त दृष्टि परिवार के प्रत्येक व्यक्ति को एक दूसरे को समझने में सहायक बनती है। हम जब दूसरे के सम्बन्ध में विचार करें, कोई निर्णय ले तो स्वयं अपने को उस स्थिति में खड़ा कर सोचना चाहिए। अपनी बात पर अडिग रहने से पहले दूसरे पहलू पर भी विचार करना चाहिए। यही एक ऐसी दृष्टि है, जिससे परिवार में शांति व प्रेमपूर्ण वातावरण बनता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रिय--विजय और तनावमुक्ति

मनुष्य का बाह्य जगत से सम्बन्ध इन्द्रियों के माध्यम से होता है। इन्द्रियों के बहिर्मुख होने से जीव की रूचि बाह्य विषयों में होती है और इसी से उनको पाने की कामना और संकल्प का जन्म होता है। इन्द्रियों का विषयों से सम्पर्क होने पर कुछ अनुकूल और कुछ प्रतिकूल प्रतीत होते हैं। अनुकूल के प्रति राग व प्रतिकूल के प्रति द्वेष होता है अथवा यूं कहें कि अनुकूल को बार--बार प्राप्त करने की चाह होती है और प्रतिकूल का संयोग न हो, यह मनःस्थिति बनती है। ये मनःस्थितियाँ ही व्यक्ति की चेतना में तनाव को जन्म देती हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में भी इन्द्रियों और मन को ही तनाव का कारण बताया है। उसमें कहा गया है कि इन्द्रियों तथा मन से विषयों के सेवन की लालसा पैदा होती है। सुखद अनुभूति को पुनः--पुनः प्राप्त करने की इच्छा और दुःख से बचने की इच्छा से ही राग या आसक्ति उत्पन्न होती है। इस आसक्ति से प्राणी क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, घृणा, हास्य, भय, शोक तथा स्त्री--पुरुष और नपुंसक सम्बन्धी कामवासनाएँ आदि अनेक प्रकार के शुभाशुभ भावों को उत्पन्न करता है। इस प्रकार इन्द्रियों और मन के विषयों में आसक्त प्राणी जन्म--मरण के चक्र में फंसकर विषयासक्ति से अवश, दीन, लज्जित और करुणाजनक स्थिति को प्राप्त हो जाता है।[64] रूप को ग्रहण करने वाली चक्षु इन्द्रिय है, और रूप चक्षु इन्द्रिय का विषय है। प्रिय रूप राग का और अप्रिय रूप द्वेष का कारण है।[65] जिस प्रकार दृष्टि के राग में आतुर पतंगा मृत्यु पाता है, उसी प्रकार रूप में अत्यंत आसक्त होकर जीव अकाल में ही मृत्यु पाते हैं।[66] रूप की आशा के वश पड़ा हुआ अज्ञानी जीव, त्रस और स्थावर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, परिताप (दुःख) उत्पन्न करता है तथा पीड़ित करता है।"[67]

---

[64] उत्तराध्ययनसूत्र – 32/102–105

[65] वही – 32/23

[66] वही – 32/24

[67] वही – 32/27

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रूप में मूर्च्छित जीव उन पदार्थों के उत्पादन, रक्षण एवं व्यय में और वियोग की चिन्ता में लगा रहता है। उसे सुख कहाँ है ? वह संभोगकाल में भी अतृप्त रहता है।[68] रूप में आसक्त मनुष्य को थोड़ा भी सुख नहीं होता, जिस वस्तु की प्राप्ति में उसने दुःख उठाया, उसके उपयोग के समय भी वह दुःख पाता है।[69]

श्रोत्रेन्द्रिय शब्द को ग्रहण करने वाली और शब्द श्रोत्रेन्द्रिय का ग्राह्य विषय है। प्रिय शब्द राग का और अप्रिय शब्द द्वेष का कारण है।[70] जिस प्रकार राग में गृद्ध मृग मारा जाता है, उसी प्रकार शब्दों के विषय में मूर्च्छित जीव अकाल में ही नष्ट हो जाता है।[71] मनोज्ञ शब्द की लोलुपता के वशवर्ती भारी कर्मी जीव अज्ञानी होकर त्रस और स्थावर जीवों की अनेक प्रकार से हिंसा करता है, उन्हें परिताप उत्पन्न करता है और पीड़ा देता है।[72] शब्द में मूर्च्छित जीव मनोहर शब्द वाले पदार्थों की प्राप्ति, रक्षण एवं वियोग की चिंता में लगा रहता है। वह संभोग काल के समय में भी अतृप्त ही रहता है, फिर उसे सुख कहाँ हैं ? तृष्णा के वश में पड़ा हुआ वह जीव चोरी करता है तथा झूठ और कपट की वृद्धि करता हुआ अतृप्त ही रहता है और दुःख से नहीं छूट पाता।[73]

इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय के संदर्भ में भी समझना चाहिए। इन इन्द्रियों के वशीभूत होकर व्यक्ति की चिंता, दुःख, परिताप देना, चोरी, झूठ, कपट आदि वृत्तियाँ तनाव उत्पन्न करती हैं या यह कहें कि ये सब तनाव के ही हेतु हैं।

गीता में भगवान् कृष्ण ने इन्द्रिय–दमन के सम्बन्ध में कहा है कि जिस प्रकार जल में नाव को वायु हर लेती है, वैसे ही मन–सहित विषयों में विचरती

---

[68] उत्तराध्ययनसूत्र – 32/28

[69] वही – 32/32

[70] वही – 32/36

[71] वही – 32/37

[72] उत्तराध्ययनसूत्र – 32/40

[73] वही – 32/40

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हुई इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय इस पुरुष की बुद्धि को हरण कर लेने में समर्थ है।[74]

इन्द्रियाँ अपने–अपने विषयों की ओर आकर्षित होती हैं और ये इन्द्रियों के विषय जीवात्मा में विकार उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार व्यक्ति का विवेक और मानसिक शांति दोनों भंग हो जाते हैं और व्यक्ति तनावग्रस्त हो जता है। इसलिए कहा गया है कि –साधक शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श इन पाँचों एन्द्रिक–विषयों के सेवन को सदा के लिए छोड़ दे।[75]

तनावमुक्ति के लिए इन्द्रिय–विजय आवश्यक है, किन्तु क्या इन्द्रिय–विजय के लिए पूर्ण इन्द्रिय–निरोध सम्भव है ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं कि –जब तक जीव देह–धारण किए हुए है, उसके द्वारा इन्द्रिय–व्यापार का पूर्ण निरोध सम्भव नहीं। कारण यह है कि वह जिस परिवेश में रहता है, उसमें इन्द्रियों को अपने विषयों से सम्पर्क रखना ही पड़ता है।[76] संसार में यह भी सम्भव नहीं है कि व्यक्ति अपने इन्द्रियों का उपयोग नहीं करे और जब तक इन्द्रियाँ हैं, व्यक्ति का बाह्य जगत से सम्पर्क भी होगा ही। ऐसी स्थिति में व्यक्ति कभी तनाव से मुक्त नहीं हो सकेगा। इस सम्बन्ध में तनावमुक्ति के लिए या इन्द्रिय विजय के लिए आचारांगसूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध में पन्द्रहवें भावना नामक अध्ययन तथा उत्तराध्ययन में गम्भीरता से विचार किया गया है। उसमें कहा गया है कि –यह शक्य नहीं है कि कानों में पड़ने वाले अच्छे या बुरे शब्द सुने न जाऐं, अतः शब्दों का नहीं, शब्द के प्रति जाग्रत होने वाले राग–द्वेष का त्याग करना चाहिए। यह शक्य नहीं है कि आँखों के सामने आने वाला अच्छा या बुरा रूप देखा न जाए, अतः रूप का नहीं, रूप के प्रति जाग्रत होने वाले राग–द्वेष का त्याग करना चाहिए। यह शक्य नहीं है

---

[74] गीता – 2/67

[75] उत्तराध्ययन – 16/10

[76] जैन, बौद्ध और गीता के आचारदर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन, डॉ.सागरमल जैन, भाग–1, पृ. 474

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कि नाक के समक्ष आई हुई सुगन्धि या दुर्गन्धि सूंघने में न आए, अतः गन्ध का नहीं, गंध के प्रति जगने वाली राग–द्वेष की वृत्ति का त्याग करना चाहिए। यह शक्य नहीं है कि रसना पर आया हुआ अच्छा या बुरा रस चखने में ना आए, अतः रस का नहीं, रस के प्रति जगने वाले राग–द्वेष का त्याग करना चाहिए। यह शक्य नहीं है कि शरीर से स्पर्श होने वाले अच्छे या बुरे स्पर्श की अनुभूति न हो, अतः स्पर्श का नहीं, स्पर्श के प्रति जगने वाले राग–द्वेष का त्याग करना चाहिए।[77]

इसी प्रश्न के उत्तर में आगे उत्तराध्ययनसूत्र में लिखा है –इन्द्रियों के शब्दादि मनोज्ञ अथवा अमनोज्ञ विषय आसक्त व्यक्ति के लिए ही राग–द्वेष का कारण बनते हैं, वीतराग के लिए नहीं।[78] इन्द्रियों और मन के विषय, रागी सामान्य पुरुषों के लिए ही तनाव (बन्धन, दुःख) के कारण होते हैं। ये ही विषय वीतरागियों के बन्धन या दुःख का कारण नहीं होते हैं।[79] कामभोग न किसी को बन्धन में डालते हैं और न किसी में विकार ही पैदा कर सकते हैं, किन्तु जो विषयों में राग–द्वेष करता है, वही राग–द्वेष से तनावग्रस्त होता है।[80]

वस्तुतः इन्द्रियाँ तनाव का कारण नहीं होती, इन्द्रियों के विषयों पर राग–द्वेष की वृत्ति तनावग्रस्तता का हेतु बनती है। व्यक्ति इन्द्रियों का त्याग तो नहीं कर सकता, किन्तु इन्द्रियों का व्यापार करते हुए भी तनावमुक्त रह सकता है, अतः इन्द्रियों का निरोध नहीं अपितु उनके पीछे रही हुई राग–द्वेष की वृत्तियों का निरोध करना होगा। दूसरे शब्दों में कहें तो इन्द्रिय संयम करना होगा तभी तनावमुक्त अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है। भगवान् महावीर ने स्पष्ट कहा है कि –यदि साधक को मानसिक विचारों से बचना है और अपने वैराग्य भाव को सुरक्षित रखना है तो अनुकूल की चाह से व उसके पुनः प्राप्ति की चाह

---

[77] आचारांगसूत्र – 2/3/15/131–135

[78] उत्तराध्ययनसूत्र – 32/109

[79] वही – 32/100

[80] वही – 32/101

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्थात् तृष्णा से मुक्त होना होगा। इसी प्रकार अपनी चेतना को प्रतिकूल के वियोग की चिंता अर्थात् आर्त्तध्यान से मुक्त रखना होगा, क्योंकि तनाव का कारण वस्तु की अनुभूति ही नहीं, उस अनुभूति के परिणामस्वरूप अनुकूल की पुनः-पुनः प्राप्ति की और प्रतिकूल के वियोग की चिंता ही तनाव का मूलभूत कारण है, अतः तनावमुक्ति के लिए इन दोनों से ऊपर उठना आवश्यक है।

कषाय–विजय और तनावमुक्ति

कषाय और तनाव के सह सम्बन्ध का हम इसके पूर्व चतुर्थ अध्याय में विवेचन कर चुके हैं। यहाँ हम कषाय–विजय अर्थात् कषायमुक्ति की चर्चा करेंगे। वस्तुतः कषाय–मुक्ति से ही तनावमुक्ति सम्भव है। जैनदर्शन में कषाय को कर्मबन्धन का एवं कर्मबन्धन को संसार भ्रमण का हेतु माना गया है। संसार में जन्म–मरण का चक्र ही समस्त दुःखों का कारण है। दूसरे शब्दों में कहें तो कषायमुक्ति ही दुःखमुक्ति का मूल आधार है और यह सांसारिक दुःख या तनाव से मुक्ति के हेतु कषाय मुक्ति आवश्यक है। दूसरे शब्दों में दुःखमुक्ति या तनावमुक्ति के लिए कषायमुक्त होना आवश्यक है। जैनदर्शन के अनुसार कषायमुक्त जीव ही मोक्ष को प्राप्त करता है। मोक्ष तनावमुक्ति की ही एक अवस्था है।

कषाय को हम व्यक्ति के तनावयुक्त होने की अवस्था की अभिव्यक्ति भी कह सकते हैं। कषाय की इन वृत्तियों से ही तनाव की उत्पत्ति भी होती है। एक ओर जहाँ क्रोध और अहंकार को तनाव की एक अवस्था कहते हैं, वहीं दूसरी ओर मान, माया और लोभ को तनाव की स्थिति के साथ–साथ तनाव के कारण भी बताए गए हैं, अतः तनावमुक्ति के लिए तनाव की स्थिति और तनाव का निराकरण करना आवश्यक है। इस प्रकार जैन आगमों में कषाय–विजय को सभी दुःखों से मुक्ति का उपाय भी बताया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषायों का सीधा सम्बन्ध हमारे बाह्य व्यवहार (आचरण) से है। व्यक्ति के व्यक्तित्व का निर्धारण भी उसके कषायजन्य आवेगों से किया जाता है। कषायों के आवेग जितने तीव्र होंगे, उसके मन की अस्थिरता भी उतनी अधिक होगी और व्यक्ति में कषायों की प्रवृत्ति जितनी कम होगी उसका मन उतना ही स्थिर होगा। मन की अस्थिरता व्यक्ति के अशांत होने की अवस्था है। मन की अस्थिरता या चंचलता कभी भी व्यक्ति को संतुष्टि का अनुभव नहीं होने देती है। तनाव ग्रस्तता से मुक्त होने का उपाय है मन को स्थिर करना। मन की स्थिरता कषायों से ऊपर उठने पर ही सम्भव है। जैसे–जैसे कषायों के आवेग कम होते जाएंगे, मन की स्थिरता बढ़ती जाएगी। जैसे–जैसे मन की स्थिरता बढ़ेगी, व्यक्ति तनावमुक्ति की दिशा में अग्रसर होगा। कषायों का प्रभाव मात्र व्यक्ति के व्यक्तित्व पर ही नहीं वरन् उसके सम्पूर्ण जीवन पर पड़ता है। अगर काषायिक वृत्तियाँ अधिक होंगी, तो व्यक्ति का सारा जीवन तनावग्रस्त बना रहेगा। व्यक्ति में कषाय रूपी वृत्तियाँ जब कम होती हैं तो वह जीवन की तीनों अवस्था –बालअवस्था, युवावस्था व वृद्धावस्था में आनन्द एवं शांति का अनुभव करता है। अतः तनावमुक्ति के लिए या कषाय–विजय के कुछ सूत्र निम्न हैं –

क्रोध विजय के उपाय –

1. दशवैकालिकसूत्र में कहा गया है कि क्रोध को उपशम से नष्ट करो[81], अर्थात् समभाव से क्रोध को जीतो।
2. क्रोध आने पर जिस व्यक्ति या स्थान पर क्रोध आ रहा है, वहाँ से दूर चले जाएं।
3. क्रोध आने पर स्वयं के क्रोध को देखने का प्रयास करें। अगर इतना ही ख्याल आ गया कि क्रोध आ रहा है, तो उसके दुष्परिणामों का ख्याल भी आ जाएगा, तो क्रोध स्वतः ही चला जाएगा।

---

[81] उवसमेण हणे कोहं। दशवैकालिकसूत्र –8/39

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

4. क्रोध को शांत करने का एक उपाय यह भी प्रचलित है कि जब क्रोध आए तो एक से सौ तक गिनती गिनें या कोई मंत्र जाप करने लगें।

5. चिन्तन करने से भी क्रोध से बचा जा सकता है। चिन्तन करें कि –'यह क्रोध मेरा स्वभाव नहीं है। यह मेरी आत्मा को विभाव दशा में ले जा रहा है।'

6. हमारे विचारों का हमारी श्वासोच्छवास से सीधा और गहरा सम्बन्ध है। जब क्रोध आता है तो हमारी श्वास सामान्य स्थिति से तेज हो जाती है। इसलिए जब क्रोध आए तो पहले अपने श्वास–प्रश्वास को संयमित करने का प्रयास करें। इससे क्रोध शांत होता है।

7. क्रोध क्यों आ रहा है ? कैसे आ रहा है ? कहाँ से प्रारम्भ हुआ ? इन प्रश्नों के उत्तर ढूंढने से मन पर बाह्य परिस्थिति का प्रभाव समाप्त हो जाता है और विचारों में परिवर्तन, स्वाध्याय, चिन्तन, अनुप्रेक्षा आदि के माध्यम से होता है।[82]

8. क्रोध आने पर थोड़ा विलम्ब करें। प्रतिक्रिया की शीघ्रता मत करो।

9. क्रोध सहनशीलता के अभाव में होता है, अतः अपनी सहनशीलता को बढ़ाने का प्रयास करें।

10. आस्रव, संवर एवं निर्जरा–भावना की अनुप्रेक्षा करना।[83]

11. उत्तराध्ययनसूत्र में कहा है – **कोहं विजएणं भंते! जीवे किं जाणयई** ? उत्तर – **कोहं विजएणं खंति जवयइ,** अर्थात् क्रोध पर विजय करने से क्या प्राप्त होता है ? उत्तर – क्रोध पर विजय करने से क्षमाभाव प्रकट होता है[84] और योगशास्त्र में कहा है – उत्तम आत्मा को क्रोधरूपी अग्नि को तत्काल शान्त करने के लिए एकमात्र क्षमा का ही आश्रय लेना

---

[82] कषाय : एक तुलनात्मक अध्ययन, –साध्वी डॉ. हेमप्रज्ञाश्री, पृ. 137

[83] बारह भावना

[84] उत्तराध्ययनसूत्र – अध्याय 29, गाथा – 68

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाहिए। क्षमा ही क्रोधाग्नि को शान्त कर सकती है। क्षमा संयमरूपी उद्यान को हरा–भरा बनाने के लिए क्यारी है।[85]

12. क्रोध आने पर मौन धारण करें।

13. क्रोध में एक गिलास ठंडा पानी पी लें।

14. पानी से अग्नि शांत हो जाती है, अतः कोई अगर हम पर क्रोध करे तो उस पर क्रोध न करके उसे नरमी से बात करें, सामने वाले व्यक्ति का क्रोध शांत हो जावेगा।

उपर्युक्त सूत्रों को अपनाने से क्रोध तो शांत होगा ही क्रोध के साथ–साथ तनाव भी उत्पन्न नहीं होगा। क्रोध व्यक्ति को विवेकहीन व हिंसक बनाता है। क्रोध शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शांति, सम्यक्त्वगुण, स्मरण शक्ति, प्रीति, सहनशीलता का नाश करता है। उत्तराध्ययनसूत्र में तो यहाँ तक लिखा है कि अपने–आप पर भी क्रोध मत करो।[86] अतः तनावमुक्ति के लिए क्रोध मनोवृत्ति का त्याग आवश्यक है।

मान–विजय के उपाय --

1. दशवैकालिकसूत्र में कहा गया है कि मान विनय का नाश करने वाला है[87], अतः मान पर विजय मृदुता अर्थात् विनम्रता से प्राप्त की जा सकती है।[88]

---

[85] क्रोधवह्नेस्तदह्याय शमनाय शुभात्मभिः।
श्रयणीया क्षमैकैव संयमारामसारणिः। – योगशास्त्र –4/11

[86] उत्तराध्ययनसूत्र – 29/40

[87] माणं मद्दवया जिणे – दशवैकालिकसूत्र –8/38

[88] माणो विणयणासवो – दशवैकालिकसूत्र – 8/38

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2. शरीर की स्वस्थता, सुन्दरता का गर्व होने पर अशुचि भावना का चिन्तन करें। यह शरीर अस्थि, मज्जा, रक्त, मल–मूत्र आदि से बना है। किसी भी समय सुरूपता कुरूपता में परिवर्तित हो ही जाती है।

3. सत्ता, सम्पत्ति, सुविधा, सत्कार, सम्मान, स्वजन आदि के आधार पर अहंकार पुष्ट होने पर विचार करना चाहिए कि ये सब मेरे पुण्य–कर्म के उदय से हैं, अगर मैंने अहंकार किया तो यह पुण्य पाप में परिवर्तित हो जाएगा।

4. मान विजय के लिए मार्दव धर्म का पालन श्रेष्ठ है। मार्दव का अर्थ है मृदुभाव।

5. धन–सम्पत्ति के अधिक मिलने पर उसका उपयोग दूसरों की सेवा–सहायता में करें।

6. ऊँच–नीच की भावना छोड़कर सभी को एक समान समझें। आचारांगसूत्र में कहा है –"यह जीवात्मा अनेक बार उच्चगोत्र में जन्म ले चुका है, तो अनेक बार नीच गोत्र में भी, इस प्रकार विभिन्न गोत्रों में जन्म लेने से न कोई हीन होता है और न कोई महान्।[89]

7. चिन्तन करें परमाणु, पुद्गलों का स्वभाव ही सड़न–गलन है। सभी पदार्थ नष्ट हो जाते हैं, अतः किसी भी वस्तु या व्यक्ति पर गर्व ना करें।

उत्तराध्ययनसूत्र में कहा है – "मान का प्रतिपक्षी विनय है। मान विजय से विनय गुणों की प्राप्ति होती है।"[90]

मान पर विजय प्राप्त करने से व्यक्ति तनावमुक्ति की प्रक्रिया में आगे बढ़ जाता है। मान से विनय गुण की प्राप्ति होती है और विनय नम्रता सिखाता है। तन को झुकाना ही विनय नहीं है, बल्कि मन को झुकाने पर ही अधिक सम्मान

---

89 से असइं उच्चागोह, असइं नीआगोए।
नी होणे, नो अइस्सिते .....।। – आचारांगसूत्र –1/2/3

90 माणं विजएणं मद्दवं .....। – उत्तराध्ययनसूत्र, 29/69

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिलता है। उत्तराध्ययनसूत्र में लिखा है कि मान पर विजय प्राप्त होने पर वह असातावेदनीयकर्म नहीं बांधता है तथा पूर्व में बंधे हुए कर्मों की निर्जरा हो जाती है।[91] असातावेदनीयकर्म तनाव उत्पन्न करता है, अतः तनावमुक्ति के लिए मान पर विजय प्राप्त करना चाहिए।

माया–विजय के उपाय –

1. **"सोही उज्जूय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई"**[92] अर्थात् ऋजुभूत सरल व्यक्ति की ही शुद्धि होती है और सरल हृदय में ही धर्म रूपी पवित्र वस्तु ठहरती है। शुद्धि का अर्थ ही सहजता या सरलता है, अतः ऐसा चिन्तन करने से माया पर विजय प्राप्त की जा सकती है।
2. झूठ, छल, कपट कभी नहीं टिकता, एक दिन सभी के समक्ष आ ही जाता है और यथार्थ स्वरूप का पता चलने पर दूसरे तो दुःखी होते ही हैं, हम भी तनावग्रस्त हो जाते है, ऐसा विचार निरन्तर करते रहना चाहिए।
3. यह विचार करना चाहिए कि माया–कषाय अनन्त दुःखों (तनावों) का कारण है और तिर्यंच–गति का हेतु है।[93]
4. माया जब उजागर होती है तो व्यक्ति पर से सभी अपना विश्वास खो देते हैं, जिसके परिणाम स्वरूप जब उसे किसी की मदद आवश्यकता होती है, तो कोई मदद नहीं करता। इस विचार से स्वयं चिन्तन करने से माया या कपट करने से डर लगने लगेगा।

---

91 माणं विजएण वेयणिज्जं कम्मं न बंधई।
पुव्वबद्धं च निज्जरेइ। – उत्तराध्ययनसूत्र – 29/69

92 उत्तराध्ययनसूत्र –3/12

93 माया तिर्यग्योनस्य – तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय–6, सूत्र–17

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5. कभी–कभी व्यक्ति स्वयं अपने ही जाल में फँस जाता है, इसलिए कपट–प्रवृत्ति को छोड़कर सीधे–सरल तरीकों से कार्य करने का प्रयत्न करना चाहिए।

6. माया का प्रतिपक्षी गुण सरलता है। माया तनाव उत्पन्न करती है तो सरलता उसके विपरीत होने के कारण तनावमुक्त करती है। इसलिए अपने जीवन में या स्वभाव में सरलता का विकास करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए।

लोभ–विजय के उपाय –

1. शास्त्रों के वचनों पर श्रृद्धा रखनी चाहिए। जैन आगम उत्तराध्ययनसूत्र में पूछा गया है –"लोभ के विजय से जीव को कौन–सा लाभ होता है ? प्रभु ने उत्तर दिया – लोभ–विजय से संतोष गुण उत्पन्न होता है। लोभ–विजय से असातावेदनीय कर्म का बंध नहीं होता तथा पूर्वबद्ध कर्म की निर्जरा होती है।"[94]

2. लोभ पर विजय प्राप्त करने के लिए इच्छाओं व आंकाक्षाओं को अल्प करने का प्रयास करना चाहिए।

3. लोभ की पूर्ति एक बार होने पर वह बढ़ता ही जाता है। किसी भी चीज की चाह अति दुष्कर व दुःखदायी होती है, अतः लोभ की वृत्ति को बढ़ने न दें।

4. जितना हमारे पास है, उतने में संतुष्ट होने की भावना होना चाहिए।

---

[94] लोभविजयेणं भंते। जीवे किं जणयइ।
लोभविजएणं संतोसिभावं जणयइ, लोभेवेयणिज्जं कम्मं ने बन्धइ
पुव्वबद्धं च कम्मं निज्जरेइ .....। –उत्तराध्ययनसूत्र –29/70

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5. लोभ विजय के लिए बारह भावनाओं का चिन्तन करें।[95]

6. योगशास्त्र में लोभ विजय का सूत्र बताते हुए कहा है –"लोभरूपी समुद्र को पार करना अत्यन्त कठिन है। उसके बढ़ते हुए ज्वार को रोकना दुष्कर है, अतः बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि संतोषरूपी बाँध बांधकर उसे आगे बढ़ने से रोक दे।[96]

7. लोभी व्यक्ति जब लोभ कषाय से युक्त होता है तो केवल लोभ ही नहीं, बल्कि मान, माया और क्रोध कषाय भी उस पर हावी हो जाते हैं और चारों कषायों से युक्त व्यक्ति के दुष्परिणामों का चिन्तन कर लोभ पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

लोभ का प्रतिपक्षी संतोष है, अतः संतोष गुण की साधना करने से ही लोभ पर विजय प्राप्त की जा सकती है। संतोष व्यक्ति के तनावमुक्त होने में एक सहायक तत्त्व है।

दशवैकालिकसूत्र में चारों काषायिक–प्रवृत्तियों पर विजय पाने के उपाय बतलाए गए हैं – क्रोध को क्षमा से, मान को मृदुता (विनयभाव) से, माया का सरलता से और लोभ को संतोष से जीतें।[97]

इन पर विजय पाना ही वास्तव में तनाव पर विजय पाना है, अर्थात् तनावों से मुक्ति पाना है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने इसी आशय से कहा है कि –"जब तक इन काषयिक प्रवृत्तियों का क्षय नहीं होगा, उन पर जय प्राप्त नहीं होगी, तब तक मुक्ति संभव नहीं है।[98]

---

95 बारह भावना।

96 लोभसागर मुद्वेलमतिवेलं महामतिः।
संतोष सेतुबन्धेन प्रसरन्तं निवारयेत।। – योगशास्त्र, 4/22

97 उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं मज्जभावेण, लोभं संतोसओ जिणे।। –दशवैकालिक

98 अ) कोहं खमया माणं समद्दवेणज्जवेण मायं च।
संतोसेण य लोहं जयदि खु ए चहुविहकसाए।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाग्राम्बरत्वे, न सिताम्बरत्वे, न तर्कवादे, न च तत्त्ववादे,
न पक्षसेवाश्रएण मुक्ति, कषायमुक्ति किलः मुक्तिरेव।[99]

'न दिगम्बर होने से, न श्वेताम्बर होने से, न तर्कवाद और न तत्त्वचर्चा से, न पक्ष विशेष कर आश्रय लेने से मुक्ति प्राप्त है, वस्तुतः कषायमुक्ति ही मुक्ति है, यह कषायमुक्ति ही तनावमुक्ति है।

विपश्यना/प्रेक्षाध्यान और तनावमुक्ति –

भारतीय श्रमण परम्परा में तनावमुक्ति के लिए दो प्रकार की ध्यान साधना पद्धतियाँ प्रचलित हैं। एक विपश्यना और दूसरी प्रेक्षा ध्यान साधना। वस्तुतः विपश्यना और प्रेक्षा ध्यान दोनों ही साक्षीभाव की ध्यान साधना का ही एक रूप हैं। दोनों में साधक को ज्ञाता–द्रष्टाभाव में रहने को कहा जाता है। दोनों ही अप्रमत्त दशा की साधना है। दोनों में ही मन और शरीर में जो कुछ हो रहा है, उसे सजगतापूर्वक देखते रहने की बात कही जाती है। वस्तुतः दोनों ही मन को विकल्पों से मुक्त करने की साधनाएँ हैं। जैनदर्शन और बौद्धदर्शन दोनों ही यह मानते हैं कि तनाव का मूल कारण मन का विकल्पों, इच्छाओं और आकांक्षाओं से युक्त होना है। इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और अपेक्षाएँ वस्तुतः तृष्णा और राग–द्वेष की वृत्ति से जन्म लेती हैं, अतः यदि चेतना और जीवन को तनावमुक्त बनाना है तो निर्विकल्पता की साधना आवश्यक है, क्योंकि तृष्णा और राग–द्वेष की प्रवृत्ति विकल्पों को जन्म देती है और विकल्पों से चित्त तनावयुक्त बनता है, जिसका प्रभाव हमारी शारीरिक स्थिति पर भी पड़ता है। अतः तनावमुक्ति के लिए विपश्यना/प्रेक्षा ध्यान की साधना आवश्यक है। प्रेक्षा–ध्यान और विपश्यना से तनावमुक्ति किस प्रकार होती है, यहाँ इसे समझ लेना भी आवश्यक है। विपश्यना या प्रेक्षाध्यान में चित्त को श्वासो– श्वास, दैहिक संवेदनाओं अथवा

ब) क्षान्तया क्रोधो, मृदुत्वेन मानो, मायाऽऽर्जवेन च।
लोभश्चानीहया, जयोः कषायाः इति संग्रहः।।

[99] सम्बोध सप्ततिका – गाथा 2.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चैत्तसिक–अवस्थाओं के प्रति सजग बनाया जाता है और जब चेतना ज्ञाता–द्रष्टा, सजग या अप्रमत्त हो जाती है तो विकल्प विलीन (शून्य) होने लगते हैं, क्योंकि सजगता या अप्रमत्त (ज्ञाता–द्रष्टाभाव) दशा में रहना और विकल्प करना, ये दोनों एक साथ सम्भव नहीं हो सकते। चेतना जब विकल्पों से जुड़ती है तो नियमतः प्रमत्त दशा को प्राप्त होती है। इस सम्बन्ध में एक छोटा सा प्रयोग कर सकते हैं –

मान लीजिए कि हमें सौ श्वासोच्छश्वास की विपश्यना या प्रेक्षा करनी है, तो इस स्थिति में हम उन श्वासोश्वास को देखते हुए सौ तक की गिनती पूरी करें। इस काल में यदि हम किसी विकल्प से जुड़ते हैं, तो श्वासोच्छश्वास के प्रति सजगता नहीं रहती है और गणना खण्डित हो जाती है, इसलिए जैन परम्परा में ध्यान को श्वासोच्छश्वास की गणना से जोड़ा गया है। **आवश्यक–निर्युक्ति** में स्पष्टतः यह कहा गया है कि साधक को चित्त विशुद्धि के लिए श्वास–प्रश्वास का ध्यान करना चाहिए।[100] सूयगड़ो में भी मुनि को तनावमुक्ति और सजगता के लिए या विहार में भी मन की चंचलता को रोकने के लिए कहा है कि –वह श्वास को शान्त और नियंत्रित कर विहार करे।[101] श्वास–प्रश्वास के प्रयोग से जो परिणाम प्राप्त होता है, उसे बताते हुए आयारो में लिखा है –**"सहिए दुक्खमत्ताए पुट्ठो णो झंझाए"** श्वास को नियंत्रित और शांत करने वाला दुःख मात्र से स्पृष्ट होने पर भी व्याकुल नहीं होता।[102] यह एक अनुभूतिजन्य तथ्य है कि आत्म सजगता, अप्रमत्तता या साक्षी भाव में रहना और विकल्प करना, ये दोनों एक साथ नहीं चल सकते हैं। यदि ध्यान के माध्यम से विकल्प समाप्त होते हैं तो यही समझा जाएगा कि उससे तनाव भी समाप्त होते

---

[100] आवश्यक निर्युक्ति – 15/4

[101] सूयगड़ो –1/2/52, देखें टिप्पण
अणिहे सहिए सुसंवुडे, धम्मट्ठी उवहाणवीरिए।
विहरेज्ज समाहितिंदिए आतहितं दुक्खेण लब्भते।।

[102] आयारो –3/69, या देखें –प्रेक्षाध्यान : आगम और आगमोतर स्रोत।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हैं, क्योंकि तनावों का जन्मस्थल विकल्प ही है। इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि तनावमुक्ति के लिए विपश्यना या प्रेक्षाध्यान की साधना आवश्यक है।

धर्म और तनावमुक्ति –

आज मनुष्य अशांत एवं तनावपूर्ण स्थिति में है। वैज्ञानिक तकनीक से प्राप्त भौतिक सुख–सुविधा एवं आर्थिक समृद्धि भी मनुष्य को तनावमुक्त नहीं कर पाई है, मनुष्य की माँगों को संतुष्ट नहीं कर पाई है। आज के इस आतंकित और अशांत युग में मनुष्य कहाँ जाए, जहाँ उसे सुख शांति मिल सके। इस तनावपूर्ण स्थिति में तनावमुक्ति की खोज करता मानव अनेकानेक रास्ते अपनाता है। उन्हीं रास्तों में सबसे प्रचलित रास्ता धर्म का है, किन्तु आज तो धर्म के नाम पर भी मानव एक–दूसरे से कटते जा रहे हैं। आज धर्म–सम्प्रदाय मानव–मानव के बीच द्वेष एवं घृणा का बीज बो रहे हैं। धर्मतत्त्व को प्रत्येक प्राणी अपनी–अपनी भूमिका के अनुसार पृथक्–पृथक् रूप में ग्रहण करता है[103] और वह अपने पक्ष को सही मानकर दूसरे की अवहेलना करता है। धर्म, जाति और वर्ण के नाम पर अपने को दूसरे से भिन्न समझता है और दूसरे से भयभीत रहता है और इस प्रकार स्वयं को आतंकित अनुभव करता है एवं दूसरों को आशंकित बना देता है। आतंकित होना और आशंकित बना देना – दोनों ही तनाव के कारण हैं। आतंकित और आशंकित दोनों अवस्थाओं में भय है और जहाँ भय है, वहाँ तनाव है ही। जो धर्म अहिंसा का मार्ग प्रशस्त करता है, उसी धर्म की आड़ में पूरे विश्व में हिंसा, कलह, अशांति का परिवेश बना हुआ है।

अब प्रश्न उठता है कि फिर व्यक्ति तनावमुक्ति के लिए कहाँ जाए ? वस्तुतः तनावमुक्ति के लिए धर्म को अपने यथार्थ स्वरूप में अपनाना होगा, आवश्यकता है, धर्म के सही स्वरूप को समझने की।

---

[103] अनुसासणं पुढो पाणी। – सूत्रकृतांग –1/5/11

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धर्म का स्वरूप –

धर्म के यथार्थ स्वरूप को जानने की जिज्ञासा प्रत्येक मानव में पाई जाती है। धर्म क्या है ? इस प्रश्न के अनेक उत्तर दिए गए हैं। जब शिष्य गुरू की आज्ञा का पालन करता है तो वह शिष्य का धर्म है या यह कहें कि दुःखी एवं पीड़ितजनों की सेवा करना मनुष्य का धर्म है तो यहाँ धर्म का अर्थ दायित्व--बोध या कर्त्तव्य–बोध से है। इसी प्रकार जब हम यह कहते हैं कि मेरा धर्म जैन या उसका धर्म ईसाई है तो यहाँ धर्म का अर्थ किसी सिद्धांत पर हमारी आस्था या विश्वास से होता है। वैसे तो धर्म के अनेक रूप हैं, पर तनावमुक्ति के लिए धर्म के जिस रूप को अपनाना चाहिए, वही धर्म का सही व वास्तविक रूप है। धर्म को परिभाषित करते हुए जैन आचार्यों ने कहा है –"धम्मो वत्थुसहावो", अर्थात् वस्तु का अपना निज स्वभाव ही उसका धर्म है।[104] वस्तु के स्वाभाविक गुण को धर्म कहा जाता है। जैसे आग का धर्म जलाना है, पानी का धर्म शीतलता है। स्वभाव वह है, जो अपने आप होता है, जिसके लिए दूसरे व बाह्य तत्त्वों की आवश्यकता नहीं होती है। जब व्यक्ति स्व–स्वभाव में होता है तो वह शांत व तनावमुक्त अवस्था में रमण करता है। जो स्व–स्वभाव है, वही धर्म है। स्व–स्वभाव के विपरीत जो भी होता है, वह अधर्म है, पाप है अर्थात् विभाव है। जो स्वतः होता है, वह स्वभाव है और जो दूसरे बाह्य कारणों से होता है, वह विभाव है। तनाव भी दूसरे बाह्य कारणों से या बाहरी तत्त्वों से ही होता है। व्यक्ति की यह विभाव दशा ही तनाव की दशा है। उदाहरण के लिए हम क्रोध व शांति को इस कसौटी पर कसते हैं। क्रोध तनाव का हेतु है एवं शांत अवस्था तनावमुक्ति की अवस्था होती है। क्रोध कभी स्वतः नहीं होता, गुस्से या क्रोध का कोई न कोई बाहरी निमित्त अवश्य होता है। इस आधार पर क्रोध व्यक्ति की विभाव दशा है। धीरे–धीरे व्यक्ति का क्रोध शांत होने लगता है, क्योंकि कोई भी चौबीसों घण्टे क्रोध की स्थिति में नहीं रह सकता है, किन्तु शांत रह सकता है। शांति के लिए उसे किसी बाह्य वस्तु की आवश्यकता नहीं होती है, वह स्वतः ही

---

[104] कार्तिकेयानुप्रेक्षा –478

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हो जाती है। व्यक्ति शांत ही रहता है, क्योंकि शांतता उसका स्वभाव है और वह क्रोधित किसी बाहरी कारण से हीं होता है। जैसे पानी का स्वभाव शीतलता है, किन्तु आग का संयोग होने से वह उष्ण हो जाता है और आग का वियोग होते ही धीरे–धीरे वह स्वतः शीतल हो जाता है। कहने का तात्पर्य यही है कि व्यक्ति का स्व–स्वभाव में होना ही उसका धर्म है, और इसी धर्म से तनावमुक्ति संभव है। गीता में कहा गया है –**"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"**, परधर्म अर्थात् दूसरी वस्तु या दूसरे व्यक्ति के स्वभाव को इसलिए भयावह कहा गया, क्योंकि वह हमारे लिए स्वभाव न होकर विभाव होगा। जो विभाव है, वह धर्म न होकर अधर्म ही होगा।[105] प्रत्येक के लिए जो उसका निज–गुण है, स्व–स्वभाव है, वही धर्म है। स्व–स्वभाव से भिन्न जो भी होगा, वह उसके लिए धर्म नहीं अधर्म ही होगा।[106] अधर्म ही एक ऐसी विकृति है, जिससे आत्मा क्लेश पाता है[107], अर्थात् तनाववयुक्त अवस्था में रहता है। एक धर्म ही ऐसा पवित्र अनुष्ठान है, जिससे आत्मा की विशुद्धि होती है।[108] विभाव रूपी कचरा नष्ट हो जाता है, आत्मा की विशुद्धि तनावमुक्त अवस्था में ही होती है, क्योंकि आत्मा स्व–स्वभाव में होने से विशुद्ध होती है। संसार में कोई भी मोहग्रस्त अवस्था निष्फल नहीं होती है, अर्थात् तनावरहित नहीं होती है। एकमात्र धर्म ही स्वस्वभाव रूप होने से बन्धन या तनाव का हेतु नहीं है।[109]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि व्यक्ति का या वस्तु का स्वस्वभाव में होना धर्म है और विभाव में होना अधर्म है। अब प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य का धर्म क्या है ? इसका स्पष्ट उत्तर है कि जो मनुष्य का स्वभाव होगा वहीं मनुष्य का धर्म होगा। मनुष्य का स्वभाव मनुष्यता ही है, अतः मनुष्य

---

[105] गीता –3/35

[106] धर्म का मर्म – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 14

[107] एगे मरणे अंतिमसारीरियाणं – स्थानांग –1/1/36

[108] एगा अहम्मपडिमा, जं से आया परिकिलेसति – स्थानांग, 1/1/38

[109] किरिया हि णत्थि अफला, धम्मो जदिं णिप्फलो परयो। – प्रवचनसार –2/24

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

का मानवीय गुण से युक्त होकर जीना ही धर्म है, जो विश्वशांति या तनावमुक्ति का हेतु है।

पहले हमें यह विचार करना है कि एक मनुष्य के रूप में हम क्या हैं ? इसका समाधान करते हुए डॉ. सागरमल जैन लिखते हैं कि –"मानव अस्तित्व द्विआयामी (Two dimensional) है। शरीर और चेतना – ये हमारे अस्तित्व के दो पक्ष हैं, किन्तु इसमें भी हमारे अस्तित्व का मूल आधार चेतना ही है।[110] जिस प्रकार विद्युत के तार का स्वयं में कोई मूल्य या महत्त्व नहीं होता है, उसका मूल्य या उपादेयता उसमें विद्युत संचार से होती है, उसी प्रकार शरीर का मूल्य उसकी चेतना से है। चेतना के अभाव में शरीर मात्र एक शव होता है। अब प्रश्न उठता है कि चेतना का स्वरूप क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर हमें भगवान् महावीर और गौतम के बीच हुए संवाद में मिलता है। गौतम पूछते हैं –"भगवन्! आत्मा कया है और आत्मा का अर्थ या साध्य क्या है ?" महावीर उत्तर देते हैं –"गौतम! आत्मा का स्वरूप 'समत्व' है और 'समत्व' को प्राप्त कर लेना ही आत्मा का साध्य है[111] और यह समत्व की साधना ही तनावमुक्ति की साधना है। यह बात न केवल दार्शनिक दृष्टि से सत्य है, अपितु मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी सत्य सिद्ध होती है। फ्रायड नामक सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक का कथन है –चैत्त जीवन का स्वभाव यह है कि वह विक्षोभ और तनाव को मिटाकर समत्व की स्थापना करता है। विक्षोभ तनाव और मानसिक द्वन्द्वों से ऊपर उठकर शान्त, निर्द्वन्द्व मनःस्थिति को प्राप्त करना यह हमारी स्वाभाविक अपेक्षा है और यही धर्म है।

धर्म मूलतः समभाव की साधना है। यह समभाव की साधना ज्ञाता–द्रष्टाभाव या साक्षीभाव के बिना सम्भव नहीं होती और जब तक चित्त अथवा मन साक्षीभाव में रहता है, तब तक उसमें नवीन विकल्प नहीं आते हैं।

---

[110] धर्म का मर्म – डॉ. सागरमल जैन, पृ. 15

[111] आयाए सामाइए आय सामाइस्स उट्ठ – भगवतीसूत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विकल्प मुक्त शांत चित्त में तनाव उत्पन्न नहीं होते हैं, क्योंकि इच्छा, आकांक्षा और अपेक्षा रूपी लहरें चित्त को अशांत बनाती हैं और अशांत चित्त में स्वस्वरूप का चिंतन नहीं होता है। जिस प्रकार पानी में यदि मिट्टी आदि गन्दगी मिली हो, और हवा के झोंकों से लहरें उठ रही हैं तो तल की वस्तु नहीं दिखाई देती है, उसी प्रकार जब तक चित्त या मन में चंचलता रहती है, तब तक साक्षीभाव की साधना जो धर्म का मूल आधार है, सम्भव नहीं है। पुनः धर्म के स्वरवभाव की चर्चा करते हुए यही कहा जाएगा कि समता से ही साक्षीभाव उत्पन्न होता है, किन्तु मानवीय व्यवहार ममता पर आधारित होता है, जो तनाव का हेतु है। डॉ. सागरमल जैन ने समता को धर्म व ममता को अधर्म कहा है।[112] जब सुख–दुःख, मान–अपमान, लाभ–हानि आदि की अनुकूल परिस्थितियों में मन में संतोष न हो, चाह और चिंता बनी रहे और प्रतिकूल स्थितियों में मन दुःख और पीड़ा से भर जावे तो हमें समझ लेना चाहिए कि यह तनाव है, विभाव है और जो विभाव है, वह स्वस्वभाव नहीं हो सकता, जो स्वस्वभाव नहीं हो सकता है, वह धर्म भी नहीं है, अपितु अधर्म ही है।

धर्म वह है जिसमें व्यक्ति अनुकूल–प्रतिकूल स्थितियों में अपने मन को, अपनी चेतना को निराकुल बनाए रखें, मानसिक समता व शांति को भंग नहीं होने देवें। यही तनावमुक्ति का प्रयास है।

आदरणीय गोयनकाजी ने बहुत ही सुन्दर बात कहकर कुछ ही पंक्तियों में तनावमुक्ति का मार्ग प्रशस्त किया है –

सुख दुःख दोनों एक से, मान और अपमान।
चित्त विचलित होवे नहीं, तो सच्चा कल्याण।।
जीवन में आते रहे पतझड़ और बसंत।
मन की समता न छूटे, तो सुख शांति अनंत।।
विषम जगत में चित्त की समता रहे अटूट।
तो उत्तम मंगल जगे, होये दुःखों से छूट।।

---

[112] धर्म का मर्म – डॉ. सागरमल जैन, पृ.20

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेश्या परिवर्तन से तनावमुक्ति –

लेश्याओं के परिवर्तन करने की प्रक्रिया ही सही रूप में तनावमुक्ति की प्रक्रिया है। जैनधर्म भावना प्रधान धर्म है। लेश्या का सिद्धांत भी भावों पर ही निर्भर है। जैसे भाव होते हैं, वैसी ही उसकी लेश्या होती है। भाव परिवर्तन के साथ ही लेश्या परिवर्तन होता है, साथ ही लेश्या परिवर्तन से भी भाव परिवर्तन हो सकता है। दोनों ही एक–दूसरे से प्रभावित होते हैं। भाव शुभ या शुद्ध हो तो लेश्या स्वतः ही शुभ या शुद्ध हो जाती है। जैनदर्शन में ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं। राजा प्रसन्नचंद्र ने सारा राजपाट छोड़कर दीक्षा ग्रहण कर ली। एक समय जब वे ध्यान में खड़े थे, तब उधर से राजा श्रेणिक अपनी सेना के साथ भगवान् महावीर के दर्शनार्थ जा रहे थे, तभी एक सैनिक ने कहा –देखो यह वही राजा हैं, जिसने अपने पुत्र को अल्प आयु में छोड़कर दीक्षा ले ली और अब मंत्रीगण उस बालक को मारकर राज्य हड़पने की साजिश कर रहे हैं। इधर राजा श्रेणिक ने भगवान् महावीर को वन्दना करके पूछा कि मुनि प्रसन्नचन्द्र काल करके कहाँ जाएंगे, तब प्रभु ने कहा कि अगर अभी काल करे तो सातवीं नरक में जाएंगे। राजा ने पुनः प्रश्न किया – प्रभु! उन्होंने तो धर्म आराधना की है, तो वे नरक में क्यों जाएंगे? तब भगवान ने कहा कि अगर अब काल करे तो सर्वाथसिद्ध देव बनेंगे। यह सुनकर राजा को आश्चर्य हुआ, इतने में देवदुंदभी बजी, तब प्रभु ने कहा –मुनि प्रसन्नचंद्र केवलज्ञान प्राप्त कर सिद्ध हो गए। राजा ने आश्चर्य से इसका कारण पूछा, तब प्रभु ने कहा –जब तुमने पहला प्रश्न किया तब मुनि भावों से युद्ध कर रहा था, उसके मन में यह विचार चल रहा था कि मेरे मंत्रियों ने मेरे साथ विश्वासघात किया है। मैं उन सबका संहार कर दूंगा। अगर उस समय काल करते तो सातवीं नरक में जाते। जैसे ही उन्होंने अपना मुकुट ठीक करने के लिए हाथ उठाया तो विचार आया ओहो! मैं तो मुनि हूं और पश्चाताप के कारण विशुद्ध भाव आए तब मैंने कहा सर्वार्थसिद्ध देव बनेंगे। पश्चाताप करते–करते उन्हें केवलज्ञान हो गया और सिद्ध हो गए और पंचम गति को प्राप्त हो गए। जैसे भाव होते हैं, वैसी ही लेश्या बनती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जैनदर्शन में चित्तवृत्ति के बदलने के फलस्वरूप उस व्यक्ति की चेतना का स्तर और उसका व्यवहार भी बदल जाता है, अतः व्यक्ति के बंधन और मुक्ति का सारा खेल उसकी मानसिक स्थिति पर निर्भर होता है। देश, काल, परिस्थिति के साथ बदलता हुआ मनुष्य का चित्त भिन्न–भिन्न रूपों में सामने आता है और उसी से उसकी लेश्या का भी निर्धारण होता है। लेश्या की विशुद्धि के लिए भावों का शुद्ध होना आवश्यक है। "लेश्या विशुद्धि के लिए भावो के प्रति जागरूकता आवश्यक है।"[113]

जैनदर्शन में व्यक्ति के स्वभाव और व्यवहार को असन्तुलित बनाने का सबसे महत्त्वपूर्ण कारण लेश्या को माना जाता है। लेश्या द्रव्य–कर्म के साथ जुड़कर शुभ–अशुभ मनोभावों की संरचना करती है। अशुभ लेश्याओं में व्यक्ति का व्यक्तित्व अविकसित, असन्तुलित और तनावपूर्ण हो जाता है। उसका आचरण भी तदनुसार ही होता है। इसी कारण व्यक्ति का दृष्टिकोण सम्यक् नहीं बन पाता है। उसकी बुद्धि भ्रमित हो जाती है। कषाय की तीव्रता बढ़ जाती है। विवेक रहित और कषाय सहित व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन खो देता है। वह तनाव की तीव्रता से ग्रस्त बन जाता है। जिसके परिणामस्वरूप उसकी भावना भी मलिन हो जाती है। अशुभ लेश्या मन को चंचल बना देती है। मन की चंचलता व्यक्ति को स्वार्थी बना देती है। उसमे समायोजन एवं परिस्थितियों के साथ समझौता करने की क्षमता क्षीण हो जाती है। कु. शांता जैन अपनी पुस्तक लेश्या और मनोविज्ञान में लिखती हैं कि –"बिना समायोजन के शारीरिक, मानसिक और भावात्मक व्यक्तित्व के विघटन की संभावनाऐं बनी रहती हैं।"[114] ऐसी स्थिति में तनाव मिटाने के लिए किया गया प्रयास भी सफल नहीं हो पाता।

---

[113] लेश्या का मनोवैज्ञानिक अध्ययन – कु. शान्ता जैन, पृ. 23

[114] लेश्या और मनोविज्ञान – कु. शांता जैन, पृ. 148

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपर्युक्त स्थिति को समाप्त करने के लिए व्यक्ति को अशुभ से शुभ लेश्याओं **की ओर प्रस्थान** करना होगा। जब शुभ लेश्याएँ सक्रिय होती हैं, व्यक्ति का स्वभाव, उसका व्यवहार विनम्र हो जाता है। जैनदर्शन के अनुसार व्यक्ति के आत्म परिणामों में विशुद्धता आती है। सांसारिक तृष्णाओं से मुक्त होकर आत्मदर्शन की यात्रा पर चल पड़ता है और अंत में पूर्णतः तनावमुक्त मोक्ष अवस्था को प्राप्त करता है।

मनोविज्ञान की भाषा में शुभ लेश्या वाला व्यक्ति तनावमुक्ति की दिशा में अग्रसर होता है। उसमें निम्न परिवर्तन घटित होते हैं –

1. आंतरिक द्वन्द्वों से मुक्त -- अशुभ लेश्या में व्यक्ति बार–बार आंतरिक द्वन्द्व का अनुभव करता है। द्वन्द्व की स्थिति में व्यक्ति समय पर सही निर्णय नहीं ले पाता, जिसके परिणाम स्वरूप भी तनाव उत्पन्न हो जाते हैं। द्वन्द्व की तीव्रता व्यक्ति की शक्ति, समय और मानसिक संतुलन को नष्ट कर देती है। "द्वन्द्व निराकरण हेतु शुभ लेश्याओं का होना जरूरी है। जब तेजस लेश्या जागती है, तब निर्द्वन्द्वता, आत्म नियंत्रण की शक्ति और तेजस्विता प्रकट होती है।"[115] द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं, उचित समय पर सही निर्णय लेने की क्षमता बढ़ जाती है।

2. समस्याओं का समाधान – जीवन में समस्याएँ आती रहती हैं। ये समस्याएँ ही सम्यक् जीवन शैली की कसौटी है और इन कसौटियों में सफल होने के लिए शुभ लेश्या का होना आवश्यक है। शुभ लेश्या वाला व्यक्ति किसी भी समस्या का समाधान सोच–समझकर करता है। उसकी बुद्धिमत्ता से ही समस्याओं का सही समाधान होता है।

3. विषम परिस्थितियों में समायोजन -- तनाव का एक कारण यह भी है कि व्यक्ति विषम परिस्थितियों में समायोजन नहीं रख पाता। उसमें जीवन की परिस्थितियों को यथार्थ रूप में ग्रहण करने की क्षमता नहीं होती है। शुभ लेश्या से व्यक्ति जीवन–यात्रा की परिस्थितियों को यथार्थ रूप में ग्रहण करता है।

---

[115] लेश्या और मनोविज्ञान -- कु. शांता जैन, पृ. 149

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सत्य को स्वीकार करता है, चाहे वह सत्य उसके दुःख का कारण बने। सत्य को स्वीकार करने से, उस सत्य को समझने से व्यक्ति में समायोजन की क्षमता का विकास होता है, जो व्यक्ति को तनावमुक्त रखती है। फलतः व्यक्ति "परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को ढालता है।"[116]

4. **कर्त्तव्यनिष्ठ** – तनावमुक्त व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करता है और कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति ही तनावमुक्त हो सकता है। "वह अपने मित्रों, सहयोगियों, समाज और राष्ट्र के प्रति निष्ठा रखता है।"[117] उस पर जो भी उत्तरदायित्व सौंपा जाता है, उसका सम्यक् रूप से पालन करता है और सम्पूर्ण निष्ठा के साथ अपने कर्त्तव्य को सम्पन्न करता है।

5. **आत्मसंयमी** – जैनदर्शन के अनुसार शुभ लेश्या वाला व्यक्ति आत्मसंयमी हो जाता है। आत्मसंयमी का अर्थ है –स्वयं पर नियंत्रण का भाव। वह अपनी इन्द्रियों को, मन को और उन दोनों से उत्पन्न इच्छाओं और आकांक्षाओं पर नियंत्रण करने में सफल होता है। शुभ लेश्या से आत्मपरिणामों में विशुद्धि आती है, कषायों की मन्दता होती है और व्यक्ति धीरे–धीरे शुक्ललेश्या की ओर अग्रसर होता है, जो पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था है।

6. **शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ** – व्यक्ति जब अशुभ लेश्याओं से ग्रसित होता है तब उसके व्यवहार में दुष्ट प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति होने लगती है, जिसके परिणामस्वरूप वह शारीरिक और मानसिक दोनों रूप से अस्वस्थ हो जाता है। शुभ लेश्या इस अस्वस्थता को स्वस्थता में बदल देती है। व्यक्ति मानसिक तौर पर संतुष्ट एवं संतुलित हो जाता है। मानसिक अस्वस्थता ही शारीरिक अस्वस्थता का मूल कारण है, जब मानसिक स्वस्थता होती है, तो शारीरिक स्वस्थता स्वतः ही आ जाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो शुभ लेश्या शारीरिक तनाव और मानसिक तनावों से मुक्त करती है।

---

[116] लेश्या और मनोविज्ञान – कु. शांता जैन, पृ. 150

[117] लेश्या और मनोविज्ञान – कु. शांता जैन, पृ. 150

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बदलना प्रकृति का नियम है और यह शाश्वत नियम भी है। समय, शक्ति, कार्य करने की क्षमता, पुरुषार्थ में कमी आदि सभी प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। इस प्रकार व्यक्ति का स्वभाव भी बदलता है, उसके भाव भी परिवर्तित होते रहते हैं। कभी अशुभ लेश्या से शुभ लेश्या में और कभी शुभ लेश्या से अशुभ लेश्या में परिवर्तित होता रहता है। लेश्या (मनोवृत्ति) का यह परिवर्तन व्यक्ति के व्यवहार एवं स्वभाव में भी परिवर्तन कर देता है।

लेश्याओं बदलाव की प्रक्रिया में लेश्या–ध्यान सशक्त भूमिका निभाता है। लेश्या और ध्यान में गहरा सम्बन्ध है। जब व्यक्ति आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान में होता है तो अशुभ लेश्या होती है और जब धर्मध्यान और शुक्लध्यान होता है तो शुभ लेश्या होती है। अशुभ विचार एवं कुत्सित व्यवहार अशुभ लेश्या को जगाते हैं और शुभ विचार एवं सम्यक् व्यवहार शुभ लेश्या को जगाते हैं, अतः "व्यक्तित्व परिष्कार का महत्त्वपूर्ण सूत्र –लेश्या का विशुद्धिकरण है।"[118]

लेश्या–ध्यान का सिद्धांत रंगों पर आधारित है। मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि रंग एक माध्यम है हमारे विचारो, आदर्शों, संवेगों, क्रियाओं और अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का। फेबर बिरेन (Faber Birren) रंग रूचि को संवेदन, ज्ञान और चिन्तन का परिणाम मानते हैं। साउथआल (Southall) का मानना है कि –"रंग न तो चमकदार वस्तु का गुण है और न ही चमकदार विकिरण का, यह सिर्फ चेता का विषय है।"[119]

जैन दर्शन में आध्यात्मिक अशुद्धि का हेतु भावों के साथ कर्म वर्गणाएँ भी मानी गई हैं। जैनदर्शन के अनुसार कर्म वर्गणाएँ पौद्गलिक हैं और पुद्गल में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श पाए जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि पौद्गलिक कर्मों का प्रभाव हमारी आध्यात्मिक विशुद्धि पर भी पड़ता है। कर्मों की जितनी–जितनी निर्जरा होती है, उतनी–उतनी आत्मा विशुद्ध होती है। इससे यह सिद्ध

---

[118] लेश्या और मनोविज्ञान – कु. शांता जैन, पृ. 197

[119] Faber Birren, Colour Psychology and colour Therapy. P. 184

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

होता है कि आत्म–विशुद्धि का सम्बन्ध द्रव्य वर्गणाओं की निर्जरा के साथ रहा हुआ है। आत्मा की विशुद्धि का सीधा सम्बन्ध रंगों के साथ नहीं है, किन्तु आत्मा के मलिन परिणामों का सम्बन्ध कर्मवर्गणाओं के साथ होने के कारण और कर्मवर्गणाओं का सम्बन्ध रंगों के साथ होने के कारण आत्मविशुद्धि का संबंध भी रंगों से जोड़ा जा सकता है, क्योंकि कर्मवर्गणाएँ जितनी कम और जितनी विशुद्ध होंगी, उतनी ही भावों की विशुद्धि होती है। इसी कारण से यह माना गया है कि शुभ लेश्याओं में भी उज्ज्वल एवं प्रशस्त रंग पाए जाते हैं। लेश्याएँ जितनी–जितनी मात्रा में अशुद्ध होती है, उनके रंग भी कृष्ण, मलिन, अप्रकाशक और अशुद्ध होते हैं। इस प्रकार रंगों का सम्बन्ध हमारी आध्यात्मिक शुद्धि और अशुद्धि से भी है। जब रंगों का सम्बन्ध हमारी आध्यात्मिक शुद्धि और अशुद्धि से हो तब मानसिक संतुलन और आत्मा की शुद्धि के लिए रंगों का ध्यान किया जा सकता है। जैनदर्शन में इसे लेश्या–ध्यान की साधना कहा जाता है। जैसी कर्मवर्गणाएँ आती हैं, वैसी ही हमारी भावधारा होती है। आत्मा का अपना कोई रंग नहीं होता। जिस रंग की कर्मवर्गणाएँ आती हैं, आत्मा के द्रव्य कर्मजन्य परिणाम भी वैसे ही रंग के हो जाते हैं और जैसे रंग कर्मजन्य परिणामों के होंगे वैसी ही हमारी लेश्या होगी। इसलिए लेश्या की शुद्धि के लिए लेश्या/रंग–ध्यान प्रक्रिया अपनानी होगी।

लेश्या ध्यान प्रक्रिया – लेश्या ध्यान का प्रयोग प्रेक्षा–ध्यान साधना पद्धति का एक सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है। प्रेक्षा–ध्यान के प्रणेता आचार्य महाप्रज्ञजी ने लेश्या–ध्यान की निम्न सरल विधि बताई है –

ध्यान की विधि[120] –

प्रथम चरण –

कायोत्सर्ग (relaxation) –पैर से सिर तक शरीर को छोटे–छोटे हिस्सों में बांटकर प्रत्येक भाग पर चित्त को केन्द्रित कर, स्वत सूचन (auto-suggestion)

---

[120] प्रेक्षा ध्यान : लेश्या–ध्यान, आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 37–38

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के द्वारा **शिथिलता का** सुझाव देकर पूरे शरीर को शिथिल करना है। पूरे ध्यान–काल तक इस कायोत्सर्ग की मुद्रा को बनाए रखना है, तथा शरीर को अधिक से अधिक स्थिर और निश्चल रखने का अभ्यास करना होगा। (5 से 7 मिनट)

द्वितीय चरण –

अन्तर्यात्रा – रीढ़ की हड्डी के नीचे के छोर (शक्तिकेन्द्र) से मस्तिष्क के ऊपरी छोर (ज्ञान–केन्द्र) तक सुषुम्ना (Spinal Cord) के भीतर चित्त को नीचे से ऊपर, ऊपर से नीचे घुमाया जाता है। पूरा ध्यान सुषुम्ना में केन्द्रित कर वहां होने वाले प्राण के प्रकम्पनों (Vibrations) का अनुभव किया जाता है। (5 से 7 मिनट)

तीसरा चरण –

लेश्या–ध्यान – चित्त को आनन्द–केन्द्र पर केन्द्रित कर चमकते हुए हरे रंग का ध्यान करना है। हरे रंग का श्वास लेना है –प्रत्येक श्वास के साथ हरे रंग के परमाणु भीतर जा रहे हैं – ऐसा अनुभव करना है। 2–3 मिनट बाद कल्पना करना है कि आनन्द–केन्द्र से निकलकर हरे रंग के परमाणु शरीर में चारों ओर फैल रहे हैं तथा पूरा आभामण्डल हरे रंग के परमाणुओं से भर रहा है। 2–3 मिनट पश्चात् भावना के द्वारा अनुभव करना है, भावधारा निर्मल हो रही है।

इसी प्रकार विशुद्धि–केन्द्र पर नीले रंग, दर्शन–केन्द्र पर अरूण रंग, ज्ञान–केन्द्र (या चाक्षुष केन्द्र) पर पीले रंग की और ज्योति–केन्द्र पर श्वेत रंग का ध्यान किया जाता है। इन केन्द्रों पर ध्यान करने के साथ जो भावना की जाती है, वह इस प्रकार है –

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केन्द्र	रंग	भावना / अनुभव
आनन्द	हरा	भावधारा की निर्मलता
विशुद्धि	नीला	वासनाओं का अनुशासन
दर्शन	अरूण	अन्तर्दृष्टि का जागरण–आनन्द का जागरण
ज्ञान (चाक्षुष)	पीला	ज्ञानतंतु की सक्रियता (जागृति)
ज्योति	श्वेत	परम शान्ति–क्रोध, आवेग, उत्तेजनाओं की शान्ति।

लेश्याओं का नामकरण रंगों के आधार पर ही किया गया है और जैसा नाम है, वैसा ही ध्यान करते हुए अंतिम लेश्या तक अर्थात् लेश्या के अंतिम रंग तक पहुंचना है। लेश्या के नाम एवं उनके रंग निम्न हैं[121] –

1. कृष्ण लेश्या – काला रंग
2. नील लेश्या – नीला रंग
3. कापोत लेश्या – कापोत (बैंगनी) रंग
4. तेजो लेश्या – लाल (अरूण) रंग
5. पद्म लेश्या – पीला रंग
6. शुक्ल लेश्या – श्वेत रंग

काला रंग – कृष्ण लेश्या का वर्ण काला है, अतः कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति का ध्यान कृष्ण वर्णी ही होता है। इस लेश्या में रहा हुआ व्यक्ति कभी भी, एक क्षण के लिए भी तनावमुक्ति का अनुभव नहीं कर सकता, क्योंकि उसमें हिंसा, क्रूरता आदि मलिन वृत्तियों का उद्भव होता रहता है। इसी कारण उसका आभामण्डल भी काला होता है। साधना की अपेक्षा से यह कहा जाता है कि ऐसे व्यक्ति को काले रंग का अर्थात् अपनी कलुषवृत्ति का परिमार्जन करना चाहिए। वृत्तियों के परिमार्जन से यह काला रंग बैंगनी रंग में परिवर्तित हो जाता है। बैंगनी रंग स्वास्थ्य केन्द्र को संयमित करता है। मनोवैज्ञानिकों के अध्ययन के

---

[121] उत्तराध्ययनसूत्र – मधुकर मुनि – 34/4–9

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आधार पर बैंगनी रंग की यह विशेषता है कि उसमें किंचित लाली भी होती है, अर्थात् अशुभवृत्तियों की गहन कालिमा में प्रकाश का एक कण उद्‌भूत होता है। अतः एक अपेक्षा से आध्यात्मिक विकास की दिशा में उठा यह प्रथम चरण है।

आचार्य महाप्रज्ञ के अनुसार बैंगनी रंग उपरी मस्तिष्क को पोषण देने वाला रंग है।[122]

कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति को अपना ध्यान इस प्रकार केन्द्रित करना चाहिए कि गहन अंधकार में प्रकाश की किरण का उद्‌भव हो रहा है, जिससे वह काला रंग बैंगनी रंग में परिवर्तित हो रहा है। कृष्ण लेश्या वाले व्यक्ति की साधना कृष्ण वर्णी दुष्प्रवृत्तियों के शोधन के लिए होती है। जब कृष्ण लेश्या वाला व्यक्ति ऐसा ध्यान करता है, तो उसकी दुर्भावनाएँ अंशतः कम होती हैं। इसलिए काला रंग बैंगनी रंग में परिवर्तित हो रहा है, ऐसा ध्यान करना चाहिए।

नीला रंग – नील लेश्या वाला व्यक्ति कृष्ण लेश्या वाले से कुछ कम क्रूर होता है, पर इसका रंग भी ध्यान करने योग्य नहीं है, किन्तु –"योग की अपेक्षा से लेश्याध्यान का साधक काले रंग का परिमार्जन करता हुआ बैंगनी और बैंगनी से कापोत वर्ण पर अपना ध्यान केन्द्रित करता हुआ आध्यात्मिक विकास में किंचित प्रगति करता है।[123]

नील लेश्या वाला व्यक्ति कृष्ण से कुछ ठीक होता है। उसे मन की पूर्ण शांति तो नहीं मिलती, पर शारीरिक स्वस्थता जरूर प्राप्त होती है, जो कहीं–ना–कहीं मानसिकता पर भी प्रभाव डालती है। नीले रंग का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि वह हरे रंग में बदल जाए।

कापोत रंग – "आधुनिक विज्ञान ने कापोत रंग के स्थान पर हरा रंग माना है।[124] वस्तुतः यह रंग भी ध्यान करने योग्य तो नहीं है, पर काले व नीले

---

[122] प्रेक्षाध्यान : लेश्या ध्यान, पृ. 23

[123] जैन योग–साधना – आत्मारामजी, पृ.340

[124] वही – पृ. 341

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रंग की अपेक्षा से ध्यान करने योग्य है। कापोत लेश्यावाला व्यक्ति उपर्युक्त दोनों लेश्या की अपेक्षा से तो शुभ है, परन्तु यह भी अशुभ लेश्या ही मानी जाती है, क्योंकि कापोत लेश्या वाला व्यक्ति बाहर से कुछ और अंदर से कुछ और ही प्रतीत होता है। वह अपने दुर्गुणों को छिपाकर सद्गुणों को प्रकट करता है। कापोत लेश्या वाला व्यक्ति हरे रंग का ध्यान करता है। हरा रंग रक्तवाहिनी, नाड़ियों का तनाव उपशांत करता है।[125]

जब व्यक्ति में भावनात्मक गड़बड़ी होती है, तब हरे रंग की किरणें मष्तिष्क पर डालकर चिकित्सा की जाती है, किन्तु साथ--साथ यह ईर्ष्या, द्वेष और अंध– विश्वास का सूचक भी है।[126] हरे रंग का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए कि उसके गुणों का ही असर हो।

लाल रंग – लाल रंग शुभ और उत्तम माना जाता है। तेजोलेश्या को भी शुभ लेश्या कहा जाता है। तेजोलेश्या वाला व्यक्ति लाल रंग का ध्यान करता है। लाल रंग निर्माण का रंग है। यह लाल रंग हमारे शरीर में एक ऊर्जा उत्पन्न करता है। यह ऊर्जा पहले हमारे शरीर के रसायनों में परिवर्तन करती है जिससे धीरे–धीरे हमारी आदतों में भी परिवर्तन आना प्रारम्भ हो जाता है। "ध्यान के माध्यम से जब यह लाल रंग प्रगट होता है, दिखने लग जाता है, तब इस लाल रंग के अनुभव से, तैजस लेश्या के स्पन्दनों की अनुभूति से अन्तर्जगत् की यात्रा प्रारम्भ होती है।[127]

व्यक्ति में तनाव उत्पन्न होने का स्थल मन है और उसकी अनुभूति मानसिकता को दुर्बल बना देती है। लाल रंग के ध्यान से तेजो लेश्या के परमाणु बनते हैं, तब व्यक्ति में शक्ति का संचार होता है, जिससे उसी सहनशीलता बढ़ती है, मन की दुर्बलता समाप्त हो जाती है। तनावयुक्त स्थिति से बाहर आने की और उनको समाप्त करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है।

---

[125] प्रेक्षा ध्यान : लेश्या ध्यान – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 22

[126] प्रेक्षा ध्यान : लेश्या ध्यान – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 45

[127] प्रेक्षा ध्यान : लेश्या ध्यान – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 45

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य का मन इतना कोमल और नाजुक है, कि वह थोड़ी भी प्रतिकूल स्थिति को सह नहीं सकता, वह टूट जाता है, तनावग्रस्त हो जाता है। इस दुर्बल मन को लाल रंग के ध्यान से शक्तिशाली मन के रूप में परिवर्तित किया जा सकता है। शक्तिशाली मन हर परिस्थिति में घबराता नहीं है, अपितु स्वयं के मनोबल को और मजबूत करता है। तनावपूर्ण स्थिति में भी स्वयं को तनावमुक्त बनाने का प्रयास करता है और जिसमें वह सफल भी होता है।

डॉ. शांता जैन के विचार हैं कि यदि जड़ता, अवसाद, भय, उदासी की भावनाओं पर नियंत्रण करना हो; वासनाओं और इच्छाओं पर विजय पानी हो, घृणा, क्रोध, स्वार्थता, लालच, निर्दयता, मारकाट की प्रवृत्ति आदि निषेधात्मक वृत्तियों, जो तनाव के हेतु हैं, से मुक्त होना हो तो लाल रंग का ध्यान करना उपयोगी रहता है।[128]

उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियाँ तनाव उत्पन्न करने वाली हैं, इन वृत्तियों से मुक्ति ही तनावमुक्ति है।

पीला रंग – पदम् लेश्या का रंग पीला है। पीला रंग उच्च बुद्धिमत्ता का प्रतीक है। आभामण्डल में पीतवर्ण की प्रधानता हो तो माना जा सकता है कि वह व्यक्ति अल्प कषाय वाला, प्रशान्त चित्त व तनावमुक्त और आत्म संयम करनेवाला है। व्यक्ति को लाल रंग का ध्यान करते–करते पीले वर्ण पर आना होगा और पीले रंग का ध्यान करते–करते श्वेत रंग तक का सफर तय करना होगा। पीला रंग शांत चित्त के लिए है और जब चित्त शांत होगा तो पूर्णतः शांति के लिए पीले रंग को हल्का करते हुए श्वेत रंग के ध्यान की अवस्था में पहुँच जाएगा। "पीला रंग बुद्धि और दर्शन का रंग है, तर्क का नहीं। इससे मानसिक कमजोरी, उदासीनता आदि दूर होते हैं।"[129] यह प्रसन्नता और आनन्द का सूचक रंग है।

---

[128] लेश्या और मनोविज्ञान – शांता जैन, पृ. 202
[129] प्रेक्षा ध्यान : लेश्या ध्यान – आचार्य महाप्रज्ञ, पृ. 21

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्वेत रंग -- श्वेत रंग शांति का प्रतीक है। शुक्ल लेश्या का रंग सफेद कहा गया है। पदम् लेश्या वाला व्यक्ति पीले रंग का ध्यान करते--करते उसे हल्का करने का प्रयत्न करे। पीला रंग हल्का होते--होते श्वेत वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। श्वेत रंग का ध्यान पूर्णतः तनावमुक्ति की प्रक्रिया है।

लेश्या--ध्यान की निष्पत्ति --

1. चित्त की प्रसन्नता ध्यान सिद्ध होने का सबसे पहला प्रमाण है। 2. संकल्प शक्ति का जागरण, 3. धार्मिकता के लक्षणों का प्रकटीकरण होता है। 3. ध्यान से चैतन्य का जागरण होता है, जो पूर्णतः तनावमुक्ति में सहायक तत्त्व है। 5. व्यक्ति का स्वस्थ एवं सुन्दर व्यवहार बनता है। 6. पदार्थ--प्रतिबन्धता से मुक्ति आदि।

----------000----------

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय -7 उपसंहार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अध्याय–7
उपसंहार

आज विश्व की, जो प्रमुख समस्याएं मानव समाज के सामने उपस्थित हैं, उनमें सबसे प्रमुख समस्या मानव मन के तनावग्रस्त होने की है। आज विश्व के न केवल अभावग्रस्त देश तनावग्रस्त हैं, अपितु वे देश, जो विकसित कहे जाते हैं और जिनके पास सुख–सुविधा के विपुल साधन हैं, वे भी तनावग्रस्त हैं। इस प्रकार आज सम्पूर्ण मानव समाज तनावों से ग्रस्त है। जैन चिन्तकों का कहना है कि जब तक मानव मन में इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, तृष्णा और अन्य व्यक्तियों एवं वस्तुओं से अपेक्षाएँ बनी हुई हैं, जब तक वह आत्म–संतुष्ट नहीं है, तब तक उसका तनावग्रस्त होना स्वाभाविक ही है। भारतीय चिन्तन में इसी तनावग्रस्तता को दुःख कहा गया है। कहा भी गया है कि –

धन बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान।
कोहु न सुखी संसार में, सारो जग देख्यो छान।।

बौद्धदर्शन में जिस दुःख आर्य–सत्य की कल्पना है, वह भी वस्तुतः भौतिक या शारीरिक दुःख नहीं, अपितु तृष्णाजन्य दुःख है और यह तृष्णाजन्य दुःख मानव समाज में सर्वत्र व्याप्त हैं और यही तनाव है। तृष्णा के सम्बन्ध में कहा गया है कि –

तृष्णा न जीर्णाः वयमेव जीर्णाः।
भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता।।

अर्थात् –"तृष्णा कभी वृद्ध (जीर्ण) नहीं होती है, वह तो सदैव नवयौवना ही बनी रहती है, वस्तुतः आयु ही क्षीण हो जाती है। भोगों को भोगने पर भी भोगाकांक्षा संतुष्ट नहीं होती है, आयु ही भोग ली जाती है।" यह तृष्णा ही तनावों का मूल कारण है और जब तक यह बनी रहती है, मानव तनावग्रस्त बना रहता है। मानव समाज में अन्य सभी विकृतियाँ तृष्णा या तनाव के कारण ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्पन्न होती है, अतः आज वैश्विक समस्याओं में तनाव ही प्रमुख समस्या है और इस तनाव के कारण ही जीवन दुःखमय है। मानवीय चेतना में वासना और विवेक का संघर्ष चलता है, जिसे मनोवैज्ञानिक इड (Id) या वासनात्मक चेतना और सुपर इगो अर्थात् आदर्शों की चेतना का संघर्ष कहते हैं. यही हितों का संघर्ष बनकर विभिन्न समाजों और राष्ट्रों के बीच भी व्याप्त हो जाता है।

आज विश्व का प्रत्येक देश और उसके नागरिक तनावग्रस्त हैं, क्योंकि एक ओर उनकी आकांक्षाएँ और अपेक्षाएँ अपूर्ण बनी हुई हैं, तो दूसरी ओर वे दूसरों की सम्पन्नता देखकर ईर्ष्या के कारण और उनकी सैन्य शक्ति को देखकर भय के कारण तनावग्रस्त होते हैं। ईर्ष्या एवं भय भी तनावग्रस्तता के ही रूप हैं। आज विश्व के सभी राष्ट्र एक दूसरे से भयभीत हैं और इसके परिणाम स्वरूप आज वैश्विक राजस्व का पचास प्रतिशत से अधिक व्यय सेना और सैन्य संसाधनों पर हो रहा है। चाहे तृष्णा हो, ईर्ष्या का भाव हो या भय हो, सभी व्यक्ति और समाज दोनों में तनाव उत्पन्न करते हैं। आज जब तक मानव समाज तनावमुक्त नहीं होता, हम विश्वशांति का स्वप्न साकार नहीं कर सकते हैं आज इसी भय और ईर्ष्या की प्रवृत्ति को लेकर संहारक अस्त्र शस्त्रों की अंधी दौड़ चल रही है। संसार में जो भी संघर्ष हैं, वे सब इसी तनावग्रस्तता के कारण हैं। आचारांगसूत्र में भगवान् महावीर ने बहुत पहले कहा था कि जो आतुर है, अर्थात् जिनकी इच्छाएँ, आकांक्षाएँ अपूर्ण हैं, वे तनावग्रस्त हैं और वे ही दूसरों को दुःख या पीड़ा देकर तनावग्रस्त बनाते हैं। दूसरी ओर संहारक अस्त्रों की इसी अंधी दौड के कारण आज सभी राष्ट्रों में पारस्परिक भय और अविश्वास बना हुआ है। इसलिए ही भगवान् महावीर ने कहा कि शस्त्र तो एक से बढ़कर एक हो सकते हैं, किन्तु अशस्त्र (अहिंसा) से बढ़कर कुछ नहीं है। दूसरे शब्दों में कहें तो शस्त्रों की इस अंधी दौड़ का कोई अंत नहीं है। आज एक से बढ़कर एक भयंकर अस्त्र निर्मित हो रहे हैं, और विश्व बारूद के ढेर पर बैठा हुआ है। व्यक्ति को अंततोगत्वा अहिंसा व शांति को ही अपनाना होगा। साथ ही उन्होंने यह भी कहा था कि यदि हम भयमुक्त होना चाहते हैं, तो हमें भी दूसरों को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भयभीत नहीं करना चाहिए। यदि कोई राष्ट्र दूसरे को भयभीत करके जीना चाहेगा, तो वह भी भय से मुक्त नहीं रह सकता है। इसीलिए उत्तराध्ययनसूत्र में कहा गया है कि –"यदि तुम अभय चाहते हो, अर्थात् निर्भय होना चाहते हो तो दूसरों को भी अभय प्रदान करो, उन्हें भी निर्भय बनाओ। व्यक्ति समाज या राष्ट्र कोई भी हो, दूसरों को भयभीत करके स्वं को भय रहित नहीं बना सकता है। भय मिटेगा तो पारस्परिक विश्वास एवं परोपकार की वृत्ति से, न कि संहारक अस्त्रों से दूसरों को भयभीत करके।

इस प्रकार जैनदर्शन में जहाँ एक ओर तनावों के कारणों का प्रस्तुतिकरण एवं उनकी समीक्षा की गई है, वहीं दूसरी ओर उसने तनावमुक्त होने के सूत्र भी प्रस्तुत किए हैं। इस प्रकार जैन धर्मदर्शन तनावों के सम्यक् प्रबंधन की बात करते हुए व्यक्ति के सामने तनावमुक्त होने का आदर्श भी प्रस्तुत करता है। वह एक ओर तनावों के कारणों को बताता है तो दूसरी ओर तनावों के निराकरण के सूत्र भी प्रदान करता है। इसलिए प्रस्तुत शोध–ग्रन्थ में हमने एक ओर तनावों के स्वरूप को समझाया है, तो साथ ही उसके कारणों का विश्लेषण भी किया है। और अंत में यह बताने का प्रयास किया है कि तनावों के कारणों को समाप्त करके ही, तनाव को समाप्त किया जा सकता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति अर्थात् तनाव मुक्ति के लिए हमने प्रस्तुत शोध–ग्रन्थ को छह अध्यायों में विभक्त कर जैन दृष्टिकोण से तनाव प्रबंधन का एक समग्र चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

शोध–प्रबंध के **प्रथम अध्याय** में वर्तमान वैश्विक समस्याओं में एक प्रमुख समस्या तनाव के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। तनाव मानव समाज की समस्या होने के कारण ही विश्व की एक मुख्य समस्या बन गई है। वर्तमान युग को वैज्ञानिक युग कहा जाता है, क्योंकि विज्ञान ने व्यक्ति की इन समस्याओं का समाधान करने के हेतु एवं उसे अपने दुःखों से मुक्ति देने के लिए सुख–सुविधा के सारे साधन प्रदान किए हैं। इतना ही नहीं, मानव समाज को भयमुक्त करने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के लिए सुरक्षा के साधन भी उपलब्ध कराएं हैं, फिर भी आज व्यक्ति न तो संतुष्ट है और न भय–मुक्त और इनके कारण उसके जीवन में सुख एवं शांति भी नहीं है। चेतना के स्तर पर मन में आनंद एवं प्रसन्नता भी नहीं है। सुख–सुविधा के इतने सारे साधनों के होते हुए वह न तो संतुष्ट है तथा सुरक्षा के सारे साधन होते हुए भी वह भयमुक्त नहीं है। असंतुष्ट और भयग्रस्त होने के कारण वह तनावमुक्त भी नहीं है।

वर्तमान में विश्व को एक नहीं, अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है और उन समस्याओं के समाधान के प्रयास में भी नई–नई समस्याओं का जन्म हो रहा है, जो मनुष्य के आत्म–संतोष और आत्मशान्ति को छीनकर उसे तनावग्रस्त ही बना रही है। शोध–प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में हमने इस पर विस्तार से चर्चा की है।

वस्तुतः तनाव के अनेक रूप हैं। भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में भिन्न–भिन्न तरह के तनाव उत्पन्न होते हैं और इन तनावों का प्रभाव हमारे शरीर एवं स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। अतः इस प्रथम अध्याय में हमने तनाव के स्वरूप को समझाते हुए उसके विभिन्न प्रकारों को भी परिभाषित किया है। इस चर्चा से यह भी स्पष्ट हुआ कि तनाव न तो केवल एक दैहिक या मानसिक स्थिति है, अपितु एक **मनोदैहिक अवस्था** है। इसी सन्दर्भ में हमने यह भी बताया है कि मन और शरीर एक–दूसरे से निरपेक्ष नहीं है। वे एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं, अतः जैनदर्शन उनमें न तो स्पीनोज़ा के समानान्तरतावाद के सिद्धान्त को स्वीकार करता है और न वह लाइब्मीज के पूर्व–स्थापित–सांमजस्य के सिद्धान्त को मानता है, अपितु वह देकार्त के क्रिया–प्रतिक्रियावाद के सिद्धान्त को मान्यता देता है। इसी आधार पर वह यह मानता है कि तनावों से व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव पड़ता है। इस बात का उल्लेख भी इस अध्याय में किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जैनदर्शन यह मानता है कि चित्त या मन का अशांत होना ही तनाव है, जिसका शरीर पर प्रभाव पड़ता है। तनाव–प्रबंधन के मनोवैज्ञानिक अर्थ के आधार को स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि दैहिक एवं मानसिक प्रक्रियाओं का विचलन ही तनाव है। दैहिक स्तर पर होने वाले असामान्य परिवर्तन को तनाव कहा गया है, किन्तु तनावों का एक मानसिक पक्ष भी है। वह मन के उत्पीड़न की अवस्था है। तनाव को एक दैहिक संवेदना के रूप में देखा जा सकता है, किन्तु जैनदर्शन के अनुसार तनाव का जन्म मन या चित्त की चंचलता या अस्थिरता या विकल्पयुक्तता से ही होता है। आधुनिक मनोवैज्ञानिकों की भूल यह है कि वे तनाव के दैहिक पक्ष की असामान्य–अवस्था को ही तनाव मान रहे हैं, किन्तु उसके पीछे रहे हुए मानसिक हेतु को विस्मृत कर देते हैं। इसलिए इस अध्याय में तनाव प्रबंधन के लिए उसके मानसिक एवं आध्यात्मिक पक्ष पर भी विस्तार से विवेचन किया गया है।

जैनधर्मदर्शन का यह मानना है कि मन की वृत्तियाँ और उनके दैहिक प्रभाव का नाम ही तनाव है और इस के विपरीत आत्मा या चेतना की निर्विकल्पदशा ही तनावमुक्ति है। वस्तुतः जैनग्रन्थों में तनाव शब्द का उल्लेख कहीं नहीं मिलता है, किन्तु उनमें इसके पर्यायवाची अनेक शब्दों का उल्लेख मिलता है, जैसे -- दुःख, चिन्ता, आतुरता, आर्तता, चिन्ता भय आदि।

सामान्य व्यक्ति का यह मानना है कि भौतिक सुख–सुविधाएँ व्यक्ति को तनावमुक्त बनाती हैं। जितने सुख–सुविधा के साधन अधिक होंगे, व्यक्ति को उतनी ही अधिक सुख–शांति प्राप्त होगी, किन्तु ऐसा होता तो अमेरिका या अन्य विकसित देश पूर्णतः सुखी व तनावमुक्त होते, किन्तु स्थिति यह है कि आज वे सर्वाधिक तनावग्रस्त हैं। मस्तिष्क के स्थिलीकरण की दवाईयों या नींद की गोलियों की खपत इन्हीं देशों में सबसे अधिक होती है। जैन धर्म में तो भौतिक सुख की लालसा को भी दुःख का हेतु ही कहा है। भौतिक सुख की चाह अतृप्तता की निशानी है, चाहे एक इच्छा पूर्ति होने पर क्षणिक तृप्ति मिलती हो,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु नवीन इच्छा के जन्म से मन तो शीघ्र ही अतृप्त और अशान्त हो जाता है। अतृप्त मन ही तनावग्रस्त होता है, अतः तनावमुक्ति का एकमात्र साधन आध्यात्मिक विकास द्वारा चित्त निर्विकल्प स्थिति ही है।

इस प्रथम अध्याय में यह भी बताया गया है कि आज तनाव प्रबंधन के लिए आध्यात्मिक प्रबंधन की आवश्यकता हैं, क्योंकि जैनदर्शन में तनाव का मुख्य कारण राग–द्वेष एवं कषाय माने गये हैं। आचारांगसूत्र में कई स्थानों पर यह कहा गया है कि संसार के परिभ्रमण एवं दुःख (तनाव) का कारण राग–द्वेष एवं कषाय हैं। उत्तराध्ययनसूत्र में कषाय को अग्नि की उपमा दी गई है, जो आत्मा के सद्गुणों को जलाकर नष्ट कर देती है। व्यक्ति के संतोष, सरलता आदि सद्गुण ही उसके जीवन में शांति स्थापित करते हैं और इनके अभाव में व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है। तत्त्वार्थसूत्र और उसकी टीकाओं में कषायों का, जो स्वरूप दिया है, उसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि तनाव (दुःख) का कारण कषाय या 'पर' के प्रति आसक्ति या ममत्ववृत्ति (राग) ही है। परवर्तीकालीन जैन ग्रंथों में जैसे– प्रशमरति एवं विशेषावश्यकभाष्य आदि में भी विभिन्न नयों के आधार पर राग–द्वेष एवं कषायों का जो सह–सम्बन्ध बताया गया है, उसकी चर्चा भी मैंने इस प्रथम अध्याय में की है।

द्वितीय अध्याय में विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर तनावों के कारणों का विश्लेषण किया गया है। इनमें सर्वप्रथम आर्थिक स्थिति को भी तनाव का एक कारण बताया गया है। जैनदर्शन में आर्थिक विपन्नता के साथ–साथ धन–संचय या परिग्रह की वृत्ति को भी दुःख एवं चिंता का हेतु बताया गया है। परिग्रह–वृत्ति परिग्रह करने वाले व्यक्ति को तो तनावग्रस्त बनाती ही है, साथ ही आर्थिक विषमता या गरीबी को भी जन्म देती है। अतः वह गरीब–अमीर दोनों को तनावग्रस्त करती है। साथ ही जो दूसरों के धन को देखकर स्वयं को अभावग्रस्त समझते हैं या ईर्ष्या करते हैं, वे भी तनावग्रस्त होते हैं। व्यक्ति की आसक्ति धन से जुड़ी हुई है, धन उपार्जन करना अनिवार्य भी है, किन्तु व्यक्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपनी वर्त्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ--साथ जब भविष्य की इच्छाओं की पूर्ति के लिए अधिक धन का संचय करना चाहता है, तो यह संचयवृत्ति व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती है। सामान्य व्यक्ति का मानना है कि धन ही उसकी हर समस्या का समाधान कर सकता है, धन ही उसे सुख, शांति और सुरक्षा दे सकता है, किन्तु यह एक भ्रम है। इस द्वितीय अध्याय में उत्तराध्ययन के एक सूत्र **'वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते'** के द्वारा यह समझाने का प्रयास किया गया है कि परिग्रह ही दुःख, अशांति और तनाव को हेतु है। धन किसी की सुरक्षा नहीं कर सकता, अपितु वह तो सुरक्षा की चिन्ता एवं लोभ को जन्म देता है। जैनाचार्यों ने कहा है कि लाभ से तो लोभ बढ़ता जाता है।

लोभजन्य दूसरों के शोषण की प्रवृत्ति भी व्यक्तियों में तनाव उत्पन्न करती है। वर्तमान में जो अर्थतंत्र की पूँजीवादी प्रणाली प्रचलित है उससे समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया है। एक पूँजीपति या शोषक वर्ग और दूसरा श्रमिक या शोषित वर्ग। पूँजीपति अपनी पूँजी की सुरक्षा में चिंताग्रस्त रहता है तो गरीब धन के अभाव अर्थात् विपन्नता की स्थिति, ईर्ष्या--भाव एवं धन की चाह के कारण तनावग्रस्त रहता है। इस विषय में जैन आचार्य हरिभद्र ने यह बताया था कि श्रमिकों को उनके श्रम के प्रतिफल के रूप में पूरा पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए। इससे शोषण समाप्त होगा और समाज में समरसता बढ़ेगी।

इसी दूसरे अध्याय में आगे हमने पारिवारिक असंतुलन और तनाव के सह--सम्बन्ध को बताया है। इस प्रसंग में मनोवैज्ञानिकों के द्वारा दी गई एक संतुलित एवं सुखी परिवार की अवधारणा को भी प्रस्तुत किया गया है। आगे इस अध्याय में पारिवारिक अशांति के कारणों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है --**वैयक्तिक कारण** -- ये वे कारण हैं, जो परिवार के सदस्यों के स्वभाव, विचार आदि में भिन्नता होने से परिवार में तनाव उत्पन्न करते हैं। दूसरे **अवैयक्तिक कारण** -- ये वे कारण होते हैं, जो परिवार के किसी एक सदस्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के द्वारा नहीं, अपितु परिवार के सदस्यों में पीढ़ीगत भेद, अर्थहीन रूढ़िवादिता आदि के रूप में तनाव के हेतु बनते हैं।

विश्व अशांति का एक मुख्य कारण सामाजिक अशांति भी है। वस्तुतः समाज एक अमूर्त कल्पना है। व्यक्तियों द्वारा ही समाज बनता है। जैनदर्शन की अनेकांत दृष्टि के आधार पर कहें तो व्यक्ति और समाज दोनों परस्पर सापेक्ष हैं। यही कारण है कि सामाजिक विषमताएँ भी व्यक्ति में तनाव उत्पन्न करती हैं। प्रत्येक व्यक्ति समाज में अपने मान प्रतिष्ठा को बनाए रखना चाहता है और जब उसके अहं एवं स्वार्थ को कोई चोट पहुंचती है तो वह तनावग्रस्त हो जाता है। इसके अतिरिक्त भी समाज में जाति, धर्म, अमीर, गरीब आदि के नाम पर उत्पन्न भेद–भाव भी व्यक्ति के साथ–साथ समाज में तनाव के कारण बनते हैं। सामाजिक कुरीतियाँ एवं अर्थहीन रूढ़ियाँ भी तनाव का कारण बनती हैं।

सिर्फ व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध ही नहीं, अपितु तनाव के कुछ धार्मिक कारणों का भी शोध–ग्रन्थ के इस द्वितीय अध्याय में विश्लेषण किया गया है। जिसके अन्तर्गत धर्म की कुछ रूढ़िगत आचार मर्यादाओं के कारण युवावर्ग व वृद्ध वर्ग के मध्य तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है, इसे समझाया गया है।

तनाव का उद्‌गम स्थल मन होने से इस द्वितीय अध्याय में तनाव की उत्पत्ति के मनोवैज्ञानिक कारणों का भी उल्लेख किया गया है। मन में उठने वाले विकल्प और विकल्पों से उत्पन्न होने वाली इच्छाएं, आकांक्षाएं, अपेक्षाएं आदि भी व्यक्ति को तनावग्रस्त बना देती हैं, इस द्वितीय अध्याय में इसकी भी चर्चा की गई है। इस प्रकार इस अध्याय में तनाव के विभिन्न कारणों का विश्लेषण किया गया है और इस सम्बन्ध में जैन दृष्टिकोण को भी स्पष्ट किया गया है।

प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध के **तीसरे अध्याय** में चैत्तसिक मनोभूमि और तनाव के सह–सम्बन्ध का विश्लेषण किया गया है। इसमें सर्वप्रथम आत्मा, चित्त औन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मन के सहसम्बन्ध को समझाया गया है। जैनदर्शन के अनुसार आत्मा वह आधारभूमि है, जिससे चेतना या चित्त की अभिव्यक्ति होती है। चित्त आत्मा के ही चैत्तसिक गुणों की अभिव्यक्ति रूप है और चित्त में होने वाले संकल्प–विकल्प ही मन का आकार ग्रहण करते हैं। इस प्रकार आत्मा की सक्रियता चित्त और चित्त की सक्रियता मन है – ये तीनों अभिव्यक्ति के स्तर पर भिन्न–भिन्न प्रतीत होते हुए भी सत्ता के स्तर पर अभिन्न ही हैं।

आगे इस अध्याय में आत्मा की विभिन्न अवस्थाएं और उनका तनाव से क्या सह–सम्बन्ध है, इसे बताया गया है। आत्मा की आठ अवस्थाओं में कौन सी अवस्थाएं तनावयुक्त व कौनसी अवस्थाएँ तनावमुक्त अवस्थाएँ हैं, इसकी चर्चा की गई है। आगे तनावग्रस्तता और तनावमुक्ति के आधार पर आत्मा के आध्यात्मिक विकास के स्तरों की चर्चा की गई है। वस्तुतः तनाव शुद्धात्मा में नहीं मलिन चित्तवृत्तियों में ही उत्पन्न होते हैं। चित्त आत्मा की एक पर्याय–दशा है। चित्त की मलिनता ही आत्मा को स्वभाव–दशा से विभाव दशा में ले जाती है, और मलिन चित्त की चंचलता ही मन में इच्छाएँ, आकांक्षाएँ आदि को जन्म देती है।

आचार्य महाप्रज्ञ ने चित्त व मन के अन्तर को बताते हुए यह प्रमाणित किया गया है कि चित्तवृत्तियाँ ही तनाव उत्पत्ति का हेतु (कारण) है एवं मन तनाव की जन्मस्थली है या तनाव ही मन को आकार प्रदान करता है।

चित्तवृत्ति अर्थात् चेतना को स्थिर किया जा सकता है, किन्तु मन को स्थिर नहीं किया जा सकता, मन का तो निरोध करना होता है। **'मन'** को **'अमन'** करना होता है, इसलिए मन स्थायी तत्त्व नहीं है। आत्मा की पर्याय चित्त और चित्त की पर्याय मन है। मन, चित्त के आधार पर जीवित रहता है। फिर भी मन का तनाव से गहरा सम्बन्ध है। चित्तवृत्तियाँ तनाव का हेतु होती हैं किन्तु उनकी जन्मस्थली तो मन ही है, क्योंकि मन और तनाव ही दोनों विकल्पजन्य हैं। भावमन में ही इच्छाएँ, आकांक्षाएँ आदि उत्पन्न होती है और उन इच्छाओं,

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकांक्षाओं आदि के अपूर्ण रहने पर या नवीन इच्छाओं आदि के उत्पन्न होने पर मन दुःखी या तनावग्रस्त हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों ने मन के भी तीन स्तर माने हैं। इन स्तरों के आधार पर यह समझाया गया है कि अचेतन मन में रही हुई दमित इच्छाएँ और वासनाएँ अथवा जैनदर्शन की दृष्टि में उपशमित एवं सत्ता में रहे हुए कर्म, अवचेतन मन के द्वारा मन के चेतन स्तर पर अर्थात् उदय में आते हैं और इस चेतन स्तर पर तनाव उत्पन्न करता रहता है। इस प्रकार मन के तीनों स्तर तनावों से जुड़े हुए हैं।

वस्तुतः जैनदर्शन में ही नहीं, अपितु बौद्ध एवं योगदर्शन में भी तनावों की स्थिति के आधार पर क्रमशः मन की चार, चार और पाँच अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। जो लगभग समानान्तर है। हमने प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के इस तीसरे अध्याय में उनकी भी तुलनात्मक दृष्टि से चर्चा की है। बौद्धदर्शन में तो चित्त के चैत्तसिक धर्मों या चित्त के कार्यों के बावन प्रकार बताए गए हैं, जिनको मैंने तनावों के सह–सम्बन्ध के आधार पर समझाया है और यह बताया है कि कौन से चैत्तसिक धर्म तनावों को जन्म देते हैं और कौन से चैत्तसिक धर्म तनावों से मुक्त करते या मुक्त रहते हैं।

इस शोध–प्रबन्ध के **चौथे अध्याय** में जैन धर्मदर्शन की विविध अवधारणाओं का तनाव से सह–सम्बन्ध बताया गया है। सर्वप्रथम जैनदर्शन की त्रिविध आत्मा की अवधारणा के अनुसार यह बताया गया है कि बहिरात्मा–तनावग्रस्त आत्मा है, अन्तरात्मा तनावमुक्ति के लिए प्रयास करती है, जबकि परमात्मा तनावमुक्त है। दूसरे शब्दों में अन्तरात्मा की अवस्था को तनावमुक्ति की साधना की प्रक्रिया भी कहा जा सकता है और उसका यह प्रयास सफल होने पर साधक या व्यक्ति पूर्णतः तनावमुक्ति की अवस्था को प्राप्त करता है, जिसे जैनदर्शन में परमात्मा कहा गया है। आत्मा की उपयोग रूप या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सक्रिय स्थिति को जैनदर्शन में चेतना कहा गया है। इस चेतना की भी तीन अवस्थाएँ हैं –1. ज्ञानचेतना, 2. कर्मचेतना या कर्मफल चेतना।

शरीर का इन्द्रियों के माध्यम से जब आत्मा का बाह्यजगत से सम्पर्क होता है तो उसके परिणाम स्वरूप, उसमें विविध प्रकार की संवेदनाएँ उत्पन्न होती हैं। उन संवेदनाओं के प्रति आत्मा की सजगता ही ज्ञान चेतना है। ज्ञान चेतना के माध्यम से व्यक्ति उन संवेदनाओं को जानता मात्र है, उनसे प्रभावित नहीं होता है। दूसरे जब इन्द्रियाँ बाह्यजगत के सम्पर्क में आती हैं तब जो अनुभूति या संवेदनाएँ होती हैं, यदि उससे उन्हें प्राप्त करने या दूर करने की इच्छा का जन्म होता है, तब यह इच्छा या संकल्प ही कर्म चेतना बन जाती है। कर्म चेतना ही आत्मा में तनाव उत्पन्न करती है। जहाँ तक कर्म फल चेतना का सम्बन्ध है, यदि उस स्थिति में साधक संकल्प–विकल्प नहीं करता है मात्र उनमें ज्ञाता–द्रष्टा रहता है तो यह चेतना कर्मफल चेतना बनकर तनाव उत्पन्न नहीं करती है, क्योंकि इसमें व्यक्ति मात्र ज्ञाता–द्रष्टा होता है।

वस्तुतः उत्तराध्ययनसूत्र में मन की विषयों के प्रति भोगाकांक्षा को ही दुःख (तनाव) का हेतु कहा गया है। हेमचन्द्राचार्य ने मन की चार अवस्थाएँ बताई हैं। इन चार अवस्थाओं में प्रथम विक्षिप्त मन सदैव विषयों के प्रति आसक्त होने से व्यक्ति को तनावग्रस्त बनाए रखता है। दूसरा यातायात मन कभी ज्ञान चेतना या कर्मफल चेतना से युक्त हो तनावमुक्ति का अनुभव करता है, तो कभी इन्द्रिय विषयों में आसक्त होकर संकल्प–विकल्प करते हुए पुनः तनावग्रस्त हो जाता है। तीसरा श्लिष्ट मन तनाव मुक्ति के लिए प्रयत्न करता रहता है और अन्त में पूर्णतः शांति या तनावमुक्ति की अवस्था को प्राप्त कर वही चौथा सुलीन मन बन जाता है।

जैनदर्शन के अनुसार व्यक्ति के मनोभाव ही उसके व्यक्तित्व को उजागर करते हैं। इन मनोभावों के आधार पर जैनदर्शन में षट्लेश्याओं का सिद्धान्त है। उत्तराध्ययनसूत्र के चौंतीसवें अध्याय में इन षट् लेश्याओं के स्वरूप की चर्चा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपलब्ध होती है। इसकी चर्चा भी हमने इस चतुर्थ अध्याय में प्रस्तुत की है। साथ ही इन षट् लेश्याओं के आधार पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का तनाव से सह–सम्बन्ध भी बताया गया है।

तनाव का मूल हेतु रागादि भाव और तद्जन्य कषाय है। राग–द्वेष में से भी राग की प्रधानता रही हुई है। इसे आसक्ति, तृष्णा, कामना और इच्छा रूप माना गया है। राग से द्वेष और राग–द्वेष से ही क्रोधादि चार कषायों का जन्म होता है। राग से लोभ और लोभ से माया का जन्म होता है, दूसरी ओर द्वेष से क्रोध का और क्रोध से मान की अभिव्यक्ति होती है। यही क्रोध, मान, माया और लोभ व्यक्ति में तनाव के स्तर को बढ़ा देते हैं। जैनदर्शन में कषायों की तीव्रता एवं मन्दता के आधार पर ही तनाव (दुःख) की तीव्रता व मन्दता को समझाया गया है। अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी एवं संज्जवलन –यह कषाय चतुष्क तनाव की ही तीव्रता व मन्दता के स्तर को बताता है। प्रस्तुत चतुर्थ अध्याय में इस कषाय चतुष्क से तनावों के सह–सम्बन्ध का वर्णन किया गया है। साथ ही इसमें भगवतीसूत्र एवं कर्मग्रंथों के आधार पर भी इन कषायों के स्वरूप की चर्चा भी की गई है और तनावों से इनका कैसा सह–सम्बन्ध है ? यह बताया गया है।

तनाव का जन्म मन में होता है किन्तु तनाव को उत्पन्न करने वाले तत्त्वों में इच्छाओं एवं आकांक्षाओं की एक अहम् भूमिका रही हुई है। व्यक्ति में अनुकूलताओं को पुनः–पुनः प्राप्त करने की इच्छा होती है तथा प्रतिकूलता से दूर भागने की इच्छा होती है। इन दोनों ही स्थितियों में व्यक्ति तनावग्रस्त ही रहता है। प्रस्तुत चतुर्थ अध्याय में उपर्युक्त सभी विषयों की विस्तार से चर्चा की गई है और इस प्रकार जैन धर्म दर्शन की तनावों से सम्बन्धित विभिन्न अवधारणाओं, जैसे त्रिविध आत्मा, चतुर्विध कषाय, चतुर्विध मन, षट्विध लेश्या आदि की चर्चा प्रस्तुत अध्याय में की गई। चतुर्थ अध्याय तक हमने तनावों के विविध रूपों की परिभाषा, उनके स्वरूप, उनके कारणों एवं जैनदर्शन के त्रिविध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आत्मा, चतुर्विध कषाय, चतुर्विध मन, षटविध–लेश्या आदि की अवधारणाओं का तनावों के साथ क्या सह–सम्बन्ध है, इस विषय पर प्रकाश डाला है। साथ ही जैनधर्म के अनुसार मन के स्वरूप का भी वर्णन किया है।

प्रस्तुत **पंचम अध्याय** में तनाव प्रबंधन की विधियों का उल्लेख किया गया है। तनाव प्रबंधन की सामान्य विधियों के अन्तर्गत इस अध्याय में शारीरिक विधियों, भोजन सम्बन्धी विधियों, मानसिक विधियों आदि का विस्तार से विवेचन किया गया है। शारीरिक विधियों के अन्तर्गत योगासन, प्राणायाम, कायोत्सर्ग आदि विधियों के द्वारा तनाव को कैसे दूर किया जा सकता है, यह बताया है। तनाव मानसिक उत्पीड़न की अवस्था है, अतः तनाव से मुक्ति के लिए मानसिक स्तर पर भी कुछ प्रयोग आवश्यक प्रतीत होते हैं, जैसे– एकाग्रता, योजनाबद्ध चिन्तन, सकारात्मक सोच, आत्मविश्वास आदि, साथ ही इनके द्वारा तनावमुक्ति कैसे हो सकती है, यह भी बताया है। मनोवैज्ञानिक विधि के अन्तर्गत प्रत्यक्ष एवं परोक्ष इन दो विधियों द्वारा तनावमुक्ति का प्रयास किया जाता है। साथ ही प्रत्यक्ष विधि के प्रयोग से तनाव पूर्णतः समाप्त हो जाता है, यह स्पष्ट किया गया है। यह ज्ञाता–द्रष्टाभाव और साक्षीभाव से जीने पर ही संभव होता है। परोक्ष विधि के अन्तर्गत तनाव को पूर्णतः समाप्त तो नहीं किया जा सकता, अपितु कम अवश्य किया जा सकता है।

जैनधर्म में भी तनाव प्रबंधन की विधियाँ प्राचीनकाल से प्रयोग में रहीं हैं। वस्तुतः जैनदर्शन में तनाव के मूल कारणों अर्थात् राग–द्वेष को ही समाप्त करने का प्रयास किया जाता है। सर्वप्रथम इसी स्थिति में आत्म–परिशोधन या विभाव दशा को समाप्त करने का प्रयास होता है।

जैनदर्शन के अनुसार ध्यान को मोक्ष प्राप्ति अर्थात् समग्र दुःखों से मुक्ति का अन्तिम साधन माना गया है। अतः प्रस्तुत अध्याय में ध्यान और योग साधना के द्वारा, तनावमुक्ति कैसे हो सकती है, इस पर प्रकाश डाला गया है। योगदर्शन में योग को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि चित्तवृत्ति का निरोध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ही योग है। जैनदर्शन में मन, वचन, काया की प्रवृत्तियों को योग कहा गया है और तनावमुक्ति के लिए योग–निरोध आवश्यक है और यही ध्यान का लक्ष्य है। जैनदर्शन में ध्यान के चार प्रकार कहे गए हैं। उनमें से आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान तनाव के हेतु हैं तथा धर्मध्यान और शुक्ल ध्यान से तनावमुक्ति सम्भव है। अतः सम्यक् ध्यान तो धर्मध्यान या शुक्लध्यान ही है। इस अध्याय में इन चारों ध्यानों के स्वरूप का विस्तार से विवेचन किया गया है। यहाँ मैंने स्थानांगसूत्र और ध्यानशतक के आधार पर इन ध्यानों के लक्षण, साधन आदि पर विचार भी किया है। तनाव का एक कारण ममत्वबुद्धि है। **'पर'** पर **'स्व'** (अपनेपन) का आरोपण ही व्यक्ति के दुःखों का मूल कारण है। इसीलिए आचारांगसूत्र में ममत्व के स्वरूप की जो चर्चा की गई है उसी के आधार पर ममत्व के त्याग द्वारा एवं तृष्णा पर प्रहार करके ही व्यक्ति तनावमुक्त हो सकता है। तनाव के मूल कारणों में एक कारण इच्छाएँ एवं आकांक्षाएँ हैं, अतः जैनधर्म में तनावमुक्ति के लिए इच्छा निर्मूलन पर जोर दिया गया है। इच्छाएँ आकाश के समान अनन्त हैं, जिनका कोई अन्त नहीं है। वह व्यक्ति जो इच्छाओं से ग्रस्त है, तनाव का भी अन्त नहीं कर सकता है, क्योंकि इच्छाएँ, आकांक्षाएँ व्यक्ति के मन को सदैव असंतुष्ट बनाए रखती हैं और असंतुष्ट मन सदैव तनावग्रस्त रहता है। पंचम अध्याय का यही विवेच्य विषय रहा है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के **छठवें अध्याय** में जैनदर्शन के आधार पर तनावों के निराकरण के उपाए सुझाए गए हैं।

इस षष्ट्म अध्याय में सम्यक्–दर्शन, सम्यक्–ज्ञान और सम्यक्–चारित्र का विस्तार से विवेचन किया गया है। तत्त्वार्थसूत्र में भी सम्यक्–दर्शन, सम्यक्–ज्ञान और सम्यक्–चारित्र इन तीनों को सम्मिलित रूप से मोक्ष मार्ग कहा गया है। इसी आधार पर यह माना गया है कि उपर्युक्त तीनों –सम्यक् दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र की साधना ही तनावों के निराकरण का सम्यक् उपाय है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिग्रह या संचयवृत्ति तनाव का मुख्य हेतु है, अतः तनाव से मुक्ति के लिए जैनदर्शन में अपरिग्रह के सिद्धान्त पर बल दिया गया है। परिग्रह वृत्ति से बचने के लिए शास्त्रों के आधार पर हमने कुछ सूत्र भी प्रस्तुत किए हैं।

साथ ही इसमें अहिंसा के सिद्धांत द्वारा भी तनावमुक्ति किस प्रकार सम्भव है, यह बताया गया है। वर्त्तमान युग में हर समस्या का मुख्य कारण हिंसा और भय में खोजा जा सकता है। हिंसा एक क्रूरवृत्ति है, जहाँ विवेक, विनम्रता, करूणा, सरलता, प्रेम आदि के भाव समाप्त हो जाते हैं और इनके स्थान पर व्यक्ति में क्रूरता, कपट, कलह, क्रोध, घृणा आदि वृत्तियाँ अपनी जगह बना लेती हैं। ये वृत्तियाँ व्यक्ति को तनावग्रस्त कर देती हैं, अतः हिंसा से बचने के लिए व्यक्ति को अहिंसा के सिद्धान्त को अपनाना होगा। प्रस्तुत विषय में हिंसा के स्वरूप एवं उसके दुःखद परिणामों को समझाते हुए, तनाव से बचने हेतु हिंसा से बचने का निर्देश दिया गया है। दूसरे हिंसा भय को जन्म देती है और भय एक प्रकार का तनाव है, अतः तनावमुक्ति या भयमुक्ति के लिए अभय की साधना आवश्यक है। यदि हम भयमुक्त रहना चाहते हैं, तो दूसरों को भी भयमुक्त करना होगा और अहिंसा इसी भयमुक्ति का संदेश देती है।

इसी प्रकार जैनदर्शन का अनेकांत का सिद्धान्त हर प्रकार के झगड़े या द्वन्द्व को मिटाकर शांति स्थापित कर सकता है। आज विश्व के हर क्षेत्र में चाहे परिवार हो, समाज हो, राजनीति हो, अर्थव्यवस्था या धर्म का क्षेत्र हो या प्रबंधन शास्त्र का क्षेत्र हो, अनेकांतवाद के बिना किसी भी क्षेत्र में शांति संभव नहीं है। अनेकांत संघर्ष को समाप्त करता है, अतः तनावमुक्ति के लिए अनेकांतदृष्टि को अपनाना आवश्यक है। इन विविध क्षेत्रों में अनेकांतदृष्टि किस प्रकार व्यक्ति को तनावमुक्त करती है, इसका विस्तार से विवेचन इस षष्टम अध्याय में किया गया है।

इन्द्रिय विजय और तनावमुक्ति – व्यक्ति के तनावग्रस्त होने का मुख्य कारण व्यक्ति की इन्द्रियों के विषयों के प्रति आसक्ति है। इन्द्रियों का विषयों से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्पर्क होने पर उनमें से कुछ अनुकूल और कुछ प्रतिकूल प्रतीत होते हैं। अनुकूल के प्रति राग और प्रतिकूल के प्रति द्वेष का जन्म होता है और ये राग–द्वेष तनाव उत्पत्ति के मूलभूत हेतु हैं, यह भी हम पूर्व में दिखा चुके हैं, अतः तनावमुक्ति के लिए इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। इन्द्रियों पर विजय कैसे प्राप्त की जा सकती है, इसकी भी व्याख्या भी कुछ सूत्रों के माध्यम से इसी अध्याय में की गई है।

कषाय विजय और तनावमुक्ति – कषाय का क्षेत्र इतना व्यापक है कि व्यक्ति चाहकर भी कषायों से बच नहीं पाता है और परिणामस्वरूप तनावग्रस्त हो जाता है। क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों में से कोई एक भी कषाय व्यक्ति के जीवन में आ जाता है तो व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है। कषाय भाव से युक्त व्यवहार करने वाला व्यक्ति न स्वयं प्रसन्न रहता है न ही दूसरों को प्रसन्न रख सकता है। कषाय रूपी अग्नि स्वयं का भी जलाती है और दूसरों को भी जलाती है, अतः इस शोध–ग्रन्थ के मूल लक्ष्य तनावमुक्ति को ध्यान में रखते हुए कषायों पर विजय प्राप्त करने के लिए अनेक आगमिक सूत्रोंका निर्देश भी प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के इस षष्टम् अध्याय में किया गया है।

लेश्या परिवर्तन और तनावमुक्ति – जैनधर्म भावना प्रधान धर्म है। व्यक्ति के भाव ही उसे ऊपर उठाते हैं और भाव ही तनावग्रस्तता का कारण बनते हैं। जैसे हमारे भाव बनते हैं, वैसी ही हमारी लेश्या बनती है और जैसी हमारी लेश्या होती है, वैसा ही हमारा व्यवहार बनता है। जैसा हमारा व्यवहार होगा वैसा ही व्यक्ति का व्यक्तित्व बनता है। इन लेश्याओं के स्वरूप का विवेचन तो चतुर्थ अध्याय में किया गया था, प्रस्तुत अध्याय में लेश्या परिवर्तन से व्यक्ति के भावों में कैसे परिवर्तन किया जा सकता है व उसे तनावमुक्त बनाया जा सकता है, इसका विस्तार से विवेचन किया गया है।

तनावमुक्ति के लिए ध्यानविधि को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है। ध्यान विधियों के अन्तर्गत विपश्यना या प्रेक्षा ध्यान की विधि सबसे अधिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रचलित है। प्रेक्षा ध्यानविधि के द्वारा मन की चंचलता को समाप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। ध्यान की यह विधि पाँचवें अध्याय में दी गई है। यहाँ ध्यान के महत्त्व को समझाते हुए तनावमुक्ति के लिए ध्यान करने का निर्देश दिया गया है।

व्यक्ति की श्रद्धा सबसे अधिक धर्म पर होती है। अगर ध्यान के सही स्वरूप को समझ लिया जाए तो व्यक्ति को यह ज्ञात हो जाता है कि स्वस्वभाव में रहना ही धर्म है। धर्म ही तनावमुक्ति में मार्गदर्शक है।

इस प्रकार मैंने उपरोक्त सातों अध्यायों में जैन दृष्टिकोण के आधार पर तनाव का स्वरूप, उसकी आधारभूमि, उसके कारण, जैनदर्शन की विविध अवधारणाओं से उनका सहसम्बन्ध, उनके प्रबन्धन की तकनीक और उनके निराकरण के उपायों की चर्चा की है और यथास्थान आधुनिक मनोविज्ञान, बौद्ध धर्मदर्शन और प्रबन्धनशास्त्र की तकनीक से जैन दृष्टिकोण की तुलना भी की है और यह बताया है कि जैन धर्मदर्शन तनावमुक्ति के जो उपाय सुझाता है, वे किस सीमा तक प्रासंगिक हैं।

————000————

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

(अ) जैन आगम की सूची –

क्र	ग्रन्थ का नाम	संपादक/अनुवादक	प्रकाशन	सन्
1.	आचारांगसूत्र	मुनि सौभाग्यमलजी	धर्मदास प्रकाशन, रतलाम	
2.	आचारांगसूत्र	सं. आचार्य महाप्रज्ञ	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज)	2000
3.	आचारांगसूत्र भाग 1–2	सं. आत्मारामजी	जैनागम प्रकाशन समिति, जैन स्थानक, लुधियाना	1963
4.	आचारांगसूत्र भाग–1	सं. मधुकरमुनिजी	श्री आगम प्रकाशन समिति ब्यावर	1984
5.	आचारांग	शीलांककृत टीका सहित	आगमोदय समिति, सूरत	वि.सं. 1973
6.	आवश्यक श्रमणसूत्र	सं. जिनेन्द्रगणि	हर्षपुष्पामृत जैन ग्रन्थमाला, लाखाबाखल, शांतिपुरी (सौराष्ट्र)	1975
7.	आवश्यकसूत्र	सं. युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)	
8.	आवश्यक–निर्युक्ति	सं. भद्रबाहुकृत निर्युक्ति की मलयागिरि टीका सहित	आगमोदय समिति, बम्बई	1928
9.	इसिभासियाइं सुत्ताइं	सं. महोपाध्याय विनयसागर	प्राकृतभारती अकादमी, जयपुर	1988
10.	उत्तराध्ययनसूत्र	सं. रतनलाल डोशी	श्रमणोपासक जैन पुस्तकालय, सैलाना	वी.सं. 2478
11.	उत्तराध्ययनसूत्र	सं. मधुकरमुनिजी	श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	1984
12.	उपासकदशांग	अनु. आत्मारामजी म.सा.	जैनागम प्रकाशन समिति, लुधियाना	1964
13.	औपपातिकसूत्र	सं. युवाचार्य श्री मिश्रीमलजी	आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	1986
14.	कल्पसूत्र	सं. आनन्दसागरजी	आनन्दसागरजी, सैलाना	1976
15.	ठाणांगसूत्र	मुनि नथमल (महाप्रज्ञ)	जैन विश्वभारती, लाडनूं	वि.सं. 2033
16.	दशवैकालिकसूत्र	मुनि हस्तीमलजी म.सा.	जैन कान्फरेन्स, मुबंई	1993
17.	दसवेआलिय	सं. आचार्य महाप्रज्ञ	जैन विश्वभारती, लाडनूं	1964
18.	दशाश्रुतस्कंध	सं. आचार्य मधुकरमुनि	जैन आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर	1984
19.	प्रश्नव्याकरणसूत्र	सं. मुनि हस्तीमलजी	हस्तीमल सुराणा, पाली	1995
20.	प्रश्नव्याकरण	सं. आचार्य महाप्रज्ञ	जैन विश्वभारती, लाडनूं	
21.	प्रज्ञापनासूत्र	सं. आ अमोलखऋषिजी	लाला ज्वालाप्रसाद, हैदराबाद	
22.	बृहत्कल्पभाष्य	सं. पुण्यविजयजी	आत्मानंद जैनसभा, भावनगर	1933
23.	भगवतीसूत्र	सं. युवाचार्य श्री मधुकरमुनि	श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)	1993
24.	भगवई	सं. आचार्य महाप्रज्ञ	जैन विश्वभारती, लाडनूं	1994
25.	स्थानांगसूत्र टीका	अभयदेवसूरि की टीका सहित	आगमोदय समिति, सूरत	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

26.	सूत्रकृतांगसूत्र		स्थानकवासी जैन कान्फरेन्स, बम्बई	1938
27.	सूत्रकृतांगसूत्र	सं. आचार्य मधुकर मुनि	श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)	1991
28.	समवायांगसूत्र	सं. आचार्य मधुकर मुनि	श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)	1991

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थों की सूची –

क्र	ग्रन्थ का नाम	संपादक/अनुवादक	प्रकाशन	सन्
1.	गोम्मटसार (जीवकाण्ड)	आ. नेमिचन्द्र	श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, आगास	1978
2.	तत्त्वार्थसूत्र	उमास्वाति	सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा	
3.	तत्त्वार्थसूत्र (टीका)	सं. पं. सुखलाल संघवी	पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी	2007
4.	तत्त्वार्थसूत्र टीका	सं. उपाध्याय श्री केवलमुनि	श्री जैन दिवाकर साहित्यपीठ, इन्दौर	1987
5.	तत्त्वार्थ राजवार्तिक (भाग 1–2)	अकलंकदेव, सं. प्रो. महेन्द्र कुमार जैन	भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नईदिल्ली	1998
6.	दर्शन पाहुड	कुन्दकुन्दाचार्य	देहली से प्रकाशित	
7.	धर्मामृत	सं. कैलाशचन्द्र शास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नईदिल्ली	
8.	नियमसार	कुन्दकुन्दाचार्य, अनु. अगरसेन	अजिताश्रम लखनऊ	1963
9.	प्रशमरति	वाचक उमास्वाति	परमश्रुत प्रभावक मण्डल, मुम्बई	1950
10.	प्रशमरति प्रकरण (भाग 1–2)	अनु. भद्रगुप्तविजयजी	श्री विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट, महेसाणां, (गु.)	वि.सं. 2042
11.	प्रवचनसार	कुन्दकुन्दाचार्य	परमश्रुत प्रभावक मण्डल, बम्बई	1935 ई.
12.	भगवती आराधना	शिवकोट्याचार्य	सखाराम नेमिचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला, शोलापुर	1935
13.	मोक्खपाहुड	कुन्दकुन्दाचार्य	देहली से प्रकाशित	
14.	मूलाचार	आ. वट्टकेरस्वामी	भारतवर्षीय अनेकांत विद्वत परिषद	1996
15.	समयसार	कुन्दकुन्दाचार्य	अहिंसा प्रकाशन मंदिर, दरियागंज, देहली	1951
16.	सर्वार्थसिद्धि	पूज्यपाद देवनन्दी, सं. फूलचन्द्र शास्त्री	भारतीय ज्ञानपीठ, लोदी रोड, नईदिल्ली	1999
17.	ज्ञानार्णव	आचार्य शुभचन्द्र	श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल, श्रीमद् राजचन्द्र जैन शास्त्रमाला, अगास	1995

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बौद्ध–परम्परा के त्रिपिटक ग्रन्थों की सूची –

क्र	ग्रन्थ का नाम	संपादक/अनुवादक	प्रकाशन	सन्
1.	अभिधम्मत्थसंगहो	आचार्य अनुरूद्ध/ अनु. भदन्त आनंद कौसल्यायन	बुद्ध विहार, लखनऊ	1960
2.	अंगुत्तरनिकाय	अनु. भदन्त आनंद कौसल्यायन	महाबोधि सभा, कलकत्ता	1963
3.	धम्मपद	अनु. राहुल जी	बुद्ध विहार, लखनऊ	

वैदिक–परम्परा के ग्रन्थों की सूची –

क्र	ग्रन्थ का नाम		प्रकाशन	सन्
1.	गीता (शांकरभाष्य)		गीता प्रेस, गोरखपुर	सं. 2018
2.	गीता	डब्ल्यू.डी.पी. हिस	ऑक्सफोर्ड	1953
3.	छान्दोग्योपनिषद्		गीता प्रेस, गोरखपुर	
4.	ब्रह्मबिन्दूपनिषद्		संस्कृति संस्थान, बरेली	
5.	मैत्राण्युपनिषद्		संस्कृति संस्थान, बरेली	
6.	योगचूड़ामनि उपनिषद्		संस्कृति संस्थान, बरेली	
7.	योगकुण्डल्युपनिषद्		संस्कृति संस्थान, बरेली	
8.	महाभारत, अनुशासन पर्व		गीता प्रेस, गोरखपुर	

परवर्ती आचार्यों एवं लेखकों कृत सूची –

क्र	ले. सं. अनु. रच.	ग्रन्थ का नाम	प्रकाशन	सन्
1.	अरूणकुमार सिंह आशीषकुमार सिंह	आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	2008
2.	अरूणकुमार सिंह	उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	1997
3.	अरूणकुमार सिंह	व्यक्तित्व का मनोविज्ञान	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	2000
4.	अमर मुनि	सूक्तित्रिवेणी	सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा	1988
5.	आत्मारामजी म.सा.	जैन योग साधना	जैन स्थानक, लुधियाना	
6.	एम.के. गुप्ता	मन को नियंत्रित कर तनावमुक्त कैसे रहें ?		
7.	केशर सूरिजी	आत्मशुद्धि		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8.	कन्हैयालाल जी लोढ़ा	दुःख रहित सुख	प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर	2005
9.	मुनि किशनलाल	प्रेक्षाध्यान : (आसन–प्राणायाम)	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	2003
10.	मुनि किशनलाल	प्रेक्षा : एक परिचय	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	1995
11.	प्रो. गिरधारीलाल श्रीवास्तव	शिक्षा मनोविज्ञान	न्यू बिल्डिंग्स, अमीनाबाद, लखनऊ	1972
12.	गोपीनाथ अग्रवाल	शाकाहार या मांसाहार : फैसला आपका	सन्यम बाबा चैरिटीबल ट्रस्ट, नईदिल्ली	1990
13.	श्री चन्द्रप्रभजी म.सा.	आपकी सफलता आपके हाथ	श्री जितयशा फाउंडेशन, जयपुर	
14.	श्री चन्द्रप्रभजी म.सा.	कैसे पाएं मन की शांति	श्री जितयशा फाउंडेशन, जयपुर	
15.	श्री चन्द्रप्रभजी म.सा.	सकारात्मक सोचिए सफलता पाइए	श्री जितयशा फाउंडेशन, जयपुर	2006
16.	जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण	विशेषावश्यक भाष्य	बनारस	वी.सं. 2441
17.	जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण	ध्यानशतक	प्राकृत भारती, जयपुर	2006
18.	आ. देवेन्द्रसूरि	कर्मग्रंथ (भाग 1–7)	श्री आत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मण्डल	वी.सं. 2444
19.	देवेन्द्र मुनि	कर्म–विज्ञान	श्री तारकगुरु जैन ग्रंथालय, शास्त्री सर्किल, उदयपुर	1993
20.	डॉ. द्वारकाप्रसाद	योग : एक वरदान	सुबोध पब्लिकेशन्स, 2/3, बी, अंसारी रोड, नईदिल्ली	1987
21.	साध्वी प्रियलताजी	त्रिविध आत्मा की अवधारणा		
22.	पं. बनारसीदासजी	समयसार नाटक	सत्साहित्य प्रकाशन एवं प्रचार विभाग, श्री कुन्दकुन्द कहान दिगम्बर जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट, जयपुर	1988
23.	आ. भगवान् देव	योग द्वारा रोग निवारण	डायमण्ड पॉकेट बुक्स, 27/5, दरियागंज, दिल्ली	
24.	भगवानदास केला	जीवनधर्म : अहिंसा		
25.	आ. महाप्रज्ञ	अवचेतन मन से सम्पर्क	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	1984
26.	आ. महाप्रज्ञ	अनेकांत है तीसरा नेत्र	युवाचार्य महाप्रज्ञ साहित्य प्रकाशन कोश, मित्र परिषद्, कलकत्ता	1985
27.	आ. महाप्रज्ञ	चेतना का ऊर्ध्वारोहण	आदर्श साहित्य संघ, चुरू (राज.)	1999
28.	आ. महाप्रज्ञ	चित्त और मन	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	
29.	आ. महाप्रज्ञ	जीवन विज्ञान और जैन विद्या प्रायोगिक	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	1999

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

30.	आ. महाप्रज्ञ	जैन योग	आदर्श साहित्य संघ, चुरू (राज.)	1999
31.	आ. महाप्रज्ञ	प्रेक्षाध्यान : आधार व स्वरूप	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	1985
32.	आ. महाप्रज्ञ	प्रेक्षाध्यान योग पद्धति	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	2004
33.	आ. महाप्रज्ञ	प्रेक्षा ध्यान : शरीर प्रेक्षा	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	1997
34.	आ. महाप्रज्ञ	प्रेक्षाध्यान : चैतन्य केन्द्र प्रेक्षा	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	1985
35.	आ. महाप्रज्ञ	प्रेक्षाध्यान : आगम और आगमोत्तर स्त्रोत	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	1986
36.	आ. महाप्रज्ञ	प्रेक्षाध्यान : लेश्या ध्यान	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	1997
37.	आ. महाप्रज्ञ	महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	
38.	आ. महाप्रज्ञ	महावीर का अर्थशास्त्र	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	
39.	आ. महाप्रज्ञ	विश्वशांति और अहिंसा	जैन विश्वभारती, लाडनूं (राज.)	1995
40.	श्री मल्लिषेणसूरिप्रणीता	स्याद्वादमंजरी	श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास	
41.	यशोविजयजी, विवेचन भद्रगुप्त विजयजी	ज्ञानसार	विश्वकल्याण प्रकाशन ट्रस्ट भवन, महेसाणा	वि.सं. 2042
42.	यशोविजयजी	ज्ञानसार	प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर	1995
43.	यशोविजयजी, अनु. डॉ. प्रीतिदर्शनाश्रीजी	अध्यात्मसार	प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर	2006
44.	राजिंदरसिंह	आत्मशक्ति	अज्ञात	
45.	श्रीमद् राजेन्द्रसूरिजी	अभिधान राजेन्द्र कोष (भाग–1)	श्री अभिधान राजेन्द्र कोश प्रकाशन संस्था, अहमदाबाद	1986
46.	श्री ललितप्रभसागर	चिंता, क्रोध और तनावमुक्ति के सरल उपाय	पुस्तक महल, दिल्ली	2006
47.	विनोबा भावे	आत्मज्ञान और विज्ञान	सर्वसेवा समिति, वाराणसी	प्रथम संस्क.
48.	साध्वी विनीतप्रज्ञाजी	उत्तराध्ययनसूत्र – दार्शनिक अनुशीलन एवं वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उसका महत्त्व	श्री चन्द्रप्रभ महाराज जुना जैन मंदिर ट्रस्ट	2002
49.	वीरसेन आचार्य, सं. फूलचंद्र सिद्धांतशास्त्री	धवला	जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर	1992
50.	वामन शिवराम आप्टे	संस्कृत हिन्दी कोश	मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी	
51.	हेमचन्द्राचार्य	योगशास्त्र	प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर (राज.)	
52.	हरिभद्रसूरिजी, सं. छगनलाल शास्त्री	जैन योग ग्रंथ	मुनि श्री हजारीलाल स्मृति प्रकाशन, पीपलिया बाजार, ब्यावर	1982

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

53.	हेमप्रज्ञाश्रीजी	कषाय : एक तुलनात्मक अध्ययन	श्री विचक्षण प्रकाशन, इन्दौर	1999
54.	डॉ. सागरमल जैन	जैन, बौद्ध और गीता के आचार दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन	प्राकृत भारती संस्थान, जयपुर (राज.)	1982
55.	डॉ. सागरमल जैन	अध्यात्म और विज्ञान	प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)	2010
56.	डॉ. सागरमल जैन	अनेकांतवाद, स्याद्वाद और सप्तभंगी : सिद्धांत और व्यवहार	पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी	1999
57.	डॉ. सागरमल जैन	जैन साधना पद्धति में ध्यान	पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी	
58.	डॉ. सागरमल जैन	धर्म का मर्म	प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)	2010
59.	डॉ. सागरमल जैन	अहिंसा की प्रासंगिकता	प्राच्य विद्यापीठ, शाजापुर (म.प्र.)	
60.	स्वामी कार्तिकेय, सं. ए.एन. उपाध्ये	कार्तिकेयानुप्रेक्षा	रायचन्द्र जैन शास्त्रमाला, अगास	1960
61.	आ. सिद्धसेन दिवाकर	सन्मति तर्क–प्रकरण	गुजरात पुरातत्व मन्दिर, अहमदाबाद	वि.सं. 1980
62.	सतीशचन्द्र चट्टोपाध्याय एवं धीरेन्द्र मोहन	भारतीयदर्शन (दत्ता)	दत्त पुस्तक भण्डार, पटना	1961
63.	मु. डॉ. शांता जैन	लेश्या और मनोविज्ञान	जैन विश्वभारती, लाडनूं	1996
64.	Carson, Butcher, Mineka	Abnormal Psychology and Modern Life	Pearson Education pvt. ltd. India Branch, Delhi	2005
65.	Edward A. Charlesworth and Roland g. Nathan	Stress Management	London	
66.	Gates and other	Educational Psychology	Pearson Education pvt. ltd. Indian Branch, Delhi	
67.	Lazarus, Folkman	Internal and External determination of behaviour		
68.	Robert S Feldmen	Understanding Psychology	Tata Mc. Graw Hill Publishing Company Ltd. New Delhi	2005
69.	Dr. Sagarmal Jain	Peace, Religious, Harmony and solution of world problem form Jain Perspective	Parshwanath Vidyapitha, Varanasi (U.P.)	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पत्र–पत्रिकाएँ –

1.	डॉ. सुधा जैन	तनावों का कारण एवं निवारण	श्रमण, जनवरी–मार्च 1997
2.	डॉ. सुरेन्द्र वर्मा	द्वन्द्व और द्वन्द्व निवारण	श्रमण अक्टूम्बर–दिसम्बर 1996
3.	डॉ. सुरेन्द्र वर्मा	भारतीय दर्शन में तनाव अवधारणा के विविध रूप	समता सौरभ, जुलाई–सितम्बर 1996
4.	डॉ. सुरेन्द्र वर्मा	जैनदर्शन में शांति की अवधारणा	तुलसीप्रज्ञा खंड–21, अंक–3

Web sites –

1. www.effective_time_management strategies.com
2. www.helpguide.org
3. www.msttfromabut.com (Kristi A Dyes MD)
4. www.fatfreekitien.com (Richard S Lazarus)
5. www.stressanswer.com (Rebecca. J. Frey)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org